व्यंग्य यात्रा

सार्थक व्यंग्य की रचनात्मक त्रैमासिकी

वर्ष : 3 अंक : 15-16

अप्रैल-सितंबर 2008

चिंता में रामशरण जोशी से बातचीत

त्रिकोणीय में
सुभाष चंदर की कृति 'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' के परिप्रेक्ष्य में
हिंदी व्यंग्य के इतिहास लेखन पर चर्चा

इस अंक में

कांति कुमार जैन, श्रीकांत जोशी, श्याम सुंदर घोष, शेरजंग गर्ग, प्रदीप पंत, हरीश नवल, मधुसूदन पाटिल, सूरजप्रकाश, दामोदरदत्त दीक्षित, रमेश सैनी, अनुराग वाजपेयी, हरदर्शन सहगल, कैलाशचंद्र, राधेश्याम तिवारी, केवल गोस्वामी, आर के सोनी, हरमन चौहान, रोमेश जोशी, कुमार विनोद, अतुल कनक, जवाहर चौधरी, श्रवण कुमार उर्मलिया, कैलाश मण्डलेकर, तरसेम गुजराल आदि।

मूल्य २० रुपए

AWADHESH MISRA 2008

नंदनजी के 75वें जन्मदिवस पर व्यंग्य यात्रा की बधाई

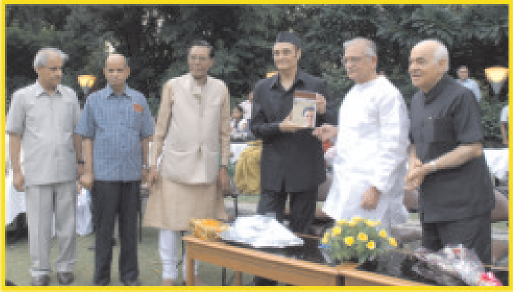

कृष्णदत्त पालीवाल द्वारा नंदनजी पर केंद्रित किताबघर द्वारा प्रकाशित कृति का लोकार्पण। बाएं से– सर्वश्री सत्यव्रत, कृष्णदत्त पालीवाल, कन्हैयालाल नंदन, गुलजार और मदनलाल खुराना

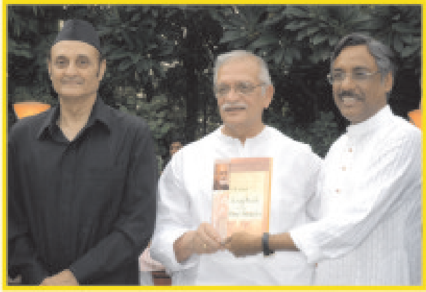

कन्हैयालाल नंदन द्वारा संपादित इंद्रकुमार गुजराल पर केंद्रित पुस्तक का लोकार्पण करते सर्वश्री कर्णसिंह, गुलजार एवं पवन वर्मा

नंदन जी के 75वें जन्मदिवस पर आपका स्वागत है

मुख्य अतिथि डॉ. कर्णसिंह तथा पृष्ठभूमि में कार्यक्रम के संचालक राहुल देव

बेचैन रूह का परिंदा, कन्हैयालाल नंदन, चहचहा रहा है–
और . . . यह सब कुछ मैं ही था,
यह मैं बहुत देर बाद जान पाया!

वरिष्ठ आलोचक नामवर सिंह और प्रख्यात रंगकर्मी रामगोपाल बजाज– कुछ खास बात है!

जीवेत् शरदः शतम् की शुभकामनाएं देते एवं कार्यक्रम का आनंद उठाते नंदन-प्रेमी विशिष्टजन

नंदन जी में कुछ खास है। चर्चा में मगन आलोक मेहता एवं ममता कालिया

यार्क की उषा वर्मा को सम्मानित करते ब्रिटेन के आंतरिक सुरक्षा राज्यमंत्री टोनी मैक्नलटी, तेजेन्द्र शर्मा, ज़कीया जुबैरी, राकेश दुबे आदि

श्रीमती नासिरा शर्मा को उनके उपन्यास 'कुइयां जान' के लिए 14वां अंतर्राष्ट्रीय 'इंदु-कथा सम्मान'

छायाचित्र : पायल शर्मा

सार्थक व्यंग्य की
रचनात्मक त्रैमासिकी

अप्रैल-सितंबर 2008
वर्ष-3 अंक-15-16

एक अंक : 20 रुपए
पांच अंक : सौ रुपए
(डाक व्यय 5 रुपए प्रति अंक अतिरिक्त)
विदेशों में : दो डॉलर प्रति अंक

सहयोग राशि 'व्यंग्य यात्रा' के नाम से ही भेजने का कष्ट करें। दिल्ली से बाहर के चेक पर बीस रुपए अतिरिक्त जोडें।

संपादक
प्रेम जनमेजय

संपर्क
73, साक्षर अपार्टमेंट्स, ए-3 पश्चिम विहार
नई दिल्ली-110063
फोन : 011-25264227, 09811154440
फैक्स : 011-25264227
ई-मेल : vyangya@yahoo.com

मुख्यपृष्ठ एवं रेखांकन
अवधेश मिश्रा

सहयोगी संपादक
रमेश तिवारी

प्रबंध सहयोग/लेजर टाइपसैटिंग

रामविलास शास्त्री
4, शॉपिंग कॉम्प्लैक्स दयाल बाग
सूरजकुंड, फरीदाबाद (हरियाणा)
09911077754, 0129-4092514

'व्यंग्य यात्रा' में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। विवादास्पद मामले दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे। संपादन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक और अव्यावसायिक।

अनुक्रम

आरंभ 2-3

आप चंदन घिसें 4-8

पाथेय 9-14

कान्ति कुमार जैन
हरिशंकर परसाई-टिटहरी कभी नहीं हारती 9
हरीश नवल
हरिशंकर परसाई के साथ बीस बरस 13

चिंता 15-19
व्यंग्य में ईमानदारी की आवश्यकता है- रामशरण जोशी
प्रेम जनमेजय से बातचीत

त्रिकोणीय 20-27

प्रेम जनमेजय
एक चुनौती के आमने-सामने 20
सुभाष चंदर
कहानी हिंदी व्यंग्य के इतिहास की 21
शेरजंग गर्ग
हिंदी व्यंग्य का इतिहास 23
प्रदीप पंत
'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' के बहाने कुछ व्यंग्य चर्चा 24
राजेंद्र सहगल
व्यंग्य के धर्म और मर्म की पड़ताल 26

गद्य रचनाएं 29-76

श्रीकांत चौधरी
कामरेड, दलितों का मसीहा 29-30
रामशरण जोशी
मैं और वह 31
श्यामसुंदर घोष
जानी न जाय छपासक माया 33
कैलाश मण्डलेकर
वासंती गोष्ठी और कुष्ठ रोग 35
जवाहर चौधरी
कामरेड की लंगोट 37
श्रवण कुमार उर्मलिया
एक और कीचड़जीवी 38
सूरज प्रकाश
कैसे मिलती थी शराब अहमदाबाद में 40
अनुराग वाजपेयी
हनुमान किसके हैं 42
रमेश सैनी
मंहगाई बनाम मंदिर 44
कुलदीप तलवार
रिटायरमेंट के बाद 46
दामोदर दत्त दीक्षित
हम टायर होंगे, रिटायर नहीं 47
मधुसूदन पाटिल
आरक्षण प्रेम कथा 48
सुदर्शन वशिष्ठ
बनना उपाध्यक्ष साहित्य का 49
हरदर्शन सहगल
दूसरा जश्न 50
रोमेश जोशी
माचिस कैसे जलाएं 50
कैलास चन्द्र
खरबूजे का रंग 52
राजकुमार आत्रेय
बिस्लेरी हैं न! 53
के.पी. सक्सेना 'दूसरे'
लायसेंस 53
आशा रावत
हंसो हंसो मगर. . . 54
सीताराम गुप्ता
रिपोर्टिंग 56
मनोहर पुरी
हुजूर मैं अंग बेचता हूं. . . 57
हरमन चौहान
एक अनुबंध पुस्तक छपवाने का 62
राजीव नामदेव राना लिधौरी
भूत का मोबाइल नंबर 64
छगन लाल सोनी
मरना भी तो सन्डे को 65
कुमार विनोद
मुशायरा हिट करवाने के अचूक नुस्खे 67
प्रमोद कुमार दुबे
अनोखेलाल हेड 68
अतुल कनक
दो कौड़ी का आदमी 69
अरविंद तिवारी
चिड़िया घर में पहला दिन 70
आशीष सिसोदिया
एक साहित्यकार का शिष्य को पत्र 72
तरसेम गुजराल
सद्भावना 74
सुरेश वाहने
कुत्ते का गर्व, भीखू का चन्द्र अभियान 75
यश गोयल
कानून व्यवस्था पर निबंध 76
जितेंद्र जौहर
आत्मा की शांति 76

पद्य रचनाएं 77-84

राधेश्याम तिवारी, शिवानंद सहयोगी, इंदुकांत अंगिरस, केवल गोस्वामी, जे.के. सोनी, अशोक अंजुम, सूर्य कुमार पांडेय, भगवती प्रसाद गौतम, कुबेरनाथ, आलोक शर्मा, रीता हजेला 'आराधना', किशन तिवारी, आशीष दशोत्तर, ब्रजेश कानूनगो, उदयप्रताप हयात, राशिद आज़्मी, दीपक गुप्ता।

प्रेम जनमेजय
इधर जो मैंने पढ़ा- रात दिन, धांधलेश्वर 85
विजय अगवाल
ज्ञान चतुर्वेदी का 'जो घर फूंके' - 89

रमेश तिवारी
पुस्तक समीक्षा 90-93

समाचार 94-104

आरंभ

मां को याद करते हुए

मेरी मां कोई साहित्यकार नहीं थी कि उसका किसी साहित्यिक पत्रिका में उल्लेख हो। उसके जाने से साहित्य या किसी अन्य जगत में कोई खालीपन भी पैदा नहीं हुआ, कोई क्षति भी नहीं हुई।

इसलिए, इस उपशीर्षक को पढ़ते ही कुछ सज्जन इसे व्यक्तिगत मामला मान इसके आगे या तो पढ़ना छोड़ देंगे या फिर सरसरी निगाह डाल आगे बढ़ जाएंगे। कुछ सज्जन यह कह कर भी आलोचना कर सकते हैं कि पत्रिका तो समूह का मंच है और उसमें आम जन का अर्थिक सहयोग होता है, ऐसे में नितांत व्यक्तिगत प्रसंगों को लाना कहां तक उचित है। पत्रिका में ऐसी चर्चाओं का क्या कुछ सार्थक उपयोग है? उपयोगिता तथा उपभोक्तावादी मूल्यों के संरक्षकों के लिए ऐसी बातें निरर्थक कूड़ा ही होती हैं। फिर भी समाज में ऐसे हैं जो कूड़ा बीनते हैं। कूड़ा उनकी आजीविका का साधन होता है।

मुझे लगता है कि ऐसी कूड़ात्मक चर्चाएं समाज में मानवीय जीवन मूल्यों के संरक्षण के लिए बहुत जरूरी हैं। साहित्य भी तो व्यक्तिगत अनुभवों की निर्वैयक्तिक प्रस्तुति है।

मेरी कैंसर पीड़ित मां का स्वर्गवास मेरी व्यक्तिगत हानि हो सकती है परन्तु जन्म और मृत्यु एक सामाजिक प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग भी है। नवागंतुक का स्वागत करना एवं जाने वाले को सम्मानजनक विदाई देना सभ्य मानवीय समाज की आवश्यक परंपरा है। और साहित्य हमारे आसपास घटने वाली घटनाओं का रचनात्मक वर्णन ही तो है।

मेरी मां का जीवन चाहे अखबारों में समाचार बनने लायक नहीं था और न ही उन्होंने अपनी किसी विशिष्ट महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु अपने लिए कोई व्यापक फलक तैयार किया। उनका जीवन तो बस अपने परिवार तक ही सीमित था। बंटवारे की त्रासदी को झेलकर सरहद के इस पार आने वाले या उस पार जाने वालों ने भौतिक नुकसानों के अतिरिक्त संबंधों में बहुत कुछ ऐसा खोया है जिसकी पूर्ति आज तक नहीं हो पा रही है। रह-रह कर एक टीस उठ जाती है। और कुछ लोग अविश्वास की उस खरोंच का व्यापार भी कर रहे हैं। आज भी उसका दुरुपयोग नफरत की आग फैलाने के लिए किया जा रहा है। ऐसी अवांछनीय स्थिति देखकर व्यक्ति अपने खोल में सिमटने को विवश हो जाता है। मेरी मां एक ऐसे ही खोल में सिमटी रहीं। जब भी उन्होंने अपने अतीत को मेरे सामने खोला उसमें नफरत नहीं, प्यार ही था। कोटा, कोटकपुरा, बदामीबाग में बीते बचपन की सहेलियां, जो बस सहेलियां थीं, हिंदू या मुसलमान नहीं थीं। ये अतीत जब भी उनके सामने आता तो इसको याद कर उनकी आंखें अक्सर नम हो जातीं। बहुत कुछ खोया उन्होंने विभाजन के दौरान, पर उन्होंने कभी हमारे मन में नफरत के बीज नहीं बोए। मेरी मां ने हम भाइयों को कभी बंटवारे के ऐसे किस्से नहीं सुनाए जो किसी के खिलाफ खून में उबाल पैदा करें। अतीत को विस्मृति की झोली में डालने के लिए उन्होंने अपनी एकमात्र प्राथमिकता अपना परिवार बना ली।

लगभग सभी मांएं एक जैसी होती हैं, मेरी मां भी वैसी ही एक मां थीं। मुझे याद है मेरी मां की मृत्यु पर कथा लेखिका मीरा सीकरी का फोन आया था– प्रेम जब भी किसी की मां की मृत्यु होती है मेरी मां मुझे अपनी संपूर्णता में बरबस याद आ जाती है।'

मां मर जाती है पर वो हृदय के किसी कोने में सदा जिंदा रहती है। उसकी उपस्थिति जीवनभर बनी रहती है।

अपनी मां को मैं इसलिए भी शब्दों में याद कर रहा हूं क्योंकि उनका जीवन सदा ही मुझे कछ न कुछ सिखाता रहा है। उनकी बीमारी ने भी मुझे बहुत कुछ सिखाया है। सबसे बड़ी बात यह सिखाई कि आत्मबल और दृढ़ इच्छा शक्ति से बढ़कर कोई दवा नहीं होती है। अपने को बीमार मान लेना सबसे बड़ी बीमारी है।

फरवरी 2006 में उनकी बीमारी का पता चला था। जब तक कैंसर का पता चला, वह बहुत फैल चुका था। ऑल इंडिया मैडिकल इंस्टीच्यूट के प्रसिद्ध कैंसर विशेषज्ञ प्रोफसर पी.के. जुल्का उनके जीवन के संबंध में कुछ भी निश्चित बताने को तैयार नहीं थे। मां शारीरिक दृष्टि से कमजोर तो बहुत थीं। बहुत कठिनाई से प्रो. जुल्का ने क्यूमोथैरेपी के छह दौर पूरे किए। तीसरे दौर के बाद उन्होंने जब पैट् करवाया तो पता चला कि कैंसर फैलने से रुक गया है। डॉ. जुल्का उस दिन कुछ प्रसन्न थे। परंतु कीमो के छठे दौर के बाद जब पैट् किया तो पता चला कि कैंसर फेफड़ों और लीवर में बुरी तरह से फैल चुका है। कमजोरी बढ़ गई है, अब कीमो भी संभव नहीं। 2 मई 2007 को डॉ. ने अंतिम बार मेरी मां को देखा, उनके लिए जीवन-रक्षक दवा लिखी और मुझसे कहा कि इनकी जितनी सेवा कर सकते हो कर लो। जीवन- रक्षक दवा विदेशी थी जिसे मैं नाथ ब्रदर्स, कनाट प्लेस से लेता था। इस दवा की 21 गोलियां एक माह में सात दिन लगातार दी जाती थीं। दवा विदेशी है, हो सकता है कभी आवश्यकता पड़ने पर न मिले, अत: सावधानीवश मैंने डॉक्टर से पूछा कि कितने महीने के लिए मैं वह दवा खरीद कर रख लूं तो डॉक्टर ने कहा कि लेकर रखने की आवश्यकता नहीं है। अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने जैसे समझा दिया था कि जितने दिन निकल जाएं वो बोनस है।

मेरी मां ने अपनी बीमारी से कभी हार नहीं मानी। उनके चेहरे से बीमारी के हाव-भाव कोसों दूर थे। अपने आत्मबल और दृढ़ इच्छा शक्ति के बल पर वो, डॉक्टर द्वारा लाइलाज घोषित होने के बावजूद, तेरह महीने जीवित रहीं। कैसे रहीं इसका साक्षी मेरा बहुत ही अभिन्न लेखक मित्र ज्ञान चतुर्वेदी है। ज्ञान ने बीमारी के दौरान उनको बहुत करीब से देखा है। वो जब भी दिल्ली आता, अपना स्टैथस्कोप लेकर आता। अक्टूबर 2007 में वो दिल्ली अपनी किसी अति व्यस्त कॉन्फ्रेंस में नोएडा आया हुआ था। व्यस्तता के बावजूद उसने समय निकाला और नोएडा से पश्चिम विहार आया। उन दिनों मां की तबीयत बहुत बिगड़ी हुई थी। वो कुछ ठीक से खा नहीं पा रही थीं और उन्हें सांस लेने में तकलीफ हो रही थी। हम माने बैठे थे कि ये कैंसर की अंतिम स्टेज के कारण है। ज्ञान ने उन्हें देखा और देखने के बाद बोला– 'इनके फेफड़ों में तो पानी भरा है, इनकी छाती का एकदम एक्सरे करवा कर लाओ।' एक्सरे देखा तो कन्फर्म हो गया। इस बीच ज्ञान ने अपनी पत्नी शशि से, जो स्वयं एक स्त्री-रोग विशेषज्ञ हैं, फोन पर बात की और मां के लिए बढ़िया ताकत और हाजमे की दवाई लिख दी। फेफड़ों से पानी निकालने के बाद और ज्ञान द्वारा बताई गई दवाइयां

खाने से मां की हालत बहुत ही बढ़िया हो गई। इसके बाद से तो मैं ज्ञान के आने का उतना इंतजार नहीं करता था जितना वो करती थीं। ज्ञान भी उनके आत्मबल के आगे नतमस्तक था। 2008 की मई के एक दिन तो ज्ञान उनकी इच्छा शक्ति और आत्मबल को देखकर हैरान हो गया। ज्ञान अपनी बिटिया को परीक्षा दिलवाने दिल्ली आया था और परीक्षा के बाद वो अपनी बिटिया के साथ मेरे घर आया। मेरी मां मुझसे इस बीच कई बार पूछ चुकी थीं कि तुम्हारा डॉक्टर दोस्त कब आ रहा है। ज्ञान आया और मां ने मिलते ही अपनी परेशानियों का बयान करना आरंभ कर दिया। मैंने हंसते हुए कहा– 'माताजी, अब आप 84 बरस के होने वाले हो, बुढ़ापे में ये सब तो होना ही है।' ये सुनते ही मां जैसे तैश में आकर बोलीं– 'क्यों होना है? आदमी को तो कम से कम सौ बरस तक जीना चाहिए।' ज्ञान उनकी इस इच्छा शक्ति को देखकर बहुत प्रसन्न था। बाद में उसने कहा भी– 'प्रेम यार ऐसी इच्छा शक्ति हर पेशेंट में हो जाए तो वो आधा वैसे ही ठीक हो जाए।'

ज्ञान के जाने के बाद मां को लगा कि वो कुछ ज्यादा तैश में बोल गईं। मुझसे बोलीं, 'मैं कुछ ज्यादा तेज कह गई, तेरे दोस्त ने बुरा ते नईं मन्या' मैंने कहा- 'माता जी वो भी आपके बच्चों की तरह है, बुरा क्यों मानेगा। बल्कि वो तो कह रहा था कि इस तरह का सब को होना चाहिए।'

जिस दिन उनकी बीमारी का हमें पता चला उस दिन परिवार में हम सबने तय कर लिया था कि इस बीमारी का हम नाम नहीं लेंगे। कैंसर नाम से ही बीमार हतोत्साहित हो जाता है। बीमार आदमी के पास हालचाल पूछने जाते वक्त मुंह लटकाने और गंभीरता ओढ़ने का रिवाज है। इस कारण हमने अपने नाते-रिश्तेदारों से विनम्र प्रार्थना की थी कि वो ज्यादा बारीकी से हालचाल नहीं पूछें, न दवाइयों के बारे में अपनी कोई सलाह दें, और न ही अतिरिक्त संवेदना प्रकट करें। मां भी नहीं चाहती थी कि कोई उन्हें बीमार समझे।

मां पहले दर्जे तक ही पढ़ी थीं। लगभग अनपढ़ होना भी जैसे मां के लिए वरदान सिद्ध हुआ। अपने अल्पज्ञान के कारण वे नहीं जान पाती थीं कि किस वार्ड में जा रहीं हैं, क्या दवाइयां खा रही हैं। उन्हें तो बस ये ही पता था कि उनके अंदर कुछ फोड़े हो गए हैं और गर्म दवाइयों से उन्हें सुखाया जा रहा है।

मां नहीं चाहती थीं कि वे किसी बीमारी के चलते कभी बिस्तर पकड़ें और पराश्रित हों। अंत तक अपने काम, नौकर के होते हुए भी, कपड़े धोने जैसे काम, वह स्वयं ही करती रहीं। अपने तो अपने, अवसर मिले और शरीर साथ दे तो दूसरों के काम करना उन्हें अच्छा लगता था। अपने पड़पोते का नाश्ता बनाना, उसे तैयार करना तो उन्हें बहुत ही अच्छा लगता था। इतना अच्छा कि वे किसी और को करने नहीं देती थीं। मृत्यु से पहले उन्होंने जो अखिरी काम किया वो अपने पड़पोते, रुचिर के लिए नाश्ता तैयार करना था।

जिस दिन उनकी बीमारी का पता चला, मैंने भी मन ही मन प्रार्थना की कि वे कैंसर की पीड़ा से बचें और बिस्तर न पकड़ें। मां चलते-फिरते इस असार संसार से कूच करना चाहती थीं। 8 जून को उनका स्वर्गवास हुआ और 6 जून को जिस दिन वे अस्पताल में भरती हुईं, स्वयं नहा कर अस्पताल गईं।

मैं अपने परिचितों एवं संबंधियों की, स्मृति में अमूर्त हो चुकीं, सभी मांओं को प्रणाम करता हूं तथा दुख के इन क्षणो में मेरे अनेक अपनों ने जो आत्मीय संवेदनाएं अभिव्यक्त की है, उनका आभार प्रकट करता हूं। इस अवसर पर मेरे अनेक साहित्यिक एवं गैर साहित्यिक मित्रों, साहित्यिक एवं गैर साहित्यिक अग्रजों तथा मेरे परिवार ने जो संबल प्रदान किया उसे शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। उनके लिए आभार बहुत छोटा शब्द है।

अंत में मुनव्वर राणा के एक शेर के माध्यम से कहना चाहूंगा–

कल अपने आपको देखा था मां की आंखों में
ये आईना हमें बूढ़ा नहीं बताता है।

भिक्षाम् देहि...आभार

पिछले अंक में मैंने भिक्षा के लिए आग्रह किया था। अनेक सहृदयों ने इस आग्रह को सुना। जिसने सुना उसका भी भला, जिसने सुनकर अनदेखा किया उसका भी भला और जिसने सुना ही नहीं उसका भी भला। मेरी इस भिखमंगी-विनम्रता पढ़ कर 'देने वाले' सोच सकते हैं कि जब बिना दिए भला हो सकता है तो देकर भला क्यों कमाया जाए। ऐसा मत सोचें क्योंकि अंत में मैं बिहारी का एक दोहा उद्धृत करने जा रहा हूं, जिसे पढ़कर आपको लगेगा कि हम जैसे बेशर्मों को देने में ही भला है। अतः हे, 'व्यंग्य यात्रा' के शुभचिंतकों! यदि आपका नाम 'देने वालों' की निम्नलिखित आभार-सूची में नहीं और बिहारी का दोहा पढ़कर आपका अपने निर्णय को बदलने का मन है तो बदल डालें और पत्रिका को कृतार्थ करें।

'व्यंग्य यात्रा' आपके सहयोग के लिए आप सब का हृदय से आभार प्रकट करती है।

अरविंद तिवारी, अशोक आनंद, अरविंद विद्रोही, उमा शशि दुर्गा, उज्ज्वल, उमाशंकर मनमौजी, कमला गोईन्का फाउण्डेशन, कन्हैयालाल सर्राफ, दामोदर दत्त दीक्षित, नर्मदाप्रसाद उपाध्याय, मनोहर पुरी, महेंद्र ठाकुर, शिवानंद सहयोगी, संतोष खरे, सुभाष चंदर, सीतेश आलोक, हरीश नवल, यज्ञ शर्मा, राजमणि, विनोद साव, विदित।

बिहारी का दोहा है–

नीकी लागि अनाकनी, फीकी परी गोहारि।
तज्यो मनो तारन बरदि, बारक बारनि तारि।।

आप चंदन घिसें

चन्द्रशेखर झा 'इन्दु'

आपके द्वारा प्रेषित 'व्यंग्य यात्रा' पढ़कर जो साहित्य-सृजन की महत्ता और गुरुता का आभास हुआ, वह अनिर्वनीय है। आप जिस कुशलता से व्यंग्य विधा की स्थापना में लगे हैं वह न केवल हिंदी पत्रकारिता के लिए बल्कि वैश्विक पत्रकारिता के लिए चर्चा का विषय रहेगी। पत्रकारिता की सूझ-बूझ के लिए आपकी अभ्यर्थना है। आप सर्वत्र इस महान साधना के लिए यशस्वी बनें। ईश्वर आपको शक्ति और सामर्थ्य दें।

नर्मदाप्रसाद उपाध्याय, इंदौर

'व्यंग्य यात्रा' का नवीनतम अंक मिला। सदैव की भांति बड़ा समृद्ध अंक है। अच्छी बात यह है कि इसमें आपने नई पीढ़ी के रचनाकारों को स्थान देकर और उनकी उत्कृष्ट रचनाओं को प्रकाशित कर यह आश्वस्ति दी है कि भाई ज्ञान चतुर्वेदी, आप, हरीश नवल और जवाहर चौधरी जैसे वरिष्ठ व्यंग्यकारों के बाद की व्यंग्य लेखन यात्रा की निरंतरता कायम है। कमला प्रसाद जी से बातचीत में कई आयाम नए खुलते हैं। विजय बहादुर जी की कविता बड़ी पैनी है। यों वे श्रेष्ठ समालोचक और उत्कृष्ट वक्ता तो हैं ही।

यह अंक मेरे लिए विशेष रूप से संग्रहणीय है। आपको ध्यान होगा, वर्ष 1984 में हम लोगों ने नरेन्द्र कोहली जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक पुस्तक निकाली थी, नरेन्द्र मौर्य और मेरे सम्पादन में। उसके बाद इतना समय बीत गया, कोहली जी अकेले व्यंग्यकार नहीं रहे, वे रामायण के, विवेकानंद के अभूतपूर्व उद्गाता बने और समकालीन सृजन के एक अनूठे प्रतिमान लेकिन उनके उस व्यंग्यकार को मैं कभी विस्मृत नहीं कर पाया जिससे दो दशक से भी ज्यादा अर्सा पहले साक्षात्कार हुआ था। इस अंक में आपने कोहली जी के व्यंग्य पर केन्द्रित आलेखों को, जो अपने आप में अपने व्यंग्य लेखन के विभिन्न आयामों को बखूबी रेखांकित करते हैं, प्रकाशित किया है, मेरी दृष्टि में ये आलेख और विशेषकर उनके शिल्पगत वैविध्य को रेखांकित करने वाला आपका लेख नए व्यंग्यकारों को दृष्टिसम्पन्न बनाएगा।

एक बात मुझे यह बार-बार लगती है कि व्यंग्य को कहीं शास्त्र के स्वरूप में देखने की कोशिश होने लगी है। इसे शास्त्रीयता से मुक्त रहना चाहिए। निर्बन्ध, व्यंग्य की मूल प्रकृति है। परसाई जी तो इसे विधा मानते ही नहीं थे, स्पिरिट कहते थे। हम क्यों व्यंग्य के संबंध में उसके विधागत स्वरूप को लेकर इतने आग्रही हो जाते हैं?

एक और बात मुझे जो लगती है वह है अपने लोग से, उसी भाषा से कहीं दूरी। वरिष्ठ व्यंग्यकार और मेरे अग्रज तुल्य श्री अजातशत्रु जो व्यंग्य लिखते हैं उसमें मेरे क्षेत्र की बोली, उसके मुहावरे और उसकी मिठास शामिल होती है। इस व्यंग्य को चाहे मालवा के लोग पढ़ें या दिल्ली के, दोनों को एक जैसा सुख मिलेगा। कभी अजातशत्रु जी से आग्रह कर उनसे ऐसी व्यंग्य रचनाएं जरूर बुलवाकर प्रकाशित करें। वे आपके पाठकों को निश्चित ही आनंदित करेंगी। परसाई की अनेकों रचनाओं में ऐसी देशज गंध मिलती है। उनकी रचनाओं में उस क्षेत्र की बोली के ऐसे शब्द मिलते हैं जिनके पर्याय किसी शब्द कोष में नहीं मिलेंगे लेकिन उनका अर्थ रचना को पढ़ते समय मिल जाएगा। मेरी दृष्टि में यही रचनाकार की सफलता है और व्यंग्य की सार्थकता।

परिवर्तित होते परिदृश्य और उसमें उपजती विसंगतियों को केंद्र में रखकर नए विषय तो रचनाकार को मिल जाएंगे लेकिन यदि उसने अपने लोक के भण्डार में समाए अथाह शब्दकोष से अपना पल्ला झाड़ लिया तो भाषा शास्त्रीय होती चली जाएगी और व्यंग्य, विधा और फिर जड़ शास्त्र में स्थिर हो जाएगा। विदेशी रचनाकारों के सटायर और लेम्पून्स को पढ़ते मुझे यह लगता रहा है कि हमें कहीं हमारे व्यंग्य की भाषा को बोलियों से जोड़ते हुए समृद्ध करना चाहिए। ज्ञान के व्यंग्य में यह बात बड़े धारदार रूप में सामने आती है।

'व्यंग्य यात्रा' निःसंदेह व्यंग्य की एक मानक पत्रिका के रूप में स्थापित हो गई है। इसकी यात्रा यदि इसी गति से अविराम बनी रही तो हिंदी व्यंग्य के भविष्य के लिए यह एक सुखद आश्वस्ति होगी।

आपने इस अंक में फिर भिक्षा मांगी है। इस भिक्षा पर मेरा प्रतिवाद पहले भी था और आज भी है। व्यंग्य, दैनय का सबसे बड़ा शत्रु है तो भिक्षा के माध्यम से आप कहीं इस दैन्य को क्यों उजागर करते हैं? इतनी उत्कृष्ट पत्रिका के लए अनेकों पाठक और रचनाकार ऐसे होंगे जो सहर्ष योगदान देंगे। मैं प्रयास कर रहा हूं कि ऐसे और योगदानकर्ता 'व्यंग्य यात्रा' की सार्थक निरंतरता के लिए इससे जुड़ें।

धनराज चौधरी, जयपुर

'व्यंग्य यात्रा' के जनवरी-मार्च 2008 के अंक में त्रिकोणीय (प्रिज्म यही ज्यामिति लिए होता है और श्रेष्ठ/श्वेत का सतरंगा सच सामने बिखेर देता है) से कभी बेधड़क कहने वाले को गुजार कर आपने हम भूल चुकों को याद दिला दिया कि पारंपरित सोच-समझ से व्यवस्था को झकझोरने वाली हाल की कृतियों (जैसे 'प्रजातंत्र के चक्रवर्ती' 'वसुदेव' आदि) के बहुपठित लेखक खूब ही चुटीली निज मौलिकता अटे कटाक्ष किया करते थे। अवश्य ही 'राम-कथा' ने बड़ी वाहवाही अर्जित की है तथा 'महासमर' ने संत महंत के समकक्ष बिठाया है। चर्चित, मनोहारी, टिकाऊ फुलवारी से मुस्कराती बगिया में झाड़ के उधर उपेक्षित से पड़े हालांकि अपनी ही आग में तपे, निज शीतलमा

का रस छके, आज अभी की पीड़ा से फूटे 'पांच एब्सर्ड उपन्यास' 'एक और लाल तिकोन' जैसे कलापूर्ण केक्टस की छटा जहा ठहर कर देखें तो निराली है। फलदार वृक्ष उगाते-उगाते एकाध नागफनी भी रोपते जाएं तो ऊब टूटेगी, जड़ गई तख्ती 'विशिष्ट' भी असंगत नजर आएगी।

नरेंद्र कुमार, संपादक 'समय सुरभि अनंत', बेगूसराय

'व्यंग्य यात्रा' का अवलोकन कर शब्द यात्रा का भरपूर लुफ्त उठाने में मस्त था नतीजतन विलम्ब से पत्र लिख रहा हूं जनाब। प्लीज रिएक्शन में न आएंगे और कनेक्शन बनाए रखने का प्रयास कीजिएगा। वैसे विलंब से चलना, पहुंचना, लिखना हम भारतीयों की पुरानी आदत है। यह तो जनाब को ज्ञात ही होगा और शायद आप भी विलम्ब के गिरफ्त में हैं। अंक समय से प्रकाशित करने का वायदा कर बेवफा हो जाते हैं तो मुझ जैसे कलम घीस्सू से कैसे उम्मीद करते हैं कि अंक मिले, फौरन प्रतिक्रिया लिख दूं।

यात्रा के आरंभ में ही आपने पुरस्कारों / सम्मानों की चर्चा करते लिखा है कि इन दिनों पुरस्कारों / सम्मानों की जैसे सेल लगी हुई है। साहित्य की हर गली, नुक्कड़, मुहल्ले में पुरस्कार / सम्मान देने-लेने वाले थोक के भाव विराजमान हैं. . .और कालिदास, तुलसी, कबीर, प्रेमचंद, निराला स्वर्ग में बैठे अपने नाम की दुर्दशा पर आंसू बहा रहे हैं। सम्पादक जी, यह सच है कि प्रेमचंद, निराला आदि लिखते-लिखते गुजर गए लेकिन उन्हें कोई सम्मान नहीं मिला. . .और आज दो-चार कहानी / कविता / आलेख भले ही दूसरे की नकल हो) लिख लेने पर ही उनके नाम पर सम्मान दिया जा रहा है तो उन्हें खुशी होनी चाहिए कि जो उन्हें नहीं मिला वह आज के लेखक जो उन्हीं की बिरादरी के हैं को मिल रहा है। ऐसे में अधिक पढ़ने एवं लिखने की जरूरत ही क्या? हर्रे लगे न फिटकिरी माल चोखा। आपने भी सुना होगा, तब फिर संपादक महाराज आपको गुस्सा क्यों आता है? घर फूंक पत्रिका प्रकाशित करते रहें कोई पूछने वाला नहीं है और न भिक्षाम् देहि के उद्घोष से कोई सुनने वाला है। बाजारवाद का युग है, आप भी सेल लगाएं, पुरस्कार / सम्मान खुले हाथ से बांटिए। आपके यहां भी भीड़ जमेगी। कबीर, तुलसी, निराला को आठ-आठ आसूं बहाने दीजिए अपुन तो चकाचक रहेगा।

आगे के पन्ने पर 'विमल उर्फ गिरे तो कहां गिरे' (प्रदीप पंत) पढ़कर काफी रोमांचित हुआ साथ ही जानकारी मिली कि बाजारवाद के युग में अब 'ई-मेल' पुराना हो गया नया 'फीमेल' है। यानी फीमेल भेजिए काम दौड़ेगा. . .और फिर प्रदीप जी ने ठीक ही लिखा कि 'फीमेल' और 'वियाग्रा' बुढऊ राजेंद्र यादव का सब्जैक्ट है। प्रदीप जी की दूर दृष्टि का मैं दिल से ताली बजा-बजा समर्थन करता हूं। डॉ. यज्ञ प्रसाद तिवारी एवं संतोष खरे का चिंतन सारगर्भित है। परिचय स्तम्भ में नरेंद्र कोहली का संपूर्ण परिचय आपने पेश किया, पढ़कर अच्छा लगा। पुन: 'व्यंग्य और मैं' में श्रीमान नरेन्द्र कोहली की लंबी कहानी और उन्हीं की जुबानी बहुत कुछ बतलाता है। आगे के पृष्ठों पर कोहली साहब पर हरीश नवल, सुभाष चंदर, डॉ. शशि मिश्र एवं स्वयं आप (प्रेम जनमेजय) ने जो शब्द उकेरा है काफी उत्कृष्ट है तथा कोहली साहब को गइराई से जानने का सुअवसर भी मिलता है। वैसे कोहली साहब एक सहृदय लेखक हैं। मैं भी इन्हें दिल से पसंद करता हूं और अपनी पत्रिका (समय सुरभि अनंत) के लिए आलेख / रचनाएं हेतु तंग करता रहता हूं पर बेचारे कभी बुरा नहीं माने और बड़ी उदारतापूर्वक छोटी-बड़ी रचना जो भी उपलब्ध हो शीघ्र भेज देते हैं। साथ ही टेलीफून भी करते हैं। आजकल बड़े रचनाकार/ लेखक छोटी पत्रिका में लिखना नहीं चाहते इसलिए कि छोटी पत्रिका में उनका तुष्टिकरण नहीं हो पाता।

नरेंद्र कोहली से आगे बढ़ता हूं तो श्याम सुंदर घोष को पाता हूं। आंख और हाथ श्रम करना नहीं चाहता बावजूद घोष साहब 'रंगीला बनाम लचीला' व्यंग्य में फंसे हुए हैं और छाती ठोक कहते हैं कि मैंने चुन-चुनकर विषय यथा बीवी. . .साली. . .सलहज. . . आदि पर रंगीला व्यंग्य लिखा। परंतु परिणाम किसी ने घास नहीं डाला। घोष दा रंगीला-लचीला व्यंग्य लिखते रहें दाल गलने को नहीं है। अन्य रचनाएं यथा जवाहर चौधरी का बूढ़े नाग की अधूरी कविता; काशीपुरी कुंदन का पद्मश्री के हसीन सपने; देवेंद्र कुमार मिश्र का- लावारिस संत; पूरन सरमा का- कीर्ति शेष महाकवि मौजानंद; भाई सूरज प्रकाश का- जरा संभल के चलो. . . ललन चतुर्वेदी का- कविता की वापसी और फिर मूलाराम जोशी का- रूमाल बिछाओ, कब्जा जमाओ आदि आदि रचनाएं उत्कृष्ट और मजेदार लगा और कहें तो सभी रचनाओं से करारा व्यंग्य झलकता है। अब हम आप नहीं समझें तो लेखक बेचारा क्या करेगा? पुस्तक समीक्षा और अंत में समाचार ने 'पत्रिका' को अधिक उपयोगी बना दिया है। आपके रचना चयन से मैं काफी प्रभावित हूं। पत्रिका के सुंदर भविष्य के निमित्त अनंत शुभकामनाएं स्वीकार कीजिए। सम्पादक महाराज. . .और हां अब आप लतियाएं या गलियाएं मैंने जो पढ़ा उस पर साफ-साफ कलम चला दिया। इसे आप छापिये या कूड़ा में डालिये, मर्जी जनाब की।

रामस्वरूप दीक्षित, टीकमगढ़

हिंदी व्यंग्य को शूद्र से क्षत्रिय बनाने का क्षेत्र हरिशंकर परसाई को है और उसे साहित्य के केंद्र में लाने का श्रेय 'व्यंग्य यात्रा' के सम्पादक प्रेम जनमेजय को।

कैलाश मण्डलेकर, खण्डवा

पुरस्कारों की विसंगतियों पर एकाग्र आपका अग्रलेख दिलचस्प एवं विचारणीय है। पुरस्कार आरंभ से ही विवाद का कारण रहे हैं। तथा समय-समय पर अनेक लोगों ने इस विकृति की तरफ इशारा भी किया है। जरूरत इस बात की है कि पुरस्कारों का चयन प्रक्रिया आग्रहों से मुक्त हो, तथा वाद रहित हो वरना पुरस्कारों की पवित्रता इसी तरह खंडित होती रहेगी। जो संस्थाएं पुरस्कार आयोजित करती हैं उन्हें इस दिशा में सोचना होगा। गुप्ता जी के आंगन में चौपाल एक विरल अनुभव है। इन दिनों नगरीकरण और यांत्रिकता से उपजे विस्थापन ने आदमी को इस तरह के आंगन और चौपालों से विलग कर दिया। कस्बों में तो फिर भी प्राय: चौपाल जुट जाया करती हैं। हालांकि वहां भी राजनीतिक प्रदूषण है लेकिन महानगरों में तो इस तरह की विशुद्ध विचारकेन्द्रित गोष्ठियां सर्वथा

इंडिया न्यूज़– व्यंग्य पर विमर्श

हिंदी में निकल रही पत्र-पत्रिकाओं में किसी विधा विशेष को लेकर निकलने वाली पत्रिकाओं का अभाव दिखता है। ऐसे में 'व्यंग्य' विधा को केंद्र में रखकर प्रेम जनमेजय के संपादन में निकल रही पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा' का चौदहवां अंक अपनी सार्थक उपस्थिति और विधागत विमर्श के साथ हमारे सामने है। पत्रिका की एक और विशेषता है कि इसमें व्यंग्य विधा की गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में लिखी गई रचनाओं को स्थान मिला है। पत्रिका के नए अंक में श्रीलाल शुक्ल, कन्हैयालाल नंदन, प्रदीप पंत जैसे वरिष्ठ रचनाकारों की रचनाएं हैं, तो दूसरी ओर रामदरश मिश्र, विजय बहादुर सिंह, हरीश नवल, पूरन सरमा, संतोष खरे, सुभाष चंदर, काशीनाथ सिन्हा, ललित लालित्य, सुधीर ओखदे, बलदेव वंशी, जवाहर चौधरी, ललन चतुर्वेदी, डॉ. अमरनाथ अमर जैसे ख्यातनाम व्यंग्यकारों के धारदार व्यंग्य शामिल हैं। पत्रिका में नए रचनाकारों को भी पर्याप्त स्पेस दिया गया है।

मेरा लेखन शीर्षक से लिखे गए लेख में श्रीलाल शुक्ल लिखते हैं– 'जो पहले पत्थर मैंने पलटे वे थे कहानियां। लेकिन जल्दी ही मैं समझ गया कि यह विधा मेरे लिए बड़ी कठिन और श्रमसाध्य है। उस समय के फैशन, जो कुछ हद तक अब भी चलन में हैं, के आधार पर देखा जाए तो कहानी लेखक के काम के लिए जो अर्हताएं जरूरी थीं, वह थीं लेखन के साथ-साथ यह दावा करने की अत्यंत मुखर इच्छा कि वह नई जमीन तोड़ रहा है।' पत्रिका की अन्य सामग्री में सांस्कृतिक समाचार और व्यंग्य संग्रहों की समीक्षाएं हैं, जो कि पत्रिका को पूर्णता प्रदान करती हैं। कुल मिलाकर व्यंग्य यात्रा को 'व्यंग्य' विधा की संपूर्ण पत्रिका कहा जा सकता है।

– अशोक मिश्र, साभार, इंडिया न्यूज

दुर्लभ होती जा रही हैं। इस संदर्भ में गुप्ता जी की चौपाल एक अनुकरणीय प्रयास है। व्यंग्य यात्रा के मार्फत आपने व्यंग्य को सारे देश में पुन: चर्चा के केंद्र में ला दिया। इसके पीछे निश्चय ही आपकी दूर-दृष्टि और अथक श्रम साधना है।

कृष्णकांत 'एकलव्य'

'व्यंग्य शिल्प' का एक जिज्ञासु पाठक होने के नाते 'व्यंग्य यात्रा' जैसी बड़ी पत्रिकाओं को शुरू से आखिर तक पढ़ता हूं, और कुछ नए तथ्यों की तलाश भी करने का प्रयास करता हूं। 'व्यंग्य यात्रा' के इस अंक में 'पद्मभूषण' श्री लाल शुक्ल और श्री नरेन्द्र कोहली जैसे दो व्यंग्य-शिखरों के स्वकथ्य क्रमश: 'मेरा लेखन' और 'व्यंग्य और मैं' द्वारा पाठकों को जहां एक ओर उनके लेखन से जुड़े प्रारंभिक जीवन संघर्षों के कुछ अछूते संदर्भों की जानकारी मिली है, वहीं दूसरी ओर हिंदी के प्रख्यात कवि / लेखक श्री कन्हैया लाल नंदन जी की आत्मकथात्मक संस्मरण की सद्य: प्रकाशित कृति 'गुजरा कहां-कहां से' उद्धृत अंश 'ऐसा लक्ष्मण बनने से क्या फायदा' पढ़कर नंदन जी की एक और विशिष्ट बहुआयामी प्रतिभा का दिग्दर्शन हुआ है। 'नंदनजी को उद्धृत करते हुए उनके नवजात-विशिष्ट गद्यकार को आपने 'गुस्ताखी-माफ' शीर्षक से जिस व्यंग्य-विनोद पूर्ण रोचक शैली में प्रस्तुत किया है, वह अत्यंत सम्प्रेषणीय और अंतरंग संबंधों का द्योतक है। चुलबुली भाषा का यह प्रवाह पाठक को काफी दूर तक अपने साथ वहां ले जाता है। नंदन जी की इन दोनों संस्मरणात्मक-कृतियों से इस तथ्य की भी पुष्टि होगी कि समर्थ-रचनाकार की प्रतिभा किसी विधा-विशेष की मोहताज नहीं हुआ करती।

इस अंक के 'चिंतन' में विद्वान समीक्षक 'पं. यज्ञ प्रसाद तिवारी' के आलेख 'रंग-भाषा और व्यंग्य का शिल्प' तथा श्री संतोष खरे के आलेख 'समकालीन व्यंग्य संवेदना और शिल्प' अपने सारगर्भित तथ्यों के आधार पर व्यंग्य की माषिक संरचना उसके शैलीय-विधान और शिल्पगत-विशिष्टताओं के अनेक अछूते आयाम उजागर करते हैं। दोनों विद्वान समीक्षकों ने अपने मन्तव्य की पुष्टि में पर्याप्त ठोस तथ्य प्रस्तुत किए हैं, जो उनकी खोजी-दृष्टि और दिशा दोनों का प्रतिपादन करती है। चिंता के अंतर्गत ख्यातिलब्ध समीक्षक प्रो. कमला प्रसाद के 'व्यंग्य-कर्म' और 'कृतियों' पर की गयी रमेश तिवारी की अंतरंग वार्ता सार्थक है। त्रिकोणीय के अंतर्गत भी नरेंद्र कोहली के 'व्यक्ति और स्रष्टा' पर आधारित उनके शिल्पगत-वैविध्य की व्याख्या सहित डॉ. हरीश नवल, सुभाष चन्दर एवं डॉ. शशि मिश्र के आलेख कोहली जी के विस्तृत रचना-संसार पर पर्याप्त रोशनी डालते हैं किंतु उनके मिथकीय-कथ्य-विधान पर गंभीर विमर्श का अभाव खटकता है। क्योंकि श्री कोहली के शिल्पगत वैविध्य, जिसकी पर्याप्त चर्चा भी की गयी है, संभवत: उनके इसी विरल प्रयोग की देन है। इसी क्रम में श्री राजेश जी के साथ कोहली जी से की गयी आपकी भेट वार्ता के निहितार्थ इस बात का द्योतक करते हैं कि कोहली जी अपने वैचारिक धरातल पर कहीं भी दिगभ्रमित नहीं है। त्रिकोण के इस मोड़ पर हरीश नवल ने, अपने आलेखन के उपसंहार में, जिस मार्मिक ढंग से 'द्रोणाचार्य-कोहली' के समक्ष अपने 'शिष्य एकलव्य के निश्छल समर्पण' और कोहली जी की असहमति-जन्य पीड़ा का कातर आर्तनाद व्यक्त किया है संवेदना के स्तर पर मर्म-स्पर्शी है। अकस्मात घटित एक छोटी सी घटना सम्पूर्ण महाभारत काल के उस सामंती अंधे-युग के वैषम्य एवं विसंगति का विस्फोट कर मन का झकझोर देती है।

राजमणि, नोएडा

'व्यंग्य यात्रा' का महज व्यंग्य की एक त्रैमासिक पत्रिका के रूप में जानना इसका सटीक परिचय नहीं है। यह तो एक सुनियोजित व्यंग्य आंदोलन है, जिसके माध्यम से व्यंग्य के प्रति इसमें समर्पित भाव को देखकर मेरा मन दो बातें बिना लाग लपेट के कहने को कुलबुला रहा है। पहली बात तो यह कि आजकल जब लगभग सभी हिंदी के समाचारपत्रों में संपादकीय पन्ने पर व्यंग्य ने अपना पक्का स्थान कर लिया है तो 'व्यंग्य' के जुगाडू किस्म के लिखाडुओं की एक नस्ल पैदा हो गई है। इन जुगाडु- लिखाडुओं पर यदि 'चिंतन' नहीं तो आरंभ में टिप्पणी की महती आवश्यकता इसलिए प्रतीत हो रही है क्योंकि उन्होंने गुणवत्ता को ताक में रखकर परिमाण के सारे रिकार्ड चकना चूर कर दिए हैं। इस विषय पर आपका ध्यान इसलिए भी खींचा जा सकता है क्योंकि आने वाले समय में हिंदी समाचारपत्रों में प्रकाशित व्यंग्य किसी के शोध का विषय

हो सकता है और वे व्यंग्य के ठेकेदार।
दूसरी बात केवल एक सुझाव है, यदि हिंदी के इतर अन्य भारतीय भाषाओं के व्यंग्य लेखकों एवं व्यंग्य लेखन पर व्यंग्य यात्रा में सामग्री जुटा पाते तो वह हिंदी व्यंग्य प्रेमियों के लिए नायाब सौगात होगी।
व्यंग्य यात्रा में गद्य के साथ-साथ परोसा गया पद्य मेन डिश पर गारनिशिंग का मज़ा देते हैं।

संतोष कुमार तिवारी, सागर

'व्यंग्य यात्रा' का बहुत शानदार-जानदार अंक मिला। हर लेख पढ़ने लायक। आजकल पत्रिका निकालना तलवार की धार पर चलना है। आपका संपादन श्रम समूल्य है। व्यंग्य विधा को आपने समृद्ध तो किया ही है, अनेक रचनाकारों को भी यथोचित मंच प्रदान किया है।

श्री राम ठाकुर दादा, जबलपुर

पाथेय, चिंतन में पाथेय पुराना है। चिंतन में व्याख्याएं हैं, ठीक हैं। चिंता में कमलाप्रसाद जी को थोक उत्पादन में दो या तीन नाम याद रहते हैं।
डॉ. परमेश्वर गोयल लघुकथा शिखर सम्मान एवं दिव्य रजत अलंकरण सम्मान समाचार छापने हेतु धन्यवाद। हरीश नवल श्रीकांत वैष्णव का नाम लेते हैं। यह भी लक्ष्मीकांत वैष्णव तो नहीं? प्रभु जोशी, मनीसहाय यादव कहानीकार के व्यंग्य नहीं। प्रभु जोशी ने चित्र भी बनाए हैं।

मनोकामना सिंह 'अजय', जमशेदपुर

पद्मभूषण श्रीलाल शुक्ल जी ही कह सकते हैं कि 'एक रचनात्मक लेखक के रूप में आडम्बर लगता है। तयशुदा, व्यंग्यशुदा, वाणिज्यशुदा के द्वारा सम्मानित लेखक ऐसा कहने की हिम्मत थोड़े ही जुटा पाएंगे। डॉ. यज्ञ प्रसाद तिवारी जी का पांडित्यपूर्ण आलेख 'रंग भाषा और व्यंग्य का शिल्प, पढ़ा। संतोष खरे का आलेख 'समकालीन व्यंग्य : संवेदना और शिल्प कटु सत्यों को जानने का सुअवसर मिला। उन्होंने अपने आलेख में ठीक ही कहा है कि 'व्यंग्यकारों की संख्या में वृद्धि तो हुई है किंतु इसमें चलताऊ व्यंग्य अधिक लिखा जा रहा है। इसी संदर्भ में आपकी टिप्पणी का उल्लेख किया है 'व्यंग्य की अति पठनीय ताकत के कारण जो प्रदूषण आ गया है, इस खतरे को समझा जाए।' इस हिसाब से इस अंक में प्रभावित करने वाली रचनाएं 'शव के प्रति' 'अपनों से सावधान' 'चोर जी नमस्कार' क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्थान पर मेरी दृष्टि में है। मेरे एक मित्र रामविलास सिंह ने एक बार कहा था कि अच्छे-अच्छे साहित्यकार 'अनुगृहीत' को 'अनुग्रहीत' लिखते हैं इस सत्य का दर्शन 'साहित्यकारों की श्रेणी' में हुए।
नरेंद्र कोहली से प्रेम जनमेजय एवं राजेश कुमार की बातचीत में फ्रीलांस लेखक, कॉलम राइटिंग लेखक के संबंध में उनके विचार एवं व्यंग्य को सिर्फ एक शैली तक ही रखने का लोगों ने षड्यंत्र पर उनके मत जानने और समझने को मिला।
प्रदीप पंत की हास्य व्यंग्य रचना 'विमल उर्फ गिरे तो कहां गिरे' अच्छी लगी उन्होंने चैनल वालों पर करारी चोट तो की ही है साथ में 'ई-मेल-फीमेल' नियाग्रा-वियाग्रा जैसे विषय पर व्यंग्य लिखने के लिए एक संकेत दे दिया है।

माताप्रसाद शुक्ल, ग्वालियर

ग्वालियर से जब चला था तब व्यंग्य यात्रा साथ लेकर चला था बहादुरगढ़ के अनेक रचनाकारों ने पत्रिका देखी और पते भी नोट किए थे। पत्रिका को लोगों ने लेने की कोशिश की थी लेकिन यह मेरी लेखकीय प्रति थी इसलिए मैं किसी को दे नहीं सका। कमोवेश पूरी पढ़ ली है लेकिन पूरे पढ़े पर तो प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की जा सकती है। आरंभ में आपने पुरस्कारों के बारे में बिल्कुल सही लिखा है साहित्य में फर्जीवाड़ा चल रहा है अनेक व्यक्ति और संस्थाओं ने सौ-सौ, दो-दो सौ रुपए लेकर आचार्य श्री मैथिलीशरण सम्मान, महादेवी सम्मान देना शुरू कर दिया है। थोक के सम्मान-पत्र छपवाकर रख लिए हैं सिर्फ नाम भरने की देर रहती है। आप पैसे भेजिए डाक से आपके घर सम्मान आ जाएगा। आप अपने शहर में दैनिकों में फोटो सहित समाचार छपा सकते हैं और अपने साहित्यिक अहम् की संतुष्टि कर सकते हैं बस आपकी गांठ में पैसा होना चाहिए। इस तरह की प्रवृत्ति के लोगों ने साहित्य और रचनाकर्म करने वालों को समाज में लांछित किया है। कबीर, तुलसी जैसा फक्कड़पन रहीम जैसी उदारता आज के रचनाकार में लगभग समाप्त सी हो गई है। गुप्ता जी के आंगन में 'चौपाल' पढ़कर लगा कि इस प्रकार के शाकाहारी प्रयास हरेक शहर और कस्बों में होना चाहिए हम अपने शहर में 'गुप्ता जी की चौपाल' गंभीरतापूर्वक शुरू करने जा रहे हैं।
चिंता में, डॉ. कमला प्रसाद जी की बातचीत पढ़ी। उन्होंने बहुत शालीन ढंग से कृष्णदत्त पालीवाल द्वारा श्रद्धेय परसाई जी पर कुंठित

सार्थक व्यंग्य की एक रचनात्मक पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा'

आज के जमाने में जब साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएं लुप्त रही हैं, देश के एक प्रख्यात व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय जिस प्रकार सार्थक व्यंग्य की त्रैमासिक पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा' का पिछले तीन वर्षों से दिल्ली से नियमित प्रकाशन कर रहे हैं, साधुवाद के पात्र हैं। सौ पृष्ठों की यह पत्रिका वरिष्ठ साहित्यकारों के लेख, विचार, चर्चा-परिचर्चाएं भी अपने में समेटे हुए है, तो उभरते उदीयमान लेखकों, कवियों को भी उतनी ही तरजीह देती है।
पत्रिका का हर अंक पठनीय होता है, उसकी सामग्री उपयोगी ही नहीं, भविष्य के लिए भी संग्रहणीय होती है। एक से बढ़कर एक बेहतरीन व्यंग्य रचनाएं इसमें समाहित होती हैं। सबसे बड़ी बात, भाषायी शुद्धता पर काफी ध्यान दिया जाता है। कहीं इक्का-दुक्का त्रुटियां भले ही छूट जाती हों परंतु सामग्री और छपाई के लिहाज से कहीं कोई समझौता प्रकाशक-संपादक करने को तैयार नहीं, यह साफ झलकता है।
'व्यंग्य यात्रा' में नई पुस्तकों की समीक्षा और अन्य जानकारी उन साहित्य प्रेमियों के लिए उपयोगी रहती है जिन्हें समय-समय पर नई पुस्तकें खरीदकर पढ़ने का शौक है। बेंगलूर में भी कई बार हिंदी साहित्य प्रेमी यह कहते पाए जाते हैं कि आजकल तो अच्छी साहित्यिक पत्रिकाएं सहज ही उपलब्ध नहीं होती। उनके लिए 'व्यंग्य यात्रा' का पता शायद उपयोगी हो।

– दक्षिण भारत, बेंगलूर से साभार

भीड़ से अलग व्यंग्य यात्रा

प्रसिद्ध व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय के संपादन में 'व्यंग्य यात्रा' का चौदहवां अंक आया है। व्यंग्य पर केंद्रित इस पत्रिका में लगभग हर अंक एक विशेषांक होता है। साहित्यिक आयोजनों के समाचार, पुस्तक-समीक्षा, पद्य-गद्य, चिंतनपरक लेख, साक्षात्कार, संस्मरण आदि स्तंभों में इस पत्रिका की प्रविष्टियों का संयोजन इतनी सावधानी से रहता है कि वस्तु, रूप, सज्जा और संयोजन-हर दृष्टि से यह हिंदी पत्रिकाओं की भीड़ से अलग खड़ी हो जाती है। इस अंक में श्रीलाल शुक्ल, कन्हैयालाल नंदन, रामदरश मिश्र, विजय बहादुर सिंह, नरेंद्र कोहली, प्रताप सहगल, बलदेव वंशी, हरीश नवल की रचनाओं की उपस्थिति इसे और भी महत्वपूर्ण बनाती है।

—नेशनल बुक ट्रस्ट संवाद
जून 2008

मानसिकता से किए गए प्रहारों का प्रति उत्तर दिया है और वस्तु स्थिति को पाठकों के सामने रखा है। 1984 में जबलपुर में परसाई जी को मुझे सुनने-देखने और बात करने का अवसर मिला है। इसी प्रकार बाबा नागार्जुन को भी। वो पीढ़ी अब खत्म हो गई है अब तो साहित्य में 'कैरियरिस्ट' लोग आ रहे हैं जो कम देकर बहुत अधिक पाने की जोड़-तोड़ करते रहते हैं।

'पाथेय' में कन्हैयालाल नंदन का न 'ऐसा लक्ष्मण बनने से क्या फायदा' मनोरंजक और व्यंग्यात्मक है। नरेंद्र कोहली ने बातचीत में सटीक कहा है कि 'सभी व्यंग्यकार वैचारिक दृष्टि से इस रूप में एक हैं कि वे गलत का विरोध करते हैं।' सुधीर ओखदे का व्यंग्य 'एक यक्ष प्रश्न' एक अच्छा व्यंग्य है जो शंकर पुणताम्बेकर की शैली में है और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि दोनों ही एक शहर के हैं एक दूसरे का प्रभाव पड़ता है, ओखदे समर्थ व्यंग्यकार हैं।

ओमप्रकाश सोनी, होशंगाबाद

'व्यंग्ययात्रा' की सभी रचनाएं स्तरीय हैं। 'त्रिकोणीय' में श्रद्धेय नरेंद्र कोहली के बारे में जो सामग्री प्रकाशित की है, उससे हमारे ज्ञानकोष की काफी वृद्धि हुई है। मैंने एक साहित्य-पत्रिका में नरेंद्र कोहली की 'रचना प्रक्रिया' पढ़ी थी। उनकी यह बात मुझे बहुत अपील की, लिखने के पश्चात छपना होता है। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ, जो यह कहते हैं कि लिखने भर से उसकी संतुष्टि हो जाती है, किसी को सुनाना अथवा छपना उनके लिए आवश्यक नहीं है। मैं ऐसे लोगों को या तो रोगी मानता हूं, या दम्भी। मैं अपनी लिखी, एक-एक पंक्ति को छप कर सामान्य जन तक पहुंचा हुआ देखना चाहता हूं। छपने की स्थिति बड़ी विकट है। मुझसे 'बड़ों' ने कहा था और वह मैं अपने से छोटों को कहता हूं कि यदि कम-से-कम दस वर्षों तक लगातार अपनी रचनाएं सम्पादकों और प्रकाशकों को भेज-भेज कर, उन्हें वापस स्वीकार करने का धैर्य है, तो लेखक बनने का प्रयत्न करना चाहिए, अन्यथा नहीं। मैं उन सौभाग्यशाली गैस के गुब्बारों की बात नहीं कर रहा, जिनका जन्म बाद में होता है और वे उड़ने पहले लगते हैं। पर उनमें सूई की एक नोंक सहने की भी क्षमता नहीं होती- बड़े प्रहार की कोई क्या कहे। 'लेखक' ऐसा कोई नहीं हुआ, जिसे छपने तथा मान्यता प्राप्त करने के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ा। विरोध नहीं सहना पड़ा, लोगों की कटु आलोचनाओं और वैमनस्य का सामना नहीं करना पड़ा। जिन महानुभावों की मैंने शक्ल भी नहीं देखी- उनको भी जब, अपने विरुद्ध विष फैलाते और विरोध पालते देखता हूं तो पहले चकित रह जाता था, फिर परेशान होने लगता और आजकल मुस्कराने लगा हूं। जानता हूं कि वे मेरे मार्ग की वे बाधाएं हैं, जिन्हें फलांग कर ही मैं दौड़ समाप्ति की रस्सी को छू सकता हूं।'

कमला गोइन्का फाउंडेशन सम्मान

कमला गोइन्का फाउंडेशन द्वारा स्थापित 'स्नेहलता गोइन्का व्यंग्यभूषण पुरस्कार-2008' सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार श्री प्रेम जनमेजय को हिंदी व्यंग्य विधा में उनके समग्र योगदान के लिए दिया जा रहा है। महिला रचनाकारों के लिए स्थापित 'रत्नीदेवी गोइन्का वाग्देवी पुरस्कार-2008' सुप्रसिद्ध लेखिक श्रीमती सूर्यबाला को उनके हिंदी साहित्य में समग्र योगदान व उनकी पुस्तक 'इक्कीस कहानियां' के लिए दिया जा रहा है। इस वर्ष का 'गोइन्का व्यंग्य साहित्य सारस्वत सम्मान' वरिष्ठ व्यंग्यकार श्री नरेंद्र कोहली को प्रदान किया जाएगा।

फाउंडेशन के न्यासी श्री श्यामसुंदर गोइन्का ने एक प्रेस विज्ञप्ति में बतलाया कि 30 अगस्त को मुम्बई में एक विशेष समारोह में श्री प्रेम जनमेजय को रुपए 1,00,000/- (रुपए एक लाख) एवं श्रीमती सूर्यबाला को रुपए 31,000/- (रुपए इकत्तीस हजार) नगद, शाल, श्रीफल, स्मृति चिन्ह व पुष्पगुच्छ प्रदान कर सम्मानित किया जाएगा।

कान्ति कुमार जैन

हरिशंकर परसाई - टिटहरी कभी नहीं हारती

चार बरस पहले 'व्यंग्य यात्रा' का पहला अंक हरिशंकर पसाई के जन्मदिन पर प्रकाशित करने की इच्छा के साथ प्रकाशित हुआ था। इस बार पाथेय में डॉ. कान्तिकुमार जैन और हरीश नवल के संस्मरणों के माध्यम से हिंदी व्यंग्य की धार्मिक पुस्तक– हरिशंकर परसाई को याद कर रहे हैं।

परसाई जी को मैंने जब भी देखा तो रेल की लाइनों के ऐन किनारे के मकान में रहते देखा या बदबूदार नाले के ऐन बगल के मकानों में। मकान नं. 1312, मकान नं. 1250, मकान नं. 1533 या मकान नं. 1527। सबके सब किराये के मकान थे, नेपियर टाउन में, रेल लाइन और नाले के बीच में। इनमें से कोई मकान बड़ा नहीं था। परसाई जी के लिए लिखने, पढ़ने या सोने का जो कमरा होता वह मकान में घुसते ही पहिला कमरा होता। यही मित्रों, परिचितों, अपरिचितों से मिलने का कमरा भी होता। तत्कालीन मुख्यमंत्री अर्जुनसिंह आएं या बाबा नागार्जुन; सबका स्वागत-सत्कार इसी बैठक-कम-स्टडी-कम-बेडरूम में होता। जो दीवार से लगी पैताने की तरफ वाली कुर्सी पर बैठता, उससे परसाई जी की बातें ज्यादा होती, उसे वे देख भी ज्यादा सकते। 1956 में जब मैं नागपुर से स्थानान्तरित होकर जबलपुर पहुंचा तो वे नेपियर टाउन के लक्ष्मीबाग वाले मकान में रहते थे। लक्ष्मीबाग पं. केशव प्रसाद पाठक के पिता पं. लक्ष्मी प्रसाद पाठक का बनवाया हुआ था। जबलपुर के मुख्य स्टेशन से मदन महल की ओर जाने वाली रेल की पटरियों के ऐन किनारे। धाड़-धाड़ करती हुई रेलगाड़ियां जब देखो तब उन पटरियों पर से गुजरती। रेलगाड़ी गुजरती तो परसाई जी जिस मकान में रहते थे, उसकी छतें और दीवारें कांपती। परसाई जी का किराये का घर पटरियों से बिल्कुल लगा हुआ था मेरा पटरियों से थोडा दूर -100 गज दूर समझिए। पहिली रात तो मुझे लक्ष्मी बाग के उस मकान में जो मित्रों ने मेरे लिए तजबीज किया था नींद ही नहीं आयी।

दूसरे दिन सबेरे जब परसाई जी बाहर जाने के लिए मेरे घर के सामने से गुजरे तो बरांडे में खड़े मुझसे पूछा-रात को नींद कैसी आयी? मैंने कहा कि रात भर रेलगाड़ियां मेरे बिस्तर पर से गुजरती रहीं। परसाई जी बोले- अभी नये हो, धीरे-धीरे आदत हो जायेगी। मुझे भी इस मकान में शुरू में नींद नहीं आती थी पर अब अभ्यास हो गया है और रेलगाड़ी आये या जाये, कोई फरक नहीं पड़ता। मैं देखता कि रेलगडियां अपनी पूरी स्पीड में, कान फोड़ शोर मचाती हुई, दीवारें हिलाती हुई गुजर रही हैं और परसाई जी बिना विचलित हुए लिखे जा रहे हैं। परसाई जी ने जिन्दगी के शोर-शराबे की वास्तविकता को समझ लिया था और यह उन्हें संघर्ष की, जीने की प्रेरणा देता था। और कोई रास्ता नहीं था। जिन्दगी भर वे कठिनाइयों को, शोर-शराबे को ठेंगा दिखाते रहे। उन्होंने अपने जीवन में ऐसा शॉक अबजार्वर विकसित कर लिया था कि व्यक्तिगत जीवन का हल्ला-गुल्ला, असुविधा, तंगदस्ती, आरोप, झंझटें उन्हें विचलित नहीं करती थीं। रेलगाड़ी उनकी जिन्दगी पर बचपन से ही धड़धड़ाती हुई गुजरती रही। पर बन्दे के चेहरे पर कोई शिकन नही आयी, वह जिन्दगी के मोर्चे पर डटा ही रहा। बिना पीठ दिखाये, सीने पर वार झेलता हुआ।

जब उन्होंने लक्ष्मी बाग वाला मकान बदला तो उन्हें कौन-सा मकान मिला? राइट टाउन और नेपियर टाउन को बांटने वाले गंदे नाले के ठीक बाजू में। इस नाले में शहर की गंदगी बहती, भ्रूण बहते, सुअर के बच्चे अपने थूथन गड़ाये गंदे जल में किलोलें करते। वहां शोर था, यहां गंदगी। परसाई जी ने कभी इस नाले को असुविधापूर्ण नहीं माना। जैसे रेलगाड़ियों के उस शोर को नहीं माना था। जीवन का शोर और जीवन की बदबू परसाई जी के साहित्य के उपजीव्य थे। जमाने का सारा शोर-शराबा, अपने आसपास की सारी गंदगी, इतिहास और रूढ़ियों का सारा सिवार, वर्तमान के सारे रोड़े, राजनीति की सारी बेहूदगियां, अध्यात्म की सारी पत्रियां परसाई जी के साहित्य में हैं। बीसवीं शताब्दी के भारत का, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जीवन का सारा कबाड़ा परसाई जी के यहां मिल जायेगा। वे उसको एनालाइज करते हैं, क्लासीफाई करते हैं, उसको रिवाइटलाइज करते हैं, उसको रिसाइकिल करते हैं। परसाई के मन में इन विकृतियों के प्रति गुस्सा कम करुणा ज्यादा है। वे प्रकृत यथार्थवादी नहीं हैं, सामाजिक यथार्थवादी हैं। यह शोर-शराबा क्यों है, यह गंद क्यों है, कब तक इसे ऐसे ही चलने दिया जायेगा, वे कौन-सी ताकतें हैं, जो इसे ऐसे ही चलने देना चाहती हैं, ये चिन्ताएं परसाई जी को बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का महान चिन्तक साहित्यकार और एक्टीविस्ट बनाती हैं। यही वह प्रतिबद्धता है जिसके कारण परसाई अपने आसपास के सारे हो-हल्ले, चिल्ल-पों, तू-तड़ाक, ले- दे का बखान करते हैं। वे बदबू से भागते नहीं, उसको मिटाने की, खतम करने की युक्ति बताते हैं। वे इस बदबूदार नाले के आसपास रूम फ्रेशनर नही टांगते बल्कि इस नाले को ही पाट देने की जुगत करते हैं। जो हैं उससे बेहतर चाहिए, दुनिया को साफ करने के लिए मेहतर चाहिए के संकल्प वाले परसाई मेहतर के रोल को अंगीकार करने में कभी आनाकानी नहीं करते। मेहतर केवल भंगी नहीं होता, वह महतर होता है- महतर यानी

दूसरों से बड़ा परसाई भंगी भी थे और महतर भी। वे अपने समकालीन साहित्यकारों से महतर शायद इसीलिए थे कि उन्होंने कभी स्वच्छता का दंभ नहीं किया, कभी स्वयं को टिनोपाल की सफेदी का दावेदार नही माना, कभी अपने लिए केवल अपने लिए गरिमा की सुविधा नहीं चाही। होलियर देन जाऊ की गर्राहट परसाई जी में नही थी। वह हम में से एक थे- ठीक हम जैसे।

परसाई जी दहलावादी हैं, नहले पर दहला मारने में उस्ताद। दहला वे बिना आवेश के, बिना आक्रोश के, बिना प्रयास के फेंकते हैं- हंसते-हंसते। वे अपने तरकश से उत्तर का तीर निकालते हैं, शायद मन ही मन उस पर विनोद का पानी चढ़ाते हैं और ये लीजिए, विरोधी निरस्त्र, निढाल, निरुत्तर। परसाई इसे अपनी विजय नहीं मानते, विरोधी की रंगदारी को बेरंग करना ही उनका उद्देश्य होता है।

जिस प्रकार हिन्दी को मैथिलीशरण गुप्त सरस्वती की और निराला मतवाला की देन हैं, उसी प्रकार हरिशंकर परसाई प्रहरी की। यदि सरस्वती न होती तो मैथिलीशरण गुप्त न होते, मतवाला न होता तो 'निराला' न होते। जैसे ये दावे ठीक हैं वैसे ही यह भी कि यदि प्रहरी न होता तो आधुनिक हिन्दी के व्यंग्य पुरुष हरिशंकर परसाई न होते। प्रहरी ने न केवल परसाई जी की प्रथम व्यंग्य रचना छापी थी, वरन् उन्हें साहित्यिक, सांस्कृतिक और वैचारिक मंच भी प्रदान किया था। सन् साठ के दशक में प्रहरी अपने नाम के अनुरूप हिन्दी क्षेत्र का साहित्यिक और वैचारिक प्रहरी था। पं. भवानी प्रसाद तिवारी और पं. रामेश्वर गुरू प्रहरी के संपादक थे। परसाई जी भी इस टीम के साथ अनिवार्य और घनिष्ठ रूप से जुड़ गये थे। पं. भवानी प्रसाद तिवारी या पं. रामेश्वर गुरू के यहां तीनों की रोज मुलाकात होती। कोई पान का ठेला या चाय की गुमटी प्रहरी का चलता-फिरता कार्यालय बन जाता। एक का विचार दूसरों को प्रेरणा देता, उन्हें नया सोचने को उकसाता। परसाई न केवल तीनों में सबसे तरुण थे, बल्कि सबसे अधिक रचनाशील और सबसे प्रखर भी! रामेश्वर गुरू ने प्रहरी और परसाई के सबंधों की पड़ताल करते हुए लिखा है- प्रहरी के अनूठेपन ने प्रान्त में निर्भीकता का अनूठा माहौल बना दिया था। श्री परसाई ने संकल्पित होकर अपनी अनूठी प्रतिभा का सहयोग प्रहरी को देकर साप्ताहिक पत्रकारिता को अनूठी तेजस्विता दी।

वसुधा के दिन भी क्या अजीब दिन थे? इतनी वैचारिक ऊर्जा, इतना रचनात्मक वैविध्य, इतनी सामाजिक प्रतिबद्धता, इतनी बेलिहाज प्रखरता। वसुधा से जुड़ा हर व्यक्ति संपादक, लेखक, मुद्रक, पाठक- हर कोई 'धाणी के हेत' लड़ने को तैयार था। वसुधा के लिए हर कोई कबीर का सूरा बनना चाहता था–

सूरा ऐसा चाहिए, लड़े धाणी के हेत।
पुरजा पुरजा हुई रहैं, तऊ न छोड़े खेत।।

वसुधा के रामेश्वर गुरूओं, हरिशंकर परसाइयों, गजानन माधव मुक्तिबोधों, प्रमोद वर्माओं, श्रीकांतों, हनुमानों के नाम अलग-अलग हों पर इनमें से हर एक वसुधा के लिए जां-निसार था। जां- निसार शायद गलत शब्द है। जां चली जायेगी तो वसुधा कैसे निकलेगी, कैसे छपेगी, कैसे बंटेगी, कैसे बेईमानी और बदनीयती का भांडा फोड़ेगी? नहीं जान नहीं देंगे। हां, वसुधा के अस्तित्व के लिए, उसकी इयत्ता के लिए लंगोटी ले लो, ये जां-निसार लोग तो बाद में थे, पहिले लंगोट-निसार लोग थे। वसुधा के लिए हर कोई लंगोटी में फाग खेलने को तैयार था। ये बड़े लोग नहीं थे। स्कूलों के मास्टर, कॉलेजों के लेक्चरर, कॉलेजों-यूनिवर्सिटियों में पढ़ने वाले छात्र, पुस्तकों के दुकानदार, प्रकाशन विभाग के छोटे-मोटे अधिकारी, डूंड पे डले रहने वाले इन अलगंड लोगों ने प्रदेश में एक नयी साहित्यिक, सांस्कृतिक और वैचारिक फिजा तैयार की थी। इनके पास न कोई बदरी विशाल पित्ती थे न कोई प्रभा खेतान। इन्हें किसी सरकारी अनुदान का भी आसरा नहीं था। इनमें ये भी हुनर नहीं था कि पहले अच्छी खासी रकम जमा कर लो फिर पत्रिका 'लांच' करो। मन में आया और वसुधा निकाल दी। पहिला अंक तो आ गया। अब दूसरे अंक की चिन्ता शुरू हुई। सागर में परसाई जी के पुराने मित्र हैं कवि, पत्रकार, सामाजिक एक्टीविस्ट, जागृति पत्रिका निकाल चुके हैं, जैसी लेखनी है, वैसी ही वाणी। कांग्रेसी नेता हैं- छोटे बड़े सभी उनको मानते हैं। दूसरे अंक के लिए फाइनेंस कहां से आये तो बस में बैठे और परसाई जी सागर आ गये। शिवकुमार जी के यहां ठहरे। शिवकुमार जी को साथ लिया, वसुधा का पहिला अंक बगल में दबाया और सागर के उद्योगपतियों, व्यापारियों के यहां चंदा लेने पहुंच गये। जहां भी गये-चंदा मिला, लोग वसुधा के ग्राहक बने। प्रदेश और प्रदेश के बाहर का भी, समाजवादी विचारधारा से जुड़ा हुआ हर रचनाकार, वसुधा को अपना मानता था और वसुधा चले, चलती रहे, यह उसका मानो कौल था। सामग्री आ रही है, ली जा रही है। प्रूफ देखे जा रहे हैं, मुद्रक से झिक-झिक हो रही है। अंततः रिक्शे में वसुधा का गट्ठर लादे हुए परसाई उन्हें अपने घर ला रहे हैं, डिस्पैच कर रहे हैं। मैंने उन्हें वसुधा के गठ्ठर लादे हुए रिक्शे पर बैठे हुए देखा है- विश्व विजयी मुद्रा में। घर में जगह कम पड़ी तो गट्ठर मेरे यहां डाल दिये। यदि परसाई जी में इतनी लगन न होती, इतनी संगठन शक्ति न होती, इतना आत्मविश्वास न होता, मित्रों की ऐसी सपर मैना न होती तो वसुधा वसुधा न होती। वसुधा परसाई जी की मैग्नम ओपस थी। परसाई को कीर्ति व्यंग्य लेखन से मिली, पर प्रतिष्ठा वसुधा से।

वसुधा के संपादन के लिए परसाई जी ने वही पद्धति अपनायी जिसके वे प्रहरी के दिनों में अभ्यस्त हो चुके थे। वास्तव में यह शैली नई नहीं थी। तुलसीदास ने वाराणसी में राम लीला के मंचन के लिए बहुत पहिले यह शैली अपनायी थी। यदि केवट प्रसंग का अभिनय होना है तो वह मल्लाहों की बस्ती में होगा। यदि जनक वाटिका का दृश्य मंचस्थ किया जाना है तो तुलसी को सबसे मौजूं मालियों का मुहल्ला लगता। परसाई वसुधा का संपादन सामान्यतया किसी कार्यालय या प्रेस में बैठकर नहीं करते थे। उनका वसुधा के लिए अधिकांश लेखन लक्ष्मी बाग के मकान में, जाफरी वाले बाहर के कमरे में, तखत पर गाव तकिये के सहारे टिके होता। उनके साहित्यिक मित्रों के घर वसुधा की सामग्री के संपादन के अस्थायी कार्यालय होते। पं. रामेश्वर गुरू के यहां रात में बैठक जमती। हनुमान वर्मा डी.एन. कालेज में अंग्रेजी के लेक्चरर थे। सुबह 7.30 बजे महाविद्यालय जाते 10.30 तक वापिस आ जाते। मुझे याद है एक दिन सुधा भाभी यानि

श्रीमति हनुमान वर्मा से उनकी एक पड़ोसिन ने बड़े दु:ख के साथ कहा था- बहिन जी, वर्मा जी का बाकी सब तो ठीक है पर उनकी कहीं नौकरी और लग जाती। जब तक अन्य कार्यालयों या विद्यालयों में काम करने वाले घर से निकलते तब तक वर्मा जी अपना काम निबटा कर घर वापिस आ जाते। परसाई जी भोजन करके घर से निकलते तो पहिला पड़ाव हनुमान का घर होता। एकाध घंटा हनुमान के यहां बिताने के बाद वे आगे बढ़ते। उस एकाध घंटे में अंग्रेजी की किसी कहानी का हिन्दी अनुवाद फाइनलाइज होता, अगले माह की वसुधा के लिए हनुमान को क्या लिखना है, इसकी चर्चा होती। नागराजन अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। महाकौशल महाविद्यालय में, अमरावती से स्थानांतरित होकर जबलपुर आये थे। प्रमोद वर्मा के मित्र। शेक्सपियर पर लिखे गये उनके शोध-पत्र विदेशी पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे। नेपियर टाउन के मुख्य मार्ग पर मरवाहा के बंगले में पीछे की तरफ रहते। बेहद अधीर, अंग्रेजी साहित्य की नव्यतम जनकारियों से लैस। प्रमोद के मित्र थे। इसलिए परसाई जी से प्रगाढ़ता होते देर नहीं लगी। प्रमोद उनसे जरा-सी पीछे की गली में रहते थे, पं. भवानी प्रसाद तिवारी के बंगले से थोड़ा पहिले। यहां बैठ कर वसुधा के लिए भेजी गयी एक साहित्यिक की डायरी पढ़ी जाती। मुक्तिबोध जी अपनी डायरी हर माह भेजते, एक पार्सल के रूप में। बड़े-बड़े अक्षरों की लिखावट। जहां-जहां लिखावट समझ में नही आती, प्रमोद गिरह खोलते। मुक्तिबोध और श्रीकांत जबलपुर से बाहर रहते थे अत: प्रमोद पर परसाई जी के बाद वसुधा के संपादन का सबसे अधिक भार रहता। फिर अजय चौहान की पुस्तकों का प्रतिष्ठान जिज्ञासा था- नयी से नयी पुस्तकों का प्रतिष्ठान। शेष नारायण राय का यूनिवर्सल बुक डिपो थोड़ा आगे गंजीपुरा में था, श्रीबाल पाण्डेय यहां बैठे मिलते। पं. रामेश्वर गुरू या पं. भवानी तिवारी के यहां सांध्य मंडली जमती। आते जाते मेरे यहां रुक कर या खड़े-खड़े किसी नयी पुस्तक या पत्रिका के ताजे अंक पर टिप्पणी लिखने की बात होती। मोबाइल कोर्ट की तरह मोबाइल संपादन। जबलपुर से बाहर रहने वाले मित्रों से वसुधा की सामग्री के लिए निरंतर पत्र व्यवहार होता रहता, तगादे किये जाते। यह परसाई जी का ही कमाल था कि वसुधा के लिए उन्होंने रिले पत्र व्यवहार की एक पद्धति ईजाद की। परसाई जी पत्र लिखते तो उनके तमाम-तमाम मित्र वसुधा के लिए रचनाएं भेज देते। जब एक बार लिखने पर मित्रगण रचनाएं नहीं भेजते तो यारों के यारों की मदद ली जाती।

जन्म 1932 में देवरी कलाँ, सागर. एम.ए., पी-एच.डी. अत्यंत मेधावी छात्र, सदा प्रथम श्रेणी में सर्वप्रथम। कोरिया दरबार, सागर वि.वि. से स्वर्ण पदकों से पुरस्कृत। मध्यप्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में अध्यापन। तीन दर्जन पुस्तकों का लेखन, चार पुस्तकों का अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद। लोक संस्कृति की पत्रिका ईसुरी के नौ अंकों का सम्पादन।

वसुधा छपती नहीं, पढ़ी भी जाती थी। उसमें प्रकाशित रचनाओं का दूर-दूर तक नोटिस लिया जाता था। सभी पीढ़ियों के पाठकों द्वारा हर विचारधारा के साहित्यकारों द्वारा।

वसुधा में जो कविताएं छपती थीं- सवा डेढ टांग की होना उनकी पहिचान नहीं थी। उनकी पहिचान थी आधुनिक भावबोध को नये ढंग से व्यक्त करना, छंद हो चाहे बेछंद हो। मुक्तिबोध, श्रीकांत वर्मा, रामविलास शर्मा, प्रमोद वर्मा, अशोक वाजपेयी, आग्नेय, कान्ता, श्रीबाल पाण्डेय, शिवकुमार श्रीवास्तव, भवानी प्रसाद मिश्र छंद और बेछंद लिख रहे थे और वे सब वसुधा के कवि उन अन्य कवियों को भी वसुधा में कविताएं भेजने के लिए प्रेरित करते थे जो वसुधा के लिए नितान्त नये थे।

वैचारिकता के मामले में, रचनाशीलता के मामले में वसुधा में कोई दोस्तदारी नहीं चलती थी। अच्छे से अच्छे, श्रद्धेय से श्रद्धेय मित्र से कोई लिहाज नहीं बरता जाता था। कोई आदरणीय हो या फादरणीय, वसुधा में तभी छपेगा जब उसकी रचना उत्कृष्ट हो। किसी भी प्रकार की गिमिकरी, किसी भी प्रकार के मैनरिज्म की वसुधा में खबर ली जाती। सब चलता है, क्या फर्क पड़ता है के परसाई जी सख्त खिलाफ थे। माखन लाल चतुर्वेदी उस समय तक दादा बनने लगे थे। केवल आदरणीय ही नहीं, उनका रुतबा फादरणीय हो गया था। परसाई जी ने उनके भी गद्य पर वसुधा में एक टिप्पणी ठोंक दी, बावजूद इसके कि माखन लाल जी के लिए परसाई जी के मन में असाधारण श्रद्धा, प्रशंसा एवं आत्मीयता रही है। परसाई जी ने वसुधा में लिखा- 'अगर माखनलाल चतुर्वेदी का गद्य है तो दो पैराग्राफ में पीढ़ियां, ईमान, बलिपंथी, मनुहार, तरुणाई, लुनाई आ जाना चाहिए। वरना वह चतुर्वेदी जी का लिखा हुआ नहीं है।' चतुर्वेदी जी बड़े साहित्यकार थे- परसाई जी के लिखने का उन्होंने बुरा नहीं माना।

श्री नर्मदा प्रसाद खरे परसाई जी के मित्र थे और वसुधा के करम फरमा। जब भी परसाई जी को पैसों की जरूरत होती, खरे जी का पर्स उनके लिए खुला ही रहता। पर साहित्यिक बेईमानी के लिए वे किसी को बख्शने को तैयार नहीं थे। 'बे-पढ़ी समीक्षा' में ही उन्होंने लिखा- 'अभी हाल ही में महाकौशल के साहित्य और साहित्यकारों पर एक लेख छपा है। विशेषकर महाकौशल के लोग तथा साहित्यिक इस लेख को पढ़कर जानेंगे, फिर चकित होंगे कि यहां नर्मदा प्रसाद खरे के बाद कवि-लेखक पैदा ही नहीं हुए।'

वसुधा की सार्थकता, सफलता और लोक ग्राह्यता का श्रेय परसाई जी ने अकेले स्वयं लेने का उपक्रम नहीं किया। स्वयं से पहिले फूलमाला के लिए गुरू जी को आगे करते- 'गुरू जी का बहुत महत्वपूर्ण साहित्यिक कार्य वसुधा मासिक पत्रिका का पौने तीन वर्ष तक प्रकाशन था।' और 1956 से 1958 तक हमने जबलपुर से वसुधा निकाली। इसमें मुक्तिबोध और श्रीकांत दोनों पूरी तरह साथ थे। वसुधा इन्ही की पत्रिका थी।' वसुधा का स्टार फीचर 'एक साहित्यिक की डायरी' थी। पहिली बार हिन्दी के

किसी कवि और विचारक ने साहित्य के रचना कर्म पर और काव्य शास्त्र के क्षेत्र में नितांत मौलिक उद्भावनाएं इस डायरी में की थी।' कला का तीसरा क्षण' तो मुक्तिबोध की खास अपनी चीज थी।' एक साहित्यिक की डायरी' पर पाठकों की प्रतिक्रियाओं के प्रति मुक्तिबोध बहुत सजग थे।

इस डायरी को वसुधा के लिए धारावाहिक लिखवा लिये जाने के पीछे प्रमुख कारण था- मुक्तिबोध के ही शब्दों में- 'परसाई जी के पत्र रूपी पिस्तौल'। एक साहित्यिक की डायरी के अलावा वसुधा का नियमित स्तंभ था श्रीकांत लिखित 'कलम की दिशा' जो वे समुद्रगुप्त के नाम से लिखते और जिसमें महीने भर छपी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं की रचनाओं का आकलन होता। श्रीकांत की बहुत सी कविताएं वसुधा में छपीं पर जब उन्होंने वे कविताएं लिखी जो 'माया दर्पण' में संकलित हैं तो मुक्तिबोध चौंके-हैरान हुए। एक पत्र में उन्होंने लिखा- 'मेरे छत्तीसगढ़ के इस प्यारे कवि को क्या हो गया है?'

परसाई जी ने लिखा है कि किसी पत्रिका का संयुक्त निकला तो समझो वह बंद होने के कगार पर है। वसुधा शुरू में चंदा, ग्राहक और कुछ विज्ञापनों के भरोसे निकलती थी। अंतिम दिनों में वसुधा उधारी के कागज, उधारी के मुद्रण पर किसी तरह जिन्दा रही। परसाई जी शुभ चिन्तक प्रेस से वसुधा का अंक उठाने गये। जेब में पैसे नहीं थे, बैंक में बैलेंस नहीं था। यार-दोस्तों से जितना उधार संभव था, लिया जा चुका था। प्रेस के मालिक बाबू बालमुकुंद गुप्ता बोले- वसुधा का अंक छप के तैयार हैं। ये पैकेट रखे हैं- पिछले अंक की छपाई का पैसा दो और यह अंक ले जाओ।

परसाई जी ने कहा- बाबू जी, पैसा तो अभी हमारे पास नहीं है।

तो हम यह अंक भी नहीं देंगे।

यह अंक नहीं देंगे तो हम आपका पिछले अंक का बिल भी नहीं दे सकेंगे।

ये क्या बात हुई? का हमारा पैसा खा जाओगे?

नही, मेरा मतलब है, यह अंक हम विज्ञापनदाताओं को देंगे और उनसे पैसा लेंगे।

हम नहीं दें तो?

तो हमारी पत्रिका बंद हो जायेगी और आपके पैसे डूब जायेगा।

तुम अजब आदमी हो। हमारे ही दांव से हमको ही चित करते हो।

वसुधा के अंतिम दिन। परसाई लिखते हैं- वसुधा की आर्थिक हालत लगातार गिरती गयी। हमने उसे बंद करने का तय कर लिया। पिछले अंक की छपाई का बिल चुकाने बाबू जी के पास पहुंचा (बाबूजी यानी शुभ चिन्तक प्रेस के स्वामी- बालमुकुंद गुप्त)। बाबू जी बोले- 'इस महीने तो तुम तड़ाक-फड़ाक ले आये। अगले अंक का मैटर कहां है? मैंने कहा- 'बाबू जी अब अगला अंक नहीं निकलेगा। हम हार गये। पैसे का इंतजाम अब नहीं होता। पौने तीन साल बहुत हो गये। अब हम वसुधा बंद कर रहे हैं।'

छोटे आदमी को बड़ा बनाने की कला परसाई जी को आती है। बाबू बालमुकुंद गुप्त को आदमकद बनाते हुए परसाई जी लिखते हैं- 'वे बहुत दुःखी हो गये। सोचने लगे। 'वसुधा' से उन्हें दिली लगाव हो गया था।' बोले- 'परसाई, इस तरह निराश होकर अच्छा काम नहीं छोड़ा जाता। हमने जिन्दगी में बहुत उतार-चढ़ाव देखे हैं। देखो, 'वसुधा' के तीन अंक हम निकालते हैं। इतने में तुम लोग अपनी स्थिति संभाल लो। बाबू बालमुकुंद गुप्त ने तीन अंक निकाले। घाटे का काम था। तीन माह बीत गये। वसुधा बंद हो गयी।'

वसुधा बंद हो गयी पर क्या परसाई जी सचमुच हार गये?

वसुधा बंद हो गयी। एक मिशन अधबीच में ही टूट गया। परसाई जी ने बहुत दुःख के साथ लिखा- 'आज घाटा सहे बिना कोई हिन्दी पत्रिका नहीं चल सकती। कहानी की और फिल्मी पत्रिकाएं अपवाद हैं। घोर संकट के बीच हम भी दो साल वसुधा निकाल ले गये। कुछ लोग हैं जो दम बांधे रहे। अप्रैल (1958) में बंद होने की स्थिति आ ही गयी थी। हमने यहां और अन्यत्र बिखरे हुए मित्रों को 'गंगाजल' मुंह में डालने की सूचना दी पर उनमें से अनेक ने इसके बदले 'मृत्युंजय' की पुड़िया दी।'

मृत्युंजय की पुड़िया ने काम किया पर ज्यादा देर नहीं। मई 1958 का अंक और प्रेस में गया। परसाई जी ने सारे पाठकों और लेखकों से प्रार्थना की कि वे ग्राहक बनकर-बनवा कर, विज्ञापन देकर-दिलवा कर तथा अन्य प्रकार से आर्थिक सहायता सुलभ करके-करवा कर के प्रकाशन में योग दें।

मैंने बचपन में एक चिड़िया देखी थी। टिटहरी। संस्कृत की टिट्टभी रातको चिड़िया अपने पैर ऊपर की ओर करके सोती है। लोक में यह मान्यता है कि टिटहरी को आकाश के गिरने का बड़ा डर होता है। दिन को आकाश टूटकर धरती पर गिरने लगेगा तो बहुत से लोग धरती को बचाने वाले, आकाश को थामने वाले दौड़े आयेंगे पर रात के अंधेरे में जब सब सो रहे हैं, आकाश टूट जाये तो धरती को कौन बचायेगा? टिटहरी यह सोच कर बड़ी चिंतित रहती है। नन्ही-सी जान, रात के अंधेरे में वसुधा की रक्षा के लिए टांगें ऊपर कर सोती है।

परसाई जी भी टिटहरी ही थे। जब चारों ओर अंधकार व्याप्त हो, सारे मूल्य एक-एक कर धाराशायी हो रहे हों, पृथ्वी को बचाने वाला कोई न दिखता हो तब परसाई जी ने वसुधा निकाली 'जो घर जारे आपना चलो हमारे साथ' का उद्घोष करते हुए, लंगोटी में फाग खेलते हुए, यारों, मित्रों आत्मीयों, अच्छे काम में विश्वास करने वालों के भरोसे। पता नहीं टिटहरी गिरने वाले आसमान को थाम पाती है या नहीं- नन्ही-सी टिटहरी की आस्था, उसका संकल्प, उसका खेत न छोड़ने का हौसला, धरती को बचाने को उसका दुर्दम्भनीय पौरुष अपने आप में बड़ी बात है। यह बड़ी बात परसाई जी में थी। मुक्तिबोध ने लिखा है कि 'हम लोग बड़े नहीं हैं, हां ईमानदार जरूर हैं।' अपनी वैचारिक निष्ठा की पारदर्शी ईमानदारी ने परसाई को बड़ा बना दिया। परसाई जी शायद पिछले जन्म में टिटहरी थे। इस जन्म में भी उन्होंने टिटहरी जैसा होना स्वीकार किया। परसाई जैसे लोग शायद हर जन्म में टिटहरी ही होते हैं- अपने प्रयासों के फलस्वरूप भरभराते हुए आसमान से पृथ्वी को संभालने वाली।

– 'वसुधा' से साभार

विद्यापुरम, मकरोनिया, सागर, म.प्र.

हरीश नवल

हरिशंकर परसाई के साथ बीस बरस

समय तीस वर्ष पूर्व से अधिक, स्थान–सफदरजंग अस्पताल की ऊपरी मंजिल का एक वार्ड, जिसमें एक पलंग पर लेटे हुए श्री हरिशंकर परसाई को देखने मैं और प्रेम जनमेजय गए थे। कैसा था वह अप्रतिम क्षण जब पहली बार अपने आराध्य व्यंग्य गुरू से बातचीत करने का अवसर मिला था।

परसाई जी की एक टांग क्षतिग्रस्त थी, इलाज चल रहा था, पीड़ा केवल टांग में थी, उनके चेहरे पर उसका कोई भाव स्पष्ट नहीं था। उन्होंने उठने का यत्न करते हुए दो उदीयमान रचनाकारों का स्वागत किया जो व्यंग्य के क्षेत्र को धर्मक्षेत्र समझ उसमें कूद चुके थे। मेरे सेनानायक परसाई जी ही थे। उनकी कोई भी रचना, कहीं से भी उपलब्ध हो, मैं ढूंढ–ढूंढकर अवश्य पढ़ता था। मैं ही क्यों मेरे जैसे अनेक नव व्यंग्यकारों की शैली और लेखन–चेतन पर परसाई जी का गहरा प्रभाव पड़ा था।

वे अस्पताल में कई दिन रहे, उनसे मिलने के, बतियाने के, गुरूमंत्र लेने के अनेक मौके मिले। वे मानते थे कि 'व्यंग्य का क्षेत्र अभी रिक्त है, नई कहानी और नई कविता की जड़ें जम चुकी हैं, व्यंग्य को पूर्णतः अपना लेना चाहिए।' मेरे भीतर के रचनाकार ने यह बात पक्की गांठ बांध ली थी।

जब कभी व्यंग्य तथा व्यंग्य से संबंधित विषयों पर प्रश्न उठते और समाधान न मिलते, हाथ अपने आप उठकर परसाई जी को पत्र लिख देता और आंखें दो दिन बाद से लैटर बाक्स में पावती ढूंढने लगतीं। तब मैं शाहदरा में रहता था, नेपियर टाऊन, जबलपुर से उनका जवाब अवश्य आता था। वर्षों पूर्व व्यंग्य के लिए परिचर्चा का आयोजन करते हुए मैंने परसाई जी को पत्र लिखा था और पूछा था कि क्या वे व्यंग्य को एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा मानते हैं? उनका उत्तर उनके देहावसान से ठीक बीस वर्ष पूर्व

बधाई!

पिछले दिनों स्वयं सेवी संस्था 'चित्र कला संगम' ने वर्ष 2008 के लिए चर्चित व्यंग्यकार डॉ. हरीश नवल को उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए 21 हजार रुपए के पुरस्कार तथा प्रशस्ति-पत्र से उनके निवास स्थान पर उन्हें सम्मानित किया। निर्णायक मण्डल में सर्वश्री विष्णु प्रभाकर, डॉ. मधु पंत, डॉ. सत्यव्रत त्रिपाठी और पद्मश्री वीरेन्द्र प्रभाकर सम्मिलित हैं।

हरीश नवल को 'व्यंग्य यात्रा' परिवार की हार्दिक बधाई।

दस अगस्त उन्नीस सौ पिचहत्तर को मुझे मिला था जिसे आठ अगस्त को लिखा गया था। मुझे घोर अचरज हुआ कि जिस लेखक के कारण 'व्यंग्यकार' विशेषण सम्मानित हुआ, जिसने इसे शुद्र से ब्राह्मण बनाया, वह स्वयं इसे 'विधा' ही नहीं मानता। परसाई जी ने साफ–साफ लिखा . . . व्यंग्य स्पिरिट है। . . .व्यग्य विधा नहीं है। कारण यह है कि व्यंग्य का अपना कोई स्ट्रक्चर नहीं है। कहानी, नाटक, उपन्यास का स्ट्रकचर है, व्यंग्य का नहीं है. . .।

मैं हतप्रभ था क्योंकि हम तो 'व्यंग्य' को गद्य की एक स्थापित विधा मनवाने पर तुले हुए थे और ठोस व्यंग्य का सबसे बड़ा लेखक हमारी नजर में तब हरिशंकर परसाई ही थे।

परसाई जी के व्यंग्य की सबसे बड़ी ताकत जो विरासत में अजातशत्रु, ज्ञान चतुर्वेदी, मुझे, जनमेजय, सुरेश कांत तथा कतिपय अन्य हमारी पीढ़ी के व्यंग्यकारों को मिली, वह है– व्यंग्य की परिणति का करुणा में होना, यही त्रासदी ही सार्थक व्यंग्य है, शैली के स्तर पर बदलाव हो सकते हैं। मेरा सौभाग्य कि मुझे परसाई जी से कथात्मकता की किस्सागोई का शैली भी मिली, भले ही बातचीत में उनकी यह शैली नजर नहीं आती थी।

उन्नीस सौ अठत्तर में जबलपुर जाने का मौका हाथ लगा। युवा व्यंग्यकार रमेश शर्मा 'निशिकर' के बंगले में सपरिवार ठहरना हुआ। भाई 'निशिकर' ने एक व्यंग्य–गोष्ठी परसाई जी की अध्यक्षता में मेरे रचना पाठ पर आयोजित की। अनेक साहित्यकार और व्यंग्य–प्रेमी उपस्थित हुए किंतु परसाई जी को वहां न पाकर निराशा के उत्सव में मेरे साथ शामिल हुए। गोष्ठी समाप्ति के बाद हम लोग परसाई जी के निवास पर गए। वे अस्वस्थ थे, लेटे थे, हमें देख हाथ जोड़ क्षमा मांगने लगे कि 'किसी ने जाने न दिया, तबियत खराब हो गई. . ।'

मैं उनकी शालीनता और भद्रता देख विह्वल हो उठा। एक वटवृक्ष को घासफूस के आगे नत् देख मैंने उनके चरण पकड़ लिए और आशीर्वाद की मांग की। वे बोले, एक व्यंग्य रचना सुनाओ फिर आशीर्वाद मिलेगा। मैंने अपनी एक प्रिय रचना 'बुढ़िया, सराय रोहिल्ला और विक्रमार्क' डरते–डरते सुनाई। उन्होंने सराहना की तथा ढेरों आशीर्वाद दिए, कहा, 'गोष्ठी मेरे घर होनी चाहिए थी, घर उतना बड़ा नहीं है पर मन भी तो देखना चाहिए था मगर निशिकर माने नहीं थे।'

परसाई जी दैहिक रूप से अस्वस्थ होने के बावजूद मानसिक रुग्णता के शिकार न हुए। जिस विचारधारा पर उनकी सोच टिकी हुई थी, उसे कभी विलग न हुए। मैंने पहली बार उन्हें बरसों पहले दिल्ली के बहादुरशाह जफर मार्ग पर स्थित प्यारेलाल भवन के प्रेक्षागृह में हो रही प्रोग्रेसिव गोष्ठी

की कार्यवाही में हिस्सेदारी करते देखा था। मेरा आकर्षण वहां केवल वे ही थे। कुर्तुल-एन-हैदर वक्तव्य देकर आई थीं, परसाई प्रतिक्रिया दे रहे थे। तभी एक लेखक ने अपने भाषण में धर्मवीर भारती का नाम लेकर उन पर कीचड़ उछालना शुरू किया, मुझे बेहद खला। भारती जी पर कीचड़ मानो मुझे अपने पर पड़ा लग रहा था, भारती हमारे प्रिय थे क्योंकि हम लोग 'धर्मयुगीन' कहलाते थे. . .कोई कुछ कहता न कहता परसाई जी ने उठकर उन महाशय के कथन पर अपना विरोध दर्ज कराया कि जो अनुपस्थित है तथा यहां अप्रासंगिक है उस पर ऐसी टिप्पणी देना शोभा नहीं देता . . .मेरी कीचड़ छंट गई, भारती जी पर मानों छींटे भी नहीं पड़े. . .मैं परसाई जी पर मुग्ध हो उठा था, मुझे उनका शोभा मंडल नजर आने लगा था। तब मैं सोचता था, क्या कभी उनसे मिल पाऊंगा।

दिसंबर अठासी में कॉलेज का टूर लेकर पंचमढ़ी जाना हुआ, लौटते हुए मैंने तथा सुरेश ऋतुपर्ण ने जबलपुर का कार्यक्रम बनाया तथा विद्यार्थियों की शंकाओं को लेकर हम लोग परसाई जी के घर गए। परसाई जी बेहद प्रसन्न हुए, विद्यार्थियों की शंकाओं का समुचित समाधान किया। हम सब उनके पलंग के चारो ओर बैठे, खड़े या टिके थे, वे पलंग पर लेटे थे, तब वे बैठ नहीं पाते थे। उन्होंने वातावरण में इतनी सहजता पैदा कर दी कि एक छात्रा परमजीत कौर ने उन्हें क्षीर सागर में शेष-शैय्या पर लेटे विष्णु भगवान बताया। वे यह उपमा सुनकर खूब हंसे। एक छात्र गौतम ने 'दलित साहित्य' पर उनसे इंटरव्यू लेना चाहा, वे लगभग बैठ गए यह उनके भीतरी मन का प्रश्न था और दलित साहित्य पर धाराप्रवाह बोलने लगे. . .

'पंचमढ़ी टूर' आज भी हमारे छात्रों की यादों की धरोहर है। वे जब भी मिलते हैं परसाई जी के घर की यात्रा की बरबस याद आती है, विशेषकर परसाई जी का आग्रह कर बिस्किट खिलाना तथा फोटो खिंचवाना नहीं भूल पाता, उनका मेरे प्रति व्यंग्यात्मक कमेंट 'तुम अब ज्ञानपीठ मार्का हो' मैं भी भला कहां भुला सकता हूं।

एक सहज इंसान थे परसाई जी जिनमें ममता और शालीनता कूट-कूट कर भरी हुई थी, जो उन्हें ठीक से नहीं जानते थे, उनके बारे में भ्रांतियां पाल लेते थे। मसलन एक टी.वी. प्रोड्यूसर जो परसाई जी की कृति 'रानी नागफनी'. . .पर धारावाहिक बना चुके थे, उनके विषय में भ्रांत थे। जब सन् नब्बे में वे दूरदर्शन के लिए धारावाहिक प्रस्ताव बनवाने आए और मैंने तथा प्रेम जनमेजय ने उनके समक्ष तेरह व्यंग्यकारों की तेरह रचनाओं पर आधारित एक धारावाहिक बनाने का विचार दिया, वे खुश हुए, लेकिन परसाई जी का पहला नाम सुनते ही कि पायलेट एपिसोड उनकी कृति पर हो, वे कहने लगे, 'परसाई जी डिफिकल्ट हैं, वे बड़ी शर्तें रखेंगे, उनसे आप ही स्वीकृति मंगवाओ। लेकिन मैं उन्हें उतना पैसा नहीं दे पाऊंगा, जितना वे मांगेंगे, आप ही निपटें. . .आदि अदि. . .

. . .परसाई जी ने तो हमें लौटती डाक से ही स्वीकृति भेज दी तथा किसी भी रचना को लेने तक की हामी भरी, पैसे की बात तो पत्र में कहीं थी ही नहीं। पत्र देखकर प्रोड्यूसर विंग कमांडर दास विस्मय से भर उठे, बोले, 'दरअसल परसाई जी से मैंने कभी डाइरेक्ट डील नहीं किया था, इसलिए गलतफहमी हुई।'

सन् तिरानते में भी हमने परसाई जी से किसी रचना के प्रकाशन की अनुमति मांगी थी जो जगमोहन चोपड़ा की 'बहरहाल' योजना के अधीन थी, अनुमति तुरंत व बिना शर्त ही मिली। हमें उनका आशीर्वाद ही नहीं, प्यार ही नहीं, दुलार भी मिला। वे गोष्ठियों में नहीं जा पाते थे। जब से एक राजनैतिक दल के कार्यकर्ताओं ने उन पर शारीरिक प्रहार किए थे, तब से ही वे स्वस्थ नहीं हो पाए किंतु मानसिक शक्ति उनकी प्रबल रही जिसका उदाहरण है उनके द्वारा निरंतर लिखा जाने वाला धारदार व्यंग्य।

आज वह हिंदी व्यंग्य का स्तम्भ शरीर से नहीं दिखाई देता किंतु हमारे हिंदी व्यंग्य साहित्य पर आज भी उनका मस्तिष्क राज कर रहा है, कुछ नहीं छोड़ा उन्होंने, सब पर प्रहार किया, हम लोग उनसे आगे जाने की बात दूर, उनके पासंग तक फटक भी कहां पा रहे हैं।

– 'मेधा प्रकाशन' से शीघ्र प्रकाश्य संस्मरणात्मक पुस्तक 'निराला की गली में' से साभार।

15 सी, हिंदू कॉलेज बंगले
विश्वविद्यालय मार्ग, दिल्ली-110007

व्यंग्य यात्रा का

आगामी अंक

अक्टूबर-दिसंबर 2008

हिंदी-व्यंग्य के

आधार स्तंभ

श्रीलाल शुक्ल

के

व्यक्तित्व एवं साहित्य

पर केंद्रित होगा

श्रीलाल शुक्ल से

संबंधित सामग्री

31 अक्टूबर 2008 तक

सादर आमंत्रित है।

व्यंग्य में ईमानदारी की आवश्यकता है– रामशरण जोशी

प्रेम जनमेजय से बातचीत

रामशरण जोशी बहमुखी प्रतिभा का दूसरा नाम है। एक लेखक के रूप में तो मैं उन्हें बहुत पहले से जानता था। कभी मिला नहीं था। मिलने की इच्छा थी। रामशरण जोशी को जब मध्य प्रदेश सरकार का 'शरद जोशी' सम्मान मिला था तो व्यंग्य-क्षेत्र के कुछ क्षेत्रपालों को यह पचा नहीं था। पर यह नाम व्यंग्य की दुनिया का 'चर्चित' नाम हो गया था। उन दिनों रामशरण जोशी का साहित्य मैंने भी खोजा और पढ़ा। मिलने की इच्छा तब से बनी हुई। दिल्ली में अनेक गोष्ठियों में अभिवादन का आदान-प्रदान हुआ पर रामशरण जोशी से बतियाने के अवसर न बना।

इस बार मार्च में बैंगलूर में 'हिंदी कुंभ' के दौरान जो मुलाकात उसने पिछले गैप भर दिए। पहली बार मिलने पर मैंने पाया कि इस शख्स में गजब की आत्मीयता है। सड़क पर चलते हुआ, पहली बार मिला यह शख्स, आपको बांह से पकड़ सामने आते वाहन से बचा सकता है, आपका पूरा ध्यान रखता है। पहली बार नजदीक से मिलने के बावजूद उसकी आत्मीयता में कहीं कोई कमी नहीं है। महानता की कहीं दुर्गंध नहीं अपितु महक ही है।

सोचा इस शख्स को और जाना जाए इसके साथ एक शाम गुजारी जाए। यह बातचीत उसी शाम का परिणाम है।

'व्यंग्य यात्रा' के पाठकों के लिए रामशरण जोशी का अपना पसंदीदा व्यंग्य 'मैं और वह' भी प्रकाशित कर रहे हैं।

प्रेम जनमेजय : लेखन आपकी प्राथमिकता है और आपने विविध विधाओं में लिख-पढ़ा है। लेखक चाहे विविध विधाओं में लिखे पर किसी एक विधा के प्रति उसका 'अनुराग' रहता है। आपके लेखन की प्रक्रिया क्या है? आपकी प्रिय विधा क्या है?

रामशरण जोशी : मेरे जीवन की स्थितियां कुछ अजीबो-गरीब रहीं। मैं कुछ भी तय करके न तो लिख पाता हूं और न मैंने लिखा है। यद्यपि मैंने अपनी लेखन-यात्रा आकाशवाणी के बाल कलाकार के रूप में 1959 में आरंभ की थी। मैंने आकाशवाणी के लिए नाटक लिखे। 1959-63 के बीच के समय में, मेरे इन नाटकों में ओम शिवपुरी, सुधा शर्मा, गोवर्धन असरानी जैसे चर्चित रंगकर्मियों ने काम किया। पिछले दिनों मेरे नाटकों का एक संकलन 'दावानल' के नाम से आया, जिसने मेरे प्रशंसकों की इस सोच को थोड़ा आश्चर्य में भी डाला कि मैंने कभी नाटक भी लिखे थे। आकाशवाणी से मेरा अंतिम नाटक 1987 में प्रसारित हुआ था जिसमें बी एम बड़ोला जी जैसे श्रेष्ठ कलाकार थे। 1963 और 1987 के बीच एक बड़ा अंतराल आया। यह अंतराल मेरे दूसरे दौर का रहा। यह दौर था पत्र-पत्रिकाओं का। 1967 में एक संवाददाता के रूप में मैंने अपना यह दौर आरंभ किया। हिंदुस्तान समाचार संवाद समिति हुआ करती थी जिसने मुझे भोपाल एक संवाददाता के रूप में भेजा। (रामशरण जोशी मंद-मंद मुस्कराये और तयशुदा मार्ग पर अपने को बांध न पाने की प्रकृति पर हल्की-सी हंसी बिखेरते हुए बोले) मैंने कहा न कि मैं तय करके कुछ भी नहीं कर पाता हूं- इस बीच मैंने पाया कि समिति में पत्रकारों एवं श्रमिकों का शोषण हो रहा है। वेतन सही समय पर न मिलना, अवकाश न मिलना, जैसी अनेक समस्याए हैं। मैंने 1969 में एक संगठन बना लिया। उसमें सक्रिय हो गया। जिसके परिणाम स्वरूप मुझे उससे निकलना पड़ा। इस निकलने में फिर मेरी दिशा बदली, मैं पूर्णत: श्रमिक आंदोलन में चला गया। 1971 के अंत तक मैं पत्रकारिता में बहुत सक्रिय रहा। हिंदुस्तान समाचार से निकलने के बाद मैंने फ्रीलान्सिंग की और सामाजिक मुद्दों पर बहुत अच्छा लिखा। उन दिनों रघुवीर सहाय 'दिनमान' के संपादक हुआ करते थे। मैं निसंकोच स्वीकार करता हूं कि वैचारिक पत्रकारिता क्या होती है, इसके संस्कार उन्होंने मुझमें पैदा किए, पत्रकारिता की एक गहरी समझ मुझे रघुवीर सहाय ने दी। उन्होंने मुझसे बहुत महत्वपूर्ण रिपोर्टिंग करवाई।

उन दिनों बिहार में एक बहुत बड़ा आंदोलन चला था, मार्क्सवादियों समाजवादियों का, उसकी रिपोर्टिंग उन्होंने मुझसे करवाई। राजस्थान के बाड़मेर में बहुत भयानक अकाल पड़ा था, उसे मैंने कई किश्तों में कवर किया। आप जानते हैं '1971' में इंदिरा जी ने आम चुनाव कराए थे। उस समय रघुवीर सहाय जी ने मुझे बस्तर में भेजा था। यह कवर करने के लिए इन आम चुनावों को लेकर आदिवासियों की क्या सोच है, वो इस लोकतांत्रिक प्रक्रिया को किस तरह लेते हैं? उनका वोटिंग पैटर्न क्या है? आदिवासियों

के जीवन से जो मेरा साक्षात्कार हुआ उसने मुझे शिक्षित किया। आज भी वो मेरे अनुभव का गहन हिस्सा है। 1972 में तीन या चार जनवरी को बांग्ला देश बनने के बाद, उस युद्ध को कवर करने के बाद मैं ढाका से लौटा तो श्रमिक आंदोलन से जुड़ गया और वामपंथी आंदोलन का हिस्सा बन गया। इस बीच मेरे कुछ मतभेद भी हुए, कुछ चीजों से मेरा मोहभंग भी हुआ और मैं 1979 में पत्रकारिता की ओर लौट आया। उस समय राजेंद्र माथुर 'नई दुनिया' के संपादक थे। उन्होंने मुझसे कहा- जोशी जी आपने क्रांति तो काफी कर ली है, चलिए अब पत्रकारिता की ओर लौट आइए। उन दिनों दिल्ली में 'नई दुनिया' को ब्यूरो- प्रमुख की आवश्यकता थी, उन्होंने जनवरी-फरवरी 1980 में मुझे 'नई दुनिया' का ब्यूरो प्रमुख नियुक्त किया। यह बात मैं आपके माध्यम से पहली बार ऑन रिकार्ड कह रहा है कि उन्होंने मुझे अपने से अधिक वेतन और सुविधाएं दिलवायीं। लोगों ने उनसे कहा भी कि आप जोशी जी को अपने से अधिक वेतन क्यों दिलवा रहे हैं?

उन्होंने मजाक में कहा- 'हमें जोशी जी का बुर्जुआकरण करना है।' 1980 से लेकर 1999 तक एक सक्रिय पत्रकार के रूप में मैंने नई दुनिया के माध्यम से पत्रकार जगत से जुड़ा रहा। वो एक सक्रियता के साथ-साथ एक ग्लैमर की जिंदगी भी थी, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, उपराष्ट्रपति आदि के साथ देश-विदेश की यात्राओं पर जाना। मैंने यू एन ओ एसेम्बली को अनेक बार कवर किया।

प्रेम जनमेजय : मैं आपको बीच में टोक रहा हूं, आपने एक सक्रिय क्रांतिकारी के रूप में जीवन जीया, रघुवीर सहाय के साथ सार्थक पत्रकारिता की और फिर इस ग्लैमर की दुनिया। मैंने अक्सर देखा है कि बड़े-बड़े पत्रकार इस ग्लैमर में खो जाते हैं।

रामशरण जोशी : आपने सही कहा। इस भूल-भूलैया में कोई भी बहक सकता है। पर मैंने इस माहौल को अपनी चेतना अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता पर हावी नहीं होने दिया। संघर्षशील चेतना सक्रिय रही। मेरे अतीत ने मुझे बहुत ताकत दी और उस दौर में मेरी मेरी चर्चित पुस्तक आई 'आदमी महल और सपने' जिसे एक लैंडमार्क माना गया है और जिसे विष्णु प्रभाकर जैसे वरिष्ठ कथाकारों ने खरीदकर पढ़ा।

एक और काम मैंने किया। 1982 में पत्रकारिता करते हुए 'बंधुआ मुक्ति मोर्चा' की स्थापना की। इसका संस्थापक महासचिव मैं था और इसके अध्यक्ष स्वामी अग्निवेश थे। तीन वर्ष तक मैं सक्रिय रहा। ये चीजें थी जो मुझे ग्लैमर के आतंक से भी बचाती रहीं। इस दौरान मेरा लेखन सक्रिय रहा।

आकाशवाणी में सक्रिय रहा। नाटक लिखे, पर अपने नाटकों को मैं केवल नाटक नहीं कहता हूं। अभी जो मेरा नाटकों का संकलन आया है, उसमें मैंने अपने नाटकों को पोस्टर कहा है। मैंने उसमें लिख भी दिया है, जो इसमें नाटकों का सौंदर्य देखना चाहता है वो इन नाटकों को न पढ़े। नाटक बदलाव के प्रति प्रतिबद्धता दर्शाते है। मैंने उसी दौरान 'दावानल' लिखा। 'दावानल' एक घंटे का नाटक है जिसके कई प्रसारण हो चुके हैं। यह बस्तर के आदिवासियों के जीवन पर औद्योगिक सभ्यता या फिर कहें कि आधुनिक सभ्यता के क्या-क्या प्रभाव पड़े हैं, उसका विश्लेषण करता है। बस्तर में एक क्षेत्र है जिसे कहते हैं बालाडील और यहां दुनिया का शुद्धत्तम लोहा मिलता है। वहां से लोहा निकालकर हम आज भी जापान को निर्यात करते हैं। नेहरू के समय में जापान और भारत के बीच एक करार हुआ और उस करार के तहत वहां खनन कार्य आरंभ हुआ। जब पहली बार जापान से करार के तहत खदान खोदने के लिए पहली बार वहां मशीन पहुंची तो उन लोगों को लगा कि जैसे कोई भूत आ गया है। हमारे देवता नाराज हो गए हैं। अब तो प्रलय आने वाली है। इस बीच शाल के वन काटे गए। कइसल जंगल जमीन छिनते चले गए। इस सबका मैंने बारीकी से अध्ययन किया और उसे प्रस्तुत किया। मैंने यह भी चित्रित किया कि कैसे विवशताओं ने आदिवासी महिलाओं को वेश्यावृत्ति को विवश किया, 'कीप' बनने को विवश किया।

प्रेम जनमेजय : आपके पास सक्रिय जीवन का एक विशाल अनुभव है। इस अनुभव में आपने जीवन के अनेक रंग देखे हैं। आपका मोहभंग भी हुआ है। अनेक सामाजिक, राजनैतिक विसंगतियां भी देखी हैं। विसंगतियां लेखक को व्यंग्य-लेखन की ओर धकेलती हैं। आपने बताया भी कि आपने आरंभ में व्यंग्य भी लिखे। इन विसंगतियों ने आपको किस प्रकार कइसखन के लिए विवश किया?

रामशरण जोशी : देखिए मेरा 2001 में एक व्यंग्य संकलन आया, 'मैं व्यंग्य हूं उनकी सभा का'। इसमें जो रचनाएं हैं वो 'नव ज्योति' के कॉलम के रूप में लिखी। ये व्यंग्य पारंपरिक रूप में व्यंग्य नहीं हैं। इन व्यंग्य में स्वयं पर हंसना है, त्रासदी है, विद्रूपताएं हैं, कुछ जीवन की कुरुपताएं हैं। 1997-1998 का शायद यह किस्सा है। मध्य प्रदेश सरकार ने मुझे 'शरद जोशी' पुरस्कार दिया था। मैं उसे लेने भोपाल पहुंचा। अनेक प्रतिष्ठित लोग विभिन्न पुरस्कार ग्रहण करने आए थे।

उसमें एक पुरस्कार किसी झाबुआ की भिलनी को भी मिला। उसे आदिवासी पेंटिंग के लिए मिला। कई लोग, उसे छोड़, पुरस्कार लेने सज-धज के, सिलक-टसर के कुरते पहनकर गए थे। टाई-वाई बांधे, शहरी चमत्कार से लदे-फदे। मैंने उस 25-30 वर्ष की उस महिला को देखा, जो सादगी में लदी-फदी थी। फटा घाघरा, ओढ़नी, पैरों में हवाई चप्पल। वो बिना किसी संकोच के हमारे बीच मंच पर बैठ गई। मैंने सोचा कि भाई यहां आने के लिए मैंने क्या-क्या आयोजन किए और यह कितने सहज भाव से आई है। पत्नी से पूछा क्या पहनना चाहिए, खुद सोच रहा कि कैसे लगूंगा, मुख्यमंत्री कैसे पुरस्कार देंगे, मैं क्या बोलूंगा आदि आदि. . .। पूरा एक पूर्वाभ्यास किया। और दूसरी ओर वो सहजभाव से आई, पुरस्कार ग्रहण किया, एक दो मिनट मे आभार प्रकट किया और चली गई। मैं पूरे अभ्यास के साथ 15 मिनट अपनी बौद्धिकता के साथ बोलता हूं। मेरे साथ के अन्य लोगों ने भी ऐसा किया। मुझे लगता है कि यह क्या विसंगति है। कहीं हम उनके व्यंग्य के पात्र तो नहीं हैं। वो निश्चित ही कइस मन हम सबका उपहास उड़ा रही होगी।

प्रेम जनमेजय : आपने तो एक बहत अच्छे आत्म-व्यंग्य का उदाहरण प्रस्तुत कर दिया। हमारे यहां आत्म-व्यंग्य की बहुत कमी है। अधिकांश व्यंग्य-लेखन नेताओं के उपहास तक सीमित है, 'अपने गिरेवान में झांकने का बहुत कम कष्ट किया गया है। यही कारण है कि हम सीमित हो रहे हैं और बचाकर व्यंग्य करने में सिद्धहस्त हो रहे हैं। आप इस संदर्भ में और क्या कहना चाहेंगे?

रामशरण जोशी : मैंने पांच छह व्यंग्य आत्मव्यंग्य को केंद्रित कर लिखे हैं। मेरी एक बहुत बड़ी रचना है 'मेराबंधु' जो 'पहल' में प्रकाशित हुई थी। उससे पहले भी चार-पांच रचनाएं हैं जहां मैं अपनी मध्यवर्गीय मानसिकता, स्वयं के विचलन आदि पर हंसता हूं। मैं स्वयं को कटघरे में खड़ा करता हूं। दूसरे को व्यंग्य का पात्र बनाना बहुत सरल है, परंतु स्वयं को कटघरे में खड़ा करना प्याज के छिलके की तरह छीलते चले जाना बहुत कठिन है। इसके लिए आपको न केवल समाज के प्रति अपितु अपने प्रति ईमानदार होना होगा। जब तक आप ईमानदार नहीं हैं आप व्यंग्य कैसे कर सकते हैं। व्यंग्य में ईमानदारी आवश्यक है। आप समाज से छिपा सकते हैं पर अपने से कुछ नहीं छिपा सकते। और इस सबकी मैंने कीमत भी चुकाई है। सन् 2004 में 'हंस' पत्रिका में मेरे जो विवादाग्रस्त लेख 'विश्वासघात' के शीर्षक से प्रकाशित, उसमें मैंने स्वयं को एक्सपोज किया। मैं यह नहीं कहता हूं कि मैंने कोई बड़ा काम किया है। इससे पहले अनेक ने किया है। 'बाबरनामा' पढ़िए, मेरे हिसाब से सबको पढ़ना चाहिए। इसमें वो अपने पर अधिक हंसा है, स्वयं को अधिक एक्सपोज किया है। जैसे हर सुबह वो कसम खाता है कि शाम को शराब नहीं पिएगा, पर पीता है और फिर अगली सुबह उल्टी करता है। यदि आप स्वयं के प्रति ईमानदार होंगे तो निश्चित ही आप समाज के प्रति ईमानदार होंगे। संवेदनशीलता एक प्रवाह है जिस पर विचार का बांध आवश्यक है। वे दो अनावश्यक अतिरेक को रोकता है। इसलिए साहित्य में दृष्टि की आवश्यकता होती है। जब भी मैं लिखता हूं तो प्रत्यक्ष/अप्रत्क्ष रूप से स्वयं को पात्र बनाता हूं।

प्रेम जनमेजय : आपने बहुत अच्छी बात कहीं, अपने लेखन की प्राथमिकताओं को भी स्पष्ट किया। मैं जानना चाहूंगा, जिस आत्म-स्पष्टवादिता की बात आपने की, जहां लेखक अपने ही छिलके उतारता चलता है, उस स्पष्टवादिता से आपका पहली बार जब सामना हुआ, आपके मध्यवर्गीय हिप्पोक्रेट मन ने आपको कहीं रोका होगा? मेरा मन है जानने का, उन क्षणों को जहां स्वयं पर हंसने से पहले आप स्वयं से लड़े होंगे। कहीं श्रमिक आंदोलन के संस्कारों ने वो ताकत दी?

रामशरण जोशी : मैं आपको बता दूं कि श्रमिक आंदोलन से पहले की मेरे जीवन की एक छोटी-सी कथा है। जब मैं आठवीं में था, हमारे अंग्रेजी के एक अध्यापक थे, श्याम सिंह पंवार। उन्होंने हमसे एक दिन कहा, कल जब आप लोग आएं तो अपनी अच्छाइयां और बुराइयां लिखकर के लाएं। मैं आठवीं का विद्यार्थी था। उस समय सहजभाव से लिख गया। मैंने 70-75 अपनी कमियां गिनाई हैं और 20-25 अच्छाइयां। दो दिन बाद उन्होंने सबके सामने मेरी प्रशंसा की कइस लड़के ने अपनी बुराइयां बेबाक तरीके से कहीं हैं। इस युवा में अपने अंदर झांकने के ताकत है। दूसरे मेरे पिता जी भी बहुत आध्यात्मिक थे। वे हमें बचपन से ही शिक्षा दिया करते थे कि स्वयं को पहचनो। इन दोनों चीजों से Self Analytical Faculty मुझमें पैदा हो गई। यह मैं आपको बता रहा हूं, बचपन में मुझे सिनेमा देखने की बहुत बुरी आदत थी। (मेरे यह पूछने पर कि यह बुरी आदत क्या आज भी है तो रामशरण जोशी हंसते हुए बोले, ये आदत अब कम है और फर्क भी आ गया है, पहले मैं पैसे चोरी करके सिनेमा देखता था। अब अपने पैसे से देखता हूं।) मैं एक दिन में तीन-तीन चार-चार फिल्में देखा करता। तब पॉकेट मनी जल्दी खत्म हो जाती। एक बार मैंने अपने चचेरे भाई के काफी पैसे चुराए और खुद भी फिल्म देखी और दोस्तों को भी दिखाई। जब मैं दिल्ली आया तो उन दिनों दरियागंज से 'सेवाग्राम' नामक साप्ताहिक अखबार निकला

परिचय

6 मार्च 1944 को अलवर में जन्में श्री रामशरण जोशी ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत जयपुर के आकाशवाणी केंद्र के बाल कलाकार के रूप में की। 1957 से 1962 के बीच इन्होंने कई नाटक व कहानियां लिखीं और नाटकों में भाग लिया। नाट्य लेखन के दूसरे चरण (1971-1974)में दिल्ली आकाशवाणी कार्यक्रमों के लिए रैडिकल नाटक लिखे तथा तीसरे चरण में दिल्ली आकाशवाणी के लिए नाटक और रूपक लिखे। सक्रिय पत्रकार और 'नई दुनिया' के ब्यूरो प्रमुख (1980-1999) के रूप में एशिया, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका के विभिन्न देशों की कई बार यात्राएं कीं।

दरअसल रामशरण जोशी के जीवन का दूसरा नाम प्रयोग है। बसवा, बस्तर, पलामू, कालाहांडी, मेडक, मांड्या, पेशावर, काबुल, कोलंबो से बीजिंग, मॉरिशस से सूरीनाम, क्यूबा से इंडोनेशिया तक अनेक यात्राओं में कई-कई प्रयोग किए। प्रत्येक प्रयोग ने नए अनुभव और नई उपलब्धि को जन्म दिया और वह यात्रा सामग्री कभी नाटक, कभी व्यंग्य, कभी निबंध आदि विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त होती रहीं।

प्रकाशित रचनाएं : '21 वीं सदी के संकट', 'आदमी बल और सपने', 'मीडिया मिथ और समाज', 'मीडिया विमर्श', 'विदेश रिपोर्टिंग', 'साक्षत्कार: सिद्धांत और व्यवहार', 'आदिवासी समाज और शिक्षा', 'हस्तक्षेप', 'थाप', 'मीडिया और बाजारवाद' (संपादित), 'अगला प्रधानमंत्री कौन?', 'कठघरे में' जैसी चर्चित पुस्तकों के लेखक।

बिहार सरकार के राजेंद्र माथुर पत्रकारिता पुरस्कार, मध्यप्रदेश सरकार के शरद जोशी सम्मान, हिंदी अकादमी दिल्ली के पत्रकारिता पुरस्कार, जैसे पुरस्कारों से सम्मानित।

संप्रति केंद्रीय हिंदी संस्थान के उपाध्यक्ष।

करता था। उसके संपादक ने मुझे कहा कि अपने बारे में ईमानदारी के साथ कुछ सच लिख सकते हो? तो उसमें मैंने अपनी इस चोरी का निसंकोच वर्णन लिख दिया। वो कटिंग काटकर मैंने अपने चचेरे भाई को भेज थी। अपने अंदर झांकने का साहस वहां से हुआ। भाई बहुत ईमानदार थे, गृह-सचिव थे और उनको जब मैंने कटिंग भेजी तो वो बोले कि यह तो हमें मालूम था, पर मैं तुम्हारी इस साफगोई से बहुत खुश हूं। आज भी लगता है, जब मैं 'हंस' आदि में लिखता हूं तो उसके पीछे यह पृष्ठभूमि रहती होगी? यह मेरा सहजभाव था और 'हंस' में भी मैंने सहजभाव से ही लिखा। और मुझे कहीं यह नहीं लगता है कि मैं कोई अनोखा काम कर रहा हूं। आज यह जरूर महसूस करता हूं कि उस सहजता में थोड़ी सावधानी की आवश्यकता थी। मैं यह कह सकता हूं, जनमेजय जी कि मैंने पाखंड को कभी प्रश्रय नहीं दिया। मैं सहजभाव से इसलिए भी अभिव्यक्त करता हूं कि मैं छुपाव से तनाव को नहीं पालना चाहता हूं। मेरा मानना है कि जीवन में कुछ भी संपूर्ण नहीं होता और न ही अंतिम सत्य होता है। हम प्रयोगध र्मी हैं। ये प्रयोग कभी हम सायास करते हैं और कभी अनायास। मैं अनावश्यक हीं तनाव क्यों पालूं? मेरे लिए मेरा यह दृष्टिकोण, मेरी जीवन शैली कभी घाटे का सौदा नहीं रहा।

प्रेम जनमेजय : कहीं कुछ अफसोस नहीं है. . .?

रामशरण जोशी : यह अफसोस नहीं है कि मैंने अपने जीवन को पारदर्शी रखा पर कुछ अफसोस हैं. . .जैसे मैं 24 कैरेट का क्रांतिकारी नहीं रह सका। सपना था कि हम दुनिया को बदल डालेंगे, नहीं बदल पाए। एक औसत दर्जे के मध्यवर्गीय बनकर रह गए। यह ठीक है कि मैं अपनी उपलब्धियों की एक लम्बी सूची गिनवा सकता हूं. . .पर एक गहरा अफसोस भी है।

प्रेम जनमेजय : आपके पसंदीदा व्यंग्य लेखक कौन हैं?

रामशरण जोशी : आप जब व्यंग्य की बात करते हैं तो मैं व्यंग्य को उसके बंधे-बंधाएं खांचे में नहीं लेता हूं। व्यंग्य में यदि दृष्टि नहीं है तो व्यंग्य क्या है। मेरे साथ बहुत सारे लोग परसाई को क्यों पसंद करते हैं क्योंकि वह व्यंग्य के लिए व्यंग्य नहीं लिखते, अपितु एक दृष्टिकोण है। व्यंग्य केवल आपको थोड़ा बहुत हिला-डुला देने के लिए नहीं होता है, अपितु वो आपको मथता है। व्यंग्य वो जो आपको हस्तक्षेप करने को प्रेरित भी करे, केवल बौद्धिक मजा ही न दे। अब 'कुरु कुरु स्वाहा' है मनोहरश्याम जोशी है, उसका मैं एक पात्र भी हूं, वो जो विश्वबंधु है. . .अब इस उपन्यास में भाषा की जादूगरी है. . .ये हस्तक्षेप करने को प्रेरित नहीं करता है। अब आजकल व्यंग्य के नाम पर जो मंचों पर परोसा जा रहा है, उसने इसे कॉमोडिटी बना दिया है।

प्रेम जनमेजय : जबकि हिंदी व्यंग्य का आंरभ कबीर ने कविता में जो किया वह एक सार्थक दृष्टि से युक्त था। वो व्यंग्य का निरुद्देश्य प्रयोग नहीं है। वह सावधान है कि किस पर प्रयोग करना है और किस पर नहीं। पर आज जो मंच पर तथाकथित 'हास्य व्यंग्य' कविता की स्थिति है उस पर रोना ही आता है।

रामशरण जोशी : सही कहा आपने और इसलिए कबीर आज भी रैलेवेंट हैं। केशव, घनानंद आदि प्रासंगिक नहीं हैं। आपके व्यंग्य का कैनवास क्या है, वो तय करता है कि आप क्या हैं? मैं अपने को कबीर के बहुत करीब पाता हूं। मैं कर्मकाण्ड में विश्वास नहीं करता।

प्रेम जनमेजय : पर मुझे लगता है आपका परिवार तो बहुत परंपरावादी और कर्मकाण्डी रहा होगा।

हमारा परिवार अनेक गांवों का पुरोहित था। मैंने स्वयं चार-पांच बरस पुरोहितगिरी की है। पूजा भी करता था। हमारे यहां गणेश चतुर्थी पर बहुत सारे गांवों के लोग आते थे, सीधा लाते थे, मुझे कुछ श्लोक रटा दिए गए थे और तिलक लगाकर गलत-सलत बोल देता था। पर धीरे-धीरे मेरा दृष्टिकोण बदला। आजकल मेरी पत्नी पूजा-पाठ करती है, पर न तो मैं कोई हस्तक्षेप करता हूं न वो मुझे विवश करती है? पर मेरे तीनों बच्चे कर्मकांडी नहीं हैं। ईश्वर में आस्था रखते हैं। हमारे घर का माहौल विचारों के आदान-प्रदान का रहता है, हम चर्चा करते हैं, एक-दूसरे की आलोचना भी करते हैं। मेरी मां का 1980 में स्वर्गवास हुआ तो तेरहवें की रसम पर ब्राह्मणों को खिलाने की बात हुई। मैंने कहा- मैं सब करूंगा पर ब्राह्मणियों के साथ निम्न जाति के लोगों की भी पंगत लगेगी। मेरे घर के लोगों ने बड़प्पन दिखाया और मेरी बात मान ली, पंगत लगी। पर विसंगतियां होती हैं हमारे जीवन में। अब देखिए हम अमेरिका को गालियां देते रहे हैं और देते हैं पर मेरे समेत अनेक लोगों के बच्चे हैं जो अमेरिका में रह रहे हैं। मेरी दोनों बच्चियां अमेरिका चली गईं। इस द्वंद्व का मेरे सामने कोई समाधान नहीं है। मैं स्वयं को पराजित पाता हूं। अब यदि लोकतांत्रिक संस्कार पैदा करना चाहते हैं, उनको मानते हैं तो अपने बच्चों को रोक नहीं सकते हैं, या फिर आप डिक्टेटर बन जाएं!

इस समय पाला बदलने का कोई अर्थ नहीं है। यदि मैं पाला बदलता हूं तो आप लोग मुझे डिफेक्टर कहेंगे। ईश्वर को समदर्शी कहा जाता है। ऐसे में वो है तो भी ठीक और नहीं है तो भी ठीक। समदर्शी होने पर मुझ जैसों को भी तो समदृष्टि से ही देखेगा।

एक चीज न जाने मुझे क्यों हांट करती रहती है. . .जीवन में अब बचा क्या है करने के लिए? जीवन की सार्थकता क्या है? बहुत आवश्यक है कि मनुष्य स्वयं को 'रिइन्वेंट' करता रहे। यह सवाल तब पैदा नहीं होते जब आप किसी आंदोलन में सक्रिय होते हैं. . .आप मानसिक ही नहीं शारीरिक रूप से भी सक्रिय हैं तो आपके सामने ये समस्या नहीं आती है. . .पर हम जैसे मध्यवर्गीय जो कुछ सुविधाओं के आदी हो गए हैं। सुविधाओं में जी रहे हैं वहां पर सवाल आते हैं और आप ऐसे में मुझे भगोड़ा भी कह सकते हैं। मेरे सामने बहुत बड़ा सवाल है कि मैं अपने आपको रिइन्वेंट कैसे करूं? इस अर्थ में गांधी ने. . .उनके संदर्भ में असहमतियां हो सकती हैं, मेरी भी हैं, पर उन्होंने लगातार स्वयं को रिइन्वेंट किया है। मेरे सामने सक्रिय जीवन के दस वर्ष हैं और मुझे यह सवाल हांट करता रहता है।

प्रेम जनमेजय : आपको कहीं लग

रहा है कि जीवन में ठहराव-सा आ गया है!

रामशरण जोशी : ठहराव जैसा कुछ, मेरे सामने सवाल यह है कि अपने सक्रिय जीवन के पांच वर्ष मैं किस तरह जीऊं- एक पत्रकार के रूप में, एक चिंतक के रूप में, एक राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में या फिर एक लेखक के रूप में? आपको कहीं तो कुछ तय करना होगा।

प्रेम जनमेजय : अच्छा आज यदि आपको मुक्त छोड़ दिया जाए तो आप कौन-सी भूमिका जीना चाहेंगे? आपके मुक्त-मन की क्या मांग है?

रामशरण जोशी : मुझे यदि मुक्त छोड़ दिया जाए, सब मेरे वश में हो तो पुन: जंगलों में लौट जाना चाहता हूं, उनमें काम करना चाहता हूं। पर अपने को पूर्णत: डी-क्लास करना कठिन है। जो कुछ आपने 'सीखा' है उस सबको भूलना होगा। लेकिन ये सब मुझे संभव दिखाई नहीं देता है। जो भी उपलब्ध है उसी में अपनी भूमिका निर्धारित करनी होगी। देखना ये होगा कि समाज के लिए हम बेहतर क्या कर सकते हैं। मैं यह मानता हूं कि जितनी भी विचारधाराएं हैं, मार्क्सवाद हों, लोहियावादी हों, गांधीवादी हों। सब विचारधाराओं की सीमाएं उजागर हो चुकी है। ये अब आगे नहीं जा पा रहे हैं। आज के सवालों के जवाब उनके पास नहीं दिखाई देते हैं। साम्यवाद राजसत्ता के रूप में लगभग समाप्त है। पूंजीवादी चरम की ओर जा रहा है। उसके सामने कोई चुनौती नहीं है। पहले तो तुम कहा करते थे कि मानव कल्याण के लिए साम्यवादी सरकारें काम नहीं करने दे रही हैं। पूंजीवाद का जो परम्शत्रु था, उसे इसने नेस्तोनाबूद कर दिया है। अब पूरी जिम्मेदारी पूंजीवाद की है। क्या यह वैश्विक पूंजीवाद मनुष्य का मसीहा सिद्ध होगा या इसकी भी सीमा आएगी? उसकी भी सीमा आएगी तो उसके बाद क्या होगा?

प्रेम जनमेजय : मुझे लगता है कि यह एक बहुत जटिल सवाल है, इसका सरलीकरण नहीं हो सकता है। तो आजकल इस सवाल से जूझ रहे हैं।

रामशरण जोशी : जी, आजकल ये सवाल मुझे हांट कर रहा है। ये सम्मेलन, संगोष्ठियों, मीटिंगों के मायाजाल से मुक्ति मिले तो कुछ चिंतन आगे बढ़े।

प्रेम जनमेजय : इसके लिए तो चाणक्य की तरह चुटिया बांधनी पड़ेगी। आज के परिप्रेक्ष्य में वो क्या विसंगतियां है जिन पर आपकी दृष्टि में व्यंग्यकार को आक्रमण करना चाहिए।

रामशरण जोशी : व्यंग्य की हमेशा तैयार रहने वाली सामग्री राजनीति है। व्यंग्य को नए क्षेत्रों की ओर भी जाना चाहिए। मनुष्य ही धीरे-धीरे स्वयं को छल रहा है, एक कमोडीटी के रूप में बदल रहा है, इन विसंगतियों को पहचानना होगा। अपना विजन व्यापक करना होगा। व्यंग्य को गंभीरता से लेने की आवश्यकता है।

प्रेम जनमेजय : लेखन, चिंतन, सभा-संगोष्ठियों से अलग हटकर आपका मन कहां जुड़ना चाहता है।

रामशरण जोशी : अकेले अरण्य में मन घूमना चाहता है, जहां कोई न हो। मैं प्रकृति के हर क्षण को करीबी से देखूं और मुझे देखनेवाला और कोई न हो। मुझे पुराने गाने सुनना बहुत पसंद है। कई बार रात को मैं ग्यारह बारह बजे बैठ जाता हूं और पुराने गानों की कैसेट या सीडी लगा लेता हूं। एक तरह का नौस्टेलजिया मुझ पर हावी हो जाता है। मेरे लिए यह नौस्टेलजिया कमजोरी की निशानी नहीं एक ऊर्जा की धारा का काम करता है। मैंने अपने अंदर एक मकेनिजम पैदा किया हुआ है जो व्यवस्था कर देता है कि कितने घंटे इसमें रहना है ओर कब इससे निकलना है।

इसके बाद पुरानी फिल्मों और पुराने गानों, गायकों की चर्चा चल निकली और हम दोनों नौस्टेजैलिक हो गए।

रामशरण जोशी
105 समाचार अपार्टमेंट्स
मयूर विहार फेज-1, दिल्ली 110091

प्रगतिशील वसुधा

युवा कहानी अंक दिसंबर 2008 में प्रकाश्य। पिछले बीस वर्षों में उभरे युवा कहानीकारों की कहानियां और आत्मकथ्य इनकी कहानियों से बने हिंदी कहानी के ताजे परिदृश्य का आकलन। इस परिदृश्य पर वरिष्ठ कथाकारों-आलोचकों की बेबाक टिप्पणियां एवं बातचीत।

अतिथि संपादक

जयनंदन

एस.एफ. 3/116, बाराद्वारी सुपरवाइजर फ्लैट्स

साकची, जमशेदपुर-831001 (झारखंड)

निवेदन-

रचनाएं 30 सितंबर तक मिल जाएं

सेतु

जुलाई-दिसंबर 2008

नाट्य विशेषांक

संपादक

डॉ. देवेंद्र गुप्ता

संपर्क

आश्रय, खलीनी, शिमला

एक चुनौती के आमने-सामने

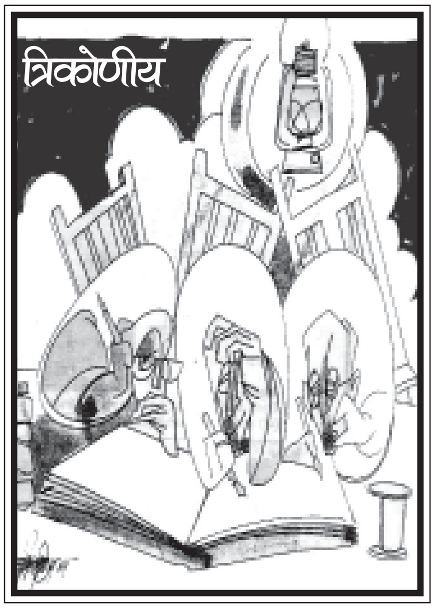

कोई भी व्यक्ति जब नई जमीन तोड़ता है तो वह बधाई का हकदार हो जाता है। किसी भी कार्य की पहल करना अत्यधिक श्रमसाध्य है एवं अतिरिक्त साहस की मांग करता है। जब आपके सामने कोई परंपरा विद्यमान न हो और आपको अतीत के प्रति स्वयं की दृष्टि का निर्माण करना हो, तो कदम-कदम पर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। एक ऐसी ही चुनौती का सामना सुभाष चंदर ने 'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' लिखकर किया है, इसलिए वो बधाई के पात्र हैं।

मानता हूं कि नई पहल की यह बधाई किसी प्रकार का आरक्षण नहीं दे सकती है। जैसे सरकार कुछ वस्तुओं पर सब्सिडी देती है, वैसी सब्सिडी की भी संभावना नहीं है। साहित्यिक-आरक्षण और सब्सिडी तो वहां है जहां संतों को सीकरी से काम होता है और वह 'निर्वाचन' का लाभ उठाना चाहते हैं। जहां असांप्रदायिक विश्लेषण-विवेचन एवं बिना लुच्चाई के आलोचना है, वहां तो बधाई के बाद निरीक्षण-परीक्षण अवश्यंभावी है। सुभाष चंदर यदि बधाई के हकदार हैं तो निर्मम आलोचना के रिसीवर भी हैं। वस्तुत: स्वस्थ आलोचना विकास की पहली सीढ़ी होती है। किसी भी वस्तु को संपूर्ण मान उस पर पूर्णविराम लगा देना अविवेकपूर्ण ही होगा। और ज्ञान तो निरंतर प्रवाहमान होता है। इस दृष्टि से कह सकते हैं कि सुभाष चंदर ने 'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' लिखकर ऐसी अच्छी शुरुआत की है जिसमें सुधार की पर्याप्त संभावनाएं हैं।

इतिहास लेखन सुव्यवस्थित चिंतन, श्रमपूर्ण अध्ययन, अतीत मे झांकने की विवेकपूर्ण विश्लेषणात्मक संतुलित दृष्टि एवं अतिरिक्त धैर्य की मांग करता है। कहीं कुछ छूट न जाए का 'आतंक' इतिहास लेखक को निरंतर तनाव में रखता है। सबसे कठिन होता है अपने समकालीनों पर लिखना क्योंकि पुस्तक हाथ में आते ही समकालीन यह देखते हैं कि उन्हें इतिहास में रखकर ऐतिहासिक बनाया गया है कि नहीं, और यदि बनाया गया है तो कुछ प्रशंसा की है कि नहीं तथा उसकी कमीज को मेरी कमीज से अधिक सफेद तो नहीं बताया गया है। सबसे पहले समकालीन वह पृष्ठ खोजते हैं जहां वे हैं और यदि सब कुछ ठीक है तो पुस्तक भी ठीक है अन्यथा दो कौड़ी की नहीं है। इस दृष्टि से सुभाष चंदर काफी हद तक सफल रहे हैं। उन्होंने रचनाओं को खोज-खोज कर पढ़ा है, लेखक के बारे में अपनी दृष्टि बनाई है और इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि कहीं कोई छूट न जाए। 'कहीं कोई छूट न जाए' वाली दृष्टि अनावश्यक विस्तार का दोष भी उत्पन्न करती है। आप ऐसे 'महानुभावों' को भी शामिल कर जाते हैं जो बुलबुले के समान अभी इस असार संसार में जन्मे ही हैं। ऐसे में किसी को 'खुश' करने या उपेक्षित करने की जानबूझीय दृष्टि से भी बचने की आवश्यकता होती है। सुभाष चंदर ने ऐसे लोगों को भी खोज कर सामने रखा है जिन्होंने सार्थक व्यंग्य लेखन किया है पर जो 'अपने-अपने गढ़ो' के चलते उपेक्षित हैं। 'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' को पढ़कर, व्यंग्य की जमात में शामिल रचनाकर्मियों को यह देखकर भी बेहद संतोष होता है कि व्यंग्य का एक विशाल कारवां है। हमारे अतिरिक्त और कौन लिख रहा है और क्या लिख रहा है इसकी भी जानकारी का केंद्र है यह पुस्तक।

मुझे आपत्ति है पुस्तक के नामकरण से। 'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' नामकरण एक संपूर्णता का विश्वासपूर्ण एहसास दिलाता है। पाठक इस मूढ में इसके पन्ने खोलता है कि उसे इसमें हिंदी व्यंग्य की एक संतुलित संपूर्णप्राय जानकारी मिल जाएगी, परंतु ऐसा है नहीं। यह कृति एकांगिक है और इसका एहसास लेखक को कराया गया। लगभग एक सिटिंग में पुस्तक पढ़ने के बाद, प्रशंसात्मक प्रतिक्रिया देते हुए मैंने अन्य अभावों के साथ-साथ सुभाष का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था और शायद यही कारण है कि उसने इस अंक में पुस्तक-लेखन की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए इस सवाल के कुछ बचाव प्रस्तुत किए हैं। भूमिका में भी सुभाष चंदर ने लिखा है– 'मेरी कोशिश रही है कि मैं व्यंग्य के सागर को इसमें समेटने की कोशिश करूं। फिर भी यह सागर इतना विशाल है कि बहुत कुछ छूट जाना संभव है। इसके लिए मैं अग्रिम क्षमा प्रार्थी हूं, यह मनुष्य की सीमा भी है। मैं एक बात और यहां पर स्पष्ट करना चाहूंगा कि इस पुस्तक में केवल गद्य व्यंग्य के इतिहास को स्थान दिया गया है। इसका कारण यह है कि मेरी दृष्टि में गद्य व्यंग्य अपने आप में विधा है, गद्य और व्यंग्य काव्य का अपना एक अलग स्वरूप है। वैसे भी सामान्यत: व्यंग्य से गद्य व्यंग्य का ही अर्थ निकलता है, व्यंग्य कविता अलग से कहना पड़ता है।' मैं सुभाष के इस तर्क से स्वयं को असहमत पाता हूं। मेरे विचार से चाहे गद्य में हो या पद्य में, वह 'व्यंग्य रचना' ही होगी। और सुभाष जी जैसे आप व्यंग्य कविता कहते हैं वैसे ही कुछ सज्जन व्यंग्य नाटक भी कहते हैं। साहित्य के इतिहासकारों ने आधुनिक काल में गद्य की प्रधानता को स्वीकार करते हुए कविता पर अलग से लिखने की बात नहीं कही है। इस पर विस्तृत चर्चा हो सकती है।

वैसे तो हर लेखक के अंदर एक संपादक होना चाहिए जो लेखकीय मोह का त्याग करवा सके और अनावश्यक को काट-छांट सके, परंतु हिंदी साहित्य के इतिहास लेखक के लिए तो यह आवश्यक ही है कि उसके अंदर एक निर्मम संपादक हो। इतिहास लेखन में इतिवृत्तात्मकता दिशाहीनता लाती है। पुनरावृत्ति से बचना बहुत आवश्यक है। सुभाष चंदर की कृति को पढ़कर लगता है कि उन्होंने अनेक स्थलों पर अपने अंदर के संपादक की उपेक्षा की है और शायद यही कारण है कि वे पुनरावृत्ति दोष का शिकार हुए हैं। वैसे उनमें साहस है, इसे उन्होंने स्वीकार करते हुए लिखा है– 'इसके अलावा अनेक स्थानों पर पुनरावृत्ति भी है, विशेषकर जब एक ही लेखक दो खंडों के सफर में साथ हो, वहां यह त्रुटि अधिक कौमन है। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि यह मेरी और प्रूफ रीडरों की सम्मिलित त्रुटि है। इसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूं। साथ ही डबल क्षमाप्रार्थी हूं, उन लेखकों से जिनका अपने साधनों की कमी के कारण मैं उल्लेख नहीं कर पाया।'

मुझे नहीं लगता कि इतने बड़े काम को करने के बाद सुभाष को क्षमा प्रार्थी होने की आवश्यकता है और खास कर जो छूट गए हैं उनके लिए। मुझे नहीं लगता है कि कोई महत्वपूर्ण पक्ष सुभाष चंदर से छूटा है। हां जल्दबाजी में, और हाथ में लिए काम को जैसे-तैसे निपटा देने की चाहत में कुछ अभाव अवश्य रह गए हैं। यह बहुत जल्दबाजी में लिखी गई इतिहास की पुस्तक है जो व्यापक दृष्टि और संपादन की मांग करती है। ऐसी जल्दबाजी कोई नई नहीं है जिसके लिए सुभाष को शर्मिंदा होना पड़े। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' की भूमिका में अपनी इसी जल्दबाजी का जिक्र किया है और छूट गए नामों के लिए क्षमा मांगते हुए लिखते हैं– 'यह पुस्तक जल्दी में तैयार करनी पड़ी इससे इसका जो रूप मैं रखना चाहता था वह भी इसे पूरा नहीं प्राप्त हो सका है। इस पुस्तक के बारे में मेरे पास कहने को अभी बहुत कुछ है, और मैं कहूंगा भी।' इसलिए सुभाष बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने एक ऐसा काम आरंभ किया है जिसकी आवश्यकता थी।

– प्रेम जनमेजय

सुभाष चंदर

कहानी हिंदी व्यंग्य के इतिहास की

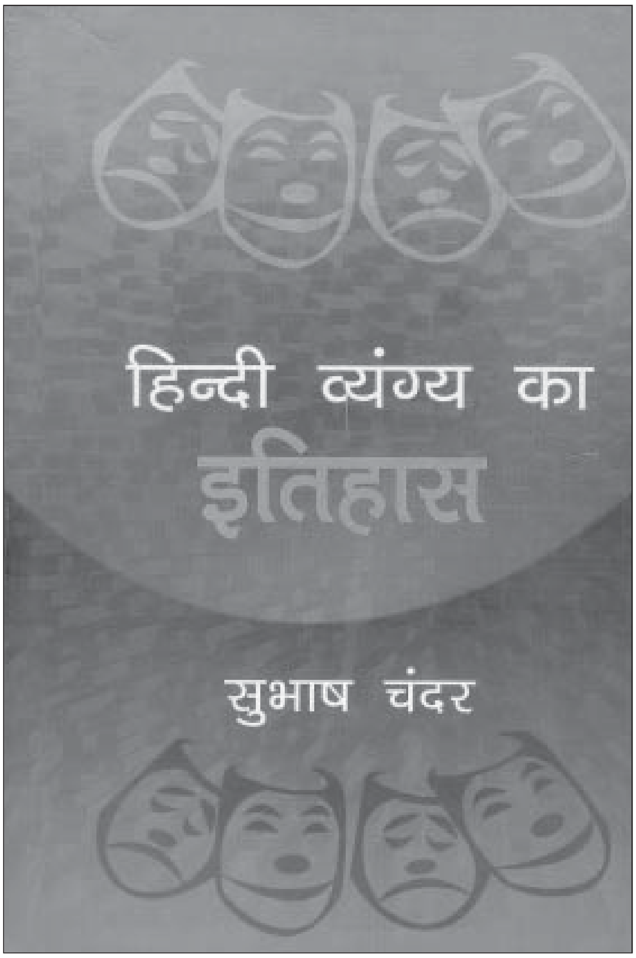

यही कोई 7-8 वर्ष पहले की बात होगी। राजकमल प्रकाशन में ज्ञान चतुर्वेदी के व्यंग्य उपन्यास 'बारामासी' पर चर्चा का कार्यक्रम था। वक्ताओं में राजेंद्र यादव, मैत्रेयी पुष्पा, सुधीश पचौरी, अरविन्द जैन, महेश दर्पण जैसे दिग्गज शामिल थे। व्यंग्य क्षेत्र से डॉ. हरीश नवल, प्रकाश पुरोहित (कटनी) और मुझे बोलना था। 'मुख्य धारा' के कुछ लेखकों-आलोचकों ने व्यंग्य को लेकर काफी कुछ कहा। एक वक्ता ने तो लेखक (ज्ञान चतुर्वेदी) द्वारा इसे व्यंग्य उपन्यास कहने और मानने पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिया। दूसरे ने इसे हंसोड़ भाषा में लिखी गयी औपन्यासिक कृति बताया। हम व्यंग्यकार लोगों का जब समय आया तो हमने इसका विरोध किया और काफी तीखा विरोध किया। इसका परिणाम हमें जल्दी ही भुगतना पड़ा। आदरणीय सुधीश पचौरी जी ने हम लोगों की धज्जियां जो थीं, काफी सलीके से बिखेरीं। उन्होंने न सिर्फ व्यंग्य को विधा मानने से इंकार किया बल्कि काफी तुर्श भाषा में व्यंग्य की लानत-मलामत की। अगर मैं भूल नहीं रहा हूं तो उनके मुखारबिंद से निकले कुछ शब्द यूं थे– रिरियाने (हां यही शब्द था) से व्यंग्य विधा नहीं बन जाता। इसका न कोई क्रमबद्ध इतिहास है, न समीक्षा शास्त्र और न ही इसका कोई स्वरूप निश्चित हुआ है। अत: इसे विधा नहीं माना जा सकता। उनके इस हिटलरी फरमान के बाद काफी गर्मा-गर्मी हुई। व्यंग्यकारों की इस छोटी-सी फौज ने डटकर मुकाबला किया। इस प्रकार के सद्भावपूर्ण वातावरण में बैठक समाप्त हुई।

कार्यक्रम के बाहर आकर चाय की दुकान पर पुन: एक गोष्ठी सम्पन्न हुई जिसका लब्बो-लुआब ये था कि भई पचौरी जी की बातें पूर्वाग्रहयुक्त और कड़वी जरूर थीं पर थीं काफी हद तक सच। शायद क्या. . .यहीं से मन में बीज पड़ गया कि भाई व्यंग्य के स्वरूप निर्धारण, समीक्षा शास्त्र वगैरह. . .वगैरह का मामला डॉ. श्याम सुंदर घोष, डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी आदि संभालते रहे पर इतिहास लेखन का काम तो यही बंदा करेगा जिसका नाम सुभाष चंदर है। सच्ची बात तो ये है कि व्यंग्य इतिहास के बीजारोपण का सर्वाधिक श्रेय श्रीमान सुधीश पचौरी जी को है, ना वो ऐसी कड़वी-तीखी बातें कहते, ना ये ग्रंथ लिखा जाता।

खैर. . .बीज तो रोपा गया, अब उसे पौधे के रूप में भी लाना था। इसके लिए अपने राम ने काफी जद्दोजहद की। कुछ सवालों से धींगामुश्ती की। सवाल कमबख्त थे भी बड़े फंडू-मसलन. . . पहला सवाल था कि इतिहास किस पैटर्न पर लिखा जाए. . . शुक्ल जी, रामविलास शर्मा, नगेन्द्र जी आदि के बहुप्रचलित पैटर्न पर . . .या नौटियाल जी, डॉ. सुरेश शर्मा जैसे कुछ नये ढांचे पर. . . पर बात बनी नहीं. . .आलोचना के उपकरणों ने धोखा दे दिया... व्यंग्य की आलोचना, सामान्य या यूं कहें 'मुख्य धारा' के साहित्य की आलोचना के उपकरणों से संभव नहीं थी सो एक नया पैटर्न चुनना पड़ा जो कई ग्रंथों के कुछ-कुछ अंशों में अपने दिमाग की उपज था। सोचा था कि कुछ थोड़ा बहुत गड़बड़ हो भी गया तो आने वाले समय में कोई ना कोई इसे जरूर सुधार देगा। जरूरत काम शुरू करने की है, आगे बढ़ाने वाले बहुत सहयात्री मिल जाएंगे। दूसरा सवाल भी काफी टेढ़ा था। व्यंग्य के इतिहास में व्यंग्य कविता और गद्य व्यंग्य दोनों को लिया जाए या अकेले गद्य व्यंग्य को। अध्ययन करने पर पाया कि व्यंग्य कविता और गद्य व्यंग्य दोनों को साथ लेकर चलने में गद्य व्यंग्य (प्रसंगवश और अंतर करने के लिए गद्य व्यंग्य लिख रहा हूं) के साथ पूरा न्याय नहीं हो पाएगा क्योंकि व्यंग्य कविता का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है और गद्य व्यंग्य की उम्र बमुश्किल 130-135 वर्ष है। बरगद का पेड़, अपने नीचे किसी को कठिनाई से ही पनपने देगा। वैसे भी मेरी इच्छा गद्य व्यंग्य के विकास क्रम पर, उसकी प्रवृत्तियों पर कार्य करने की थी सो मैंने डॉ. शेरजंग गर्ग जैसे अग्रजों के आदेश के बावजूद व्यंग्य इतिहास को

गद्य व्यंग्य के इतिहास तक सीमित कर दिया बाद में कुछ मित्रों ने उलाहना भी दिया कि ऐसा था तो फिर पुस्तक का नाम 'गद्य व्यंग्य का इतिहास' क्यों नहीं रखा? तो इस बारे में सिर्फ इतना ही कहूंगा कि पुस्तक प्रकाशन में लेखक सर्वोपरि नहीं होता, एक जीव प्रकाशक नाम का भी होता है और वो प्रकाशक नामक जंतु अगर गहरा मित्र भी हो तो आप समझ सकते हैं कि गुल कितनी गहराई में जाकर खिल सकते हैं। सो गुल खिले और तबीयत से खिले। इस सबका लब्बो-लुआब ये कि लेखक की बला प्रकाशक के सिर। खैर. . .भविष्य में हिंदी व्यंग्य कविता के इतिहास पर अलग से काम करूंगा. . .पर कब? यह प्रश्न भविष्य के गर्भ में है।

ऐसे ही कुछ सवालों से जूझने के बाद मैंने निर्णय लिया कि व्यंग्य के इतिहास पर काम अपने ही ढंग से करूंगा, आलोचना की कतई परवाह नहीं करूंगा। इसी निर्णय की रोशनी में खुद को कुछ बातों पर दृढ़ किया। पहला कि पुस्तक की भाषा को पाण्डित्य प्रदर्शन से दूर रखूंगा। कोशिश करूंगा कि पुस्तक की भाषा सरल और सहज हो, ऐसी हो कि वह शोधार्थियों, आलोचकों के साथ-साथ सामान्य पाठकों के लिए भी ग्राह्य हो। (इसमें कुछ हद तक मैं सफल भी हुआ क्योंकि पुस्तक पढ़ने के बाद मेरे कुछ अग्रजों डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी, डॉ. प्रेम जनमेजय आदि ने मुझे फोन पर बताया कि यार तेरी इस किताब में बोझिलता बिलकुल नहीं है, इसको तो मैं उपन्यास की तरह पढ़ गया। भाषा के प्रश्न के अलावा कुछ और भी मुद्दे थे जिन पर मेरा स्टैंड थोड़ा अलग रहा कि किसी प्रचलित मान्यता पर विश्वास करने के बजाय स्वयं सब कुछ पढ़ूंगा और उसके बाद कुछ लिखूंगा। इसी कारण हजारों पुस्तकें पढ़नी पड़ीं, जाहिरन देरी की यात्रा भी बढ़ती गयी। अंतिम मुद्दा था कि आलोचना की तीनों धाराओं निर्णयात्मक, व्याख्यात्मक और मनोवैज्ञानिक में से किसे मुख्य उपकरण के रूप में चुनूं। व्यावहारिक रूप में मुझे व्याख्यात्मक आलोचना को चुनना बेहतर लगा, इसमें मैं व्यंग्य के सरोकारों, प्रहारात्मकता और भाषा-शैली आदि पर कहीं सहजता से बात कर सकता था। निर्णयात्मक आलोचना का भी प्रयोग हुआ पर काफी सावधान प्रयोग। अन्यथा शत्रु-निर्माण प्रक्रिया को और गति मिल जाती।

खैर. . .किसी तरह कार्य शुरू हुआ। व्यंग्य की परिभाषा, हास्य और व्यंग्य का अंतर्संबंध, व्यंग्य का विधा संबंधी प्रश्न जैसी आसान चीजों से शुरूआत की। पर काल विभाजन तक आते-आते अटक गया। प्रसंगवश बता दूं कि मैंने व्यंग्य इतिहास को चार कालखंडों में विभाजित किया। आदिकाल (भारतेंदु युग 1873-1910), मध्य काल (बेढ़ब बनारसी युग 1910-1947) स्वर्णकाल (परसाई युग 1947-1990) और आधुनिक काल 1990- . . .) भारतेन्दु युग के निर्धारण में तो कोई समस्या नहीं आई पर मध्यकाल को उसके सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकार के नाम से याद करने की मेरी जिद ने परेशानी खड़ी कर दी। दावेदार कई थे, पर बेढ़ब बनारसी की कालजयी रचना 'लफ्टंट पिगसन की डायरी' के कारण इस युग का नामकरण बेढ़ब बनारसी युग करने में मुझे थोड़ी आसानी हुई। वैसे भी अपने सरोकारों की गंभीरता, अपनी प्रहारात्मकता और साहसिकता के कारण मैं 'लफ्टंट पिगसन की डायरी' को सर्वकालीन महान व्यंग्य कृति मानता हूं। इस पर मेरे कुछ मित्रों को उज्र भी रहा पर मैंने उन्हें यही सलाह दी कि संभव हो तो उस पुस्तक को पढ़ लें, शंका दूर हो जायेगी। परसाई युग (1947-1990) के कालनिर्धारण की समस्या अलग थी। परसाई जी 1995 में दिवंगत हुए जबकि मैंने इस कालखंड को 1990 तक ही सीमित रखा तो इस पर मेरा तर्क यह है कि 1990 में राजनीति, समाज और साहित्य तीनों के सापेक्ष कई क्रांतिकारी परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए जिन्होंने व्यंग्य की मूलभूत प्रवृत्तियों को काफी हद तक बदल दिया। सरोकारों से लेकर प्रहारात्मकता और शिल्प तक अनेक ऐसे परिवर्तन आए जिन्होंने व्यंग्य को एक नया स्वरूप प्रदान किया। इस सबको देखते हुए मुझे यही श्रेयस्कर लगा कि परसाई युग को 1990 तक सीमित करके 1990 से आधुनिक युग का सूत्रपात किया जाए।

एक बात और. . .पुस्तक लेखन के समय में व्यावहारिक कठिनाइयां बहुत आईं। पहली तो यह कि व्यंग्य के विकासक्रम से जुड़ी पुस्तकें बहुत कम संख्या में प्राप्त हुईं। विशेष रूप से दूर-दराज के क्षेत्रों में रहने वाले व्यंग्यकारों की कृतियों अथवा उन रचनाकारों की रचनाओं से बमुश्किल परिचय हो पाया जिनकी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी। कई बार तो ऐसा हुआ कि कोई खंड लिखते-लिखते अनायास कहीं से सूचना मिली कि फलां-फलां लेखक की फलां रचना फलां सन में प्रकाशित हुई है, उसे जरूर मंगाओ, वरना इतिहास अधूरा रह जायेगा। किसी तरह व्यवस्था की गयी. . .कई बार सिर्फ सूचनाओं से भी काम चलाना पड़ा। काम तो चल गया पर इससे लेखन का प्रवाह टूट गया। मेरी लापरवाही और कामचोरी की आदत के अलावा यह भी एक वजह रही कि पुस्तक प्रकाशन का काम सात वर्षों तक खिंच गया।

खैर. . .कहानी. . .बनाम. . .स्पष्टीकरण काफी लंबा हो गया . . . अब इसे छोटा करता हूं. . .पुस्तक प्रकाशन के बाद यार दोस्तों की कुछ शिकायती चिट्ठियां, मोबाइली चींचीं. . .पों पों. . .मिलीं कि किताब में प्रूफ की बहुत गलतियां हैं. . .कई बार तो वाक्य भी नहीं बन रहे. . .इसके अलावा अनेक स्थानों पर पुनरावृत्ति भी है, विशेषकर जब एक ही लेखक दो खंडों के सफर में साथ हो, वहां यह त्रुटि अधिक कॉमन है। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि यह मेरी और प्रूफ रीडरों की सम्मिलित त्रुटि है। इसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूं। साथ ही डबल क्षमाप्रार्थी हूं, उन लेखकों से जिनका अपने साधनों की कमी के कारण मैं उल्लेख नहीं कर पाया। सो क्षमायाचना और कहानी दोनों का काम पूरा हुआ। रही बात व्यंग्य के इतिहास की तो कौन सा इतिहास है जो पूर्ण होने का दावा करता है, इतिहास की सार्थकता ही उसके अपूर्ण होने में है, अपूर्ण होगा, तभी तो कोई उस पर आगे काम करेगा. . .नहीं क्या?

जी-186-ए, एचआईजी फ्लैट
प्रताप विहार, गाजियाबाद-201004

चर्चित पुस्तक	:	**हिंदी व्यंग्य का इतिहास**
लेखक	:	**सुभाष चंदर**
प्रकाशक	:	**भावना प्रकाशन, 109-ए, पटपड़गंज, दिल्ली-110091**
प्रथम संस्करण	:	**सन् 2008**
पृष्ठ	:	**511**
मूल्य	:	**600/-**

शेरजंग गर्ग

हिंदी व्यंग्य का इतिहास

किसी विधा, किसी शैली और किसी भी साहित्यिक प्रवृत्ति का इतिहास लेखन, श्रम साध्य काम है, उतनी ही क्रमबद्धता की मांग भी करता है। औरों की बात तो छोड़िये, आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'हिंदी साहित्य के इतिहास' के बाद अनेक इतिहास लिखे गए, लिखे जा रहे हैं, मगर उसमें भी कुछ न कुछ छूटता ही रहा है। जो छूट जाते हैं उन्हें अपने ऐतिहासिक कृतित्व का उल्लेख न मिलना अनेकानेक उल्लंघनों और कुंठाओं को जन्म देता है। अत: आवश्यक है कि साहित्य की विविध विधाओं का इतिहास अलग-अलग लिख जाए। यों तो इस दिशा में अनेक प्रयास हुए हैं किंतु ताजा उदाहरण है डॉ. सुभाष चंदर द्वारा लिखित- हिंदी व्यंग्य का इतिहास। इतना ही नहीं सुभाष चंदर इधर 'हिंदी व्यंग्य साहित्य का इतिहास' भी लिख रहे हैं। निसंदेह उन्होंने अद्यतन व्यंग्य साहित्य को समोने का उद्यम किया है।

उक्त प्रयत्नों के प्रकाश में उत्साही रचनाकार, प्राध्यापक, शोध कर्ता अथवा साहित्य के इतिहासकारों द्वारा 'हिंदी कविता का इतिहास', 'हिंदी नाटक का इतिहास', 'हिंदी एकांकी का इतिहास', 'हिंदी समस्याओं का इतिहास' वगैरह-वगैरह अनेक प्रकार के इतिहास लिखे जाने की गुंजाइश है। हिंदी साहित्य का फलक इतना विशाल है कि उसमें इतना साहित्य समाया हुआ है जिसे रेखांकित किया जाना अपेक्षित है।

इस चिंतन से 'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' लिखा जाना सर्वथा समीचीन है। सुभाष चंदर व्यंग्य के प्रति समर्पित समीक्षक-रचनाकार हैं। कई वर्ष पहले लखनऊ में 'अट्टहास के आयोजन के अवसर पर जब हम दोनों श्रीलाल शुक्ल से मिलने गए थे, तब सुभाष चंदर ने अपनी पैनी व्यंग्य दृष्टि से श्रीलाल और मुझे चमत्कृत किया था। अब उन्होंने परिश्रम साध्य कार्य करके व्यंग्य लेखन की विकास-यात्रा को रेखांकित करते हुए उसके अनेक आयामों का स्पर्श किया है।

पूर्व इसके कि हम व्यंग्य के इतिहास पर चर्चा करें, सुभाष चन्दर का मंतव्य समझ लेना उचित होगा। सुभाष चंदर का कहना है– 'आलोचना की दृष्टि से हिंदी व्यंग्य की स्थिति काफी विचित्र रही है। आलोचकों ने इस रचनाकर्म को बड़े हल्के स्तर पर लिया। यहां तक कहा गया कि यह साहित्य की मुख्यधारा का लेखन नहीं है। हास्य-व्यंग्य की रचनाएं दोयम दर्जे की रचनाएं हैं इनका कोई दीर्घकालिक अस्तित्व नहीं है। दोयम-दजे के इस रचनाकर्म पर आलोचकों ने उपेक्षाभाव रखा।' तात्पर्य यह है कि सुभाष चंदर के हिसाब से आलोचना की दिशा में हिंदी के हास्य-व्यंग्य की घोर उपेक्षा हुई। फिर भी आश्चर्य की बात यह है कि 'राग दरबारी' (श्रीलाल शुक्ल) और 'विकलांग श्रद्धा का दौर' (हरिशंकर परसाई) साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हुईं और वर्तमान समय में नागार्जुन तथा भवानीप्रसाद मिश्र जैसे अनेक कवि हिंदी व्यंग्य के प्रतिमान बन गए। ऐसा सचमुच हुआ होता तो महाकवि कबीर को आज भी गहन व्यंग्य के मानक रूप में मान्यता न मिल रही होती तथा महाकवि निराला की 'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' आज भी व्यंग्य की शिखर रचनाओं में शामिल न होते।

सुधीजनों द्वारा हास्य-व्यंग्य की रचनाओं को अपेक्षित महत्व न दिये जाने के पीछे आलोचकों की कोई सोची-समझी साजिश तो नहीं ही कहीं जा सकती, ऐसा हमारा मानना है। सुभाष चंदर ने यह भी कहा कि अब तक सारी आलोचना काव्योन्मुखी रही है, गद्य को उसका अभीष्ट स्थान नहीं दिया गया। पहली बात तो यह है कि आलोचना प्राय: गद्य में ही लिखी जाती है, फिर गद्य में आलोचना लिखने वाले समीक्षक-साहित्यकार गद्य की उपेक्षा क्यों करते? वैसे भी बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध गद्य का मिश्रित युग था, उत्तरार्द्ध तो अधिकांशत: गद्य युग ही था। 'चित्रलेखा', 'गोदान', 'चंद्रगुप्त' को जो अपार ख्याति मान्यता एवं प्रशंसा मिली, वह गद्यवृत्तियों के रूप में ही मिली।

'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' लिखते समय सुभाष चंदर ने कविता को अपने विचार-क्षेत्र से बाहर इसलिए कर दिया कि पूर्ववर्ती आलोचना ने कविता को ज्यादा महत्व दे दिया था। मेरे विचार से यह सुभाष चंदर का विशेषाधिकार है कि वे कविता को अपने इतिहास से बाहर कर दें, मगर इस बात का अधिकार उन्हें नहीं है कि वे 'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' शीर्षक से किताब लिखें और कविता को उससे बाहर कर दें। ऐसे स्थिति में उन्हें पुस्तक का शीर्षक कुछ और रखना चाहिए था। ऐसा शीर्षक निर्विवाद रूप से विवाद पैदा करता है। खैर. . .

इस सबके बावजूद सुभाष चंदर ने अपनी पूरी मेहनत, लगन, निष्ठा से वर्तमान समय में व्यंग्य से जुड़े हस्ताक्षर गद्यकारों को इतिहास में जगह दी है। उन्होंने अनेकानेक अद्यतन व्यंग्यकारों को रेखांकित करने का कार्य पहली बार किया है। चाहे बेढ़ब बनारसी हों, चाहे हरिशंकर परसाई और श्रीलाल शुक्ल हो। चाहे शरद जोशी, मनोहर श्याम जोशी और रवीन्द्रनाथ त्यागी हों, सभी महत्वपूर्ण व्यंग्यकारों को याद किया है। शंकर पुणताम्बेकर, गोपाल चतुर्वेदी, रामनारायण उपाध्याय, राधाकृष्ण, ज्ञान चतुर्वेदी, कृष्ण चराटे, यशवंत व्यास, विष्णु नागर, आदि आदि उत्कृष्ट व्यंग्यकारों का उल्लेख करके सुभाष चंदर ने इस इतिहास को उल्लेखनीय बना दिया है। इसमें कोई शक नहीं।

काल-निर्धारण की दृष्टि से व्यंग्य-विकास को चार युगों में बांटा गया है। आदिकाल (भारतेंदु युग), मध्यकाल (बेढब बनारसी युग), स्वर्णकाल (परसाई युग) तथा आधुनिक काल (1990 से)

शेष पृष्ठ 25 पर. . .

प्रदीप पंत

'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' के बहाने कुछ व्यंग्य चर्चा

किसी ने कहा है कि 'एक सार्थक और सटीक व्यंग्य लिखना जितना कठिन है, व्यंग्य का इतिहास लिखना उससे भी कठिन है।' इसके कई कारण हैं। एक तो यह कि व्यंग्य को अलग विधा माना जाए या नहीं? आखिर व्यंग्य तो कई कविताओं में भी मिलता है, उपन्यासों, कहानियों, नाटकों और लेखों में भी। तो फिर व्यंग्य की अलग हैसियत क्या हुई? जिसकी अपनी अलग हैसियत या पहचान नहीं, उसका इतिहास कैसा? दूसरे, कुछ लोग, और इनमें कुछ सुधी आलोचक भी शामिल हैं, व्यंग्य के साथ हास्य को भी सम्मिलित कर देते हैं। 'हास्य-व्यंग्य' शब्द बहु-प्रचलित है। तो क्या व्यंग्य का इतिहास खोजा और लिखा जाए तो उसमें हास्य को भी शामिल किया जाए? या फिर उस रचना को भी व्यंग्य की श्रेणी में रखा जाए जिसमें हास्य हो? सवाल और भी कई हैं। ऐसे प्रश्नों के दो टूक उत्तर तो नहीं दिए जा सकते, किंतु इतना तो कहा ही जा सकता है कि पिछले लगभग ढाई-तीन दशक में इतनी अधिक व्यंग्य कहानियां, व्यंग्य लेख लिखे गए हैं कि व्यंग्य लगभग एक अलग विधा जैसी हैसियत बना चुका है। यह भी कि जिन उपन्यासों में व्यंग्य और व्यंग्यात्मक स्थितियां, संवाद आदि भी समाहित हैं, उनसे इतर शुरू से आखिर तक कई ऐसे उपन्यास भी रचे गए हैं जिन्हें 'व्यंग्य उपन्यास' घोषित किया जा सकता है। फिर भी कहीं पर कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं है।

ऐसी तमाम कठिनाइयों के बावजूद सुभाष चंदर ने 'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' लिख डाला है। उनकी 511 पृष्ठों की इस पुस्तक को एक महत्वाकांक्षी योजना मान लेने में कोई हर्ज नहीं। सुभाष चंदर स्वयं व्यंग्यकार हैं, उन्होंने अन्य लेखकों की अनेक व्यंग्य रचनाओं की पुस्तकों का संपादन किया है और बड़ी बात यह कि वे व्यंग्य के एक जागरुक अध्येता हैं। पुस्तक की शुरुआत वे व्यंग्य की व्युत्पत्ति से करते हैं- यानी 'व्यंग्य' शब्द का इस्तेमाल होना चाहिए या 'व्यंग' का और पुस्तक का समापन इस बात से करते हैं कि व्यंग्य की आलोचना में मुख्यधारा के आलोचकों का भी पर्दापण हुआ है। हिंदी व्यंग्य की शुरुआत 1873 से करते हैं जिसे वे व्यंग्य का आदिकाल यानी भारतेंदु (1873 से 1910) मानते हैं और फिर मध्यकाल अर्थात बेढ़ब बनारसी युग (1910 से 1947) से होते हुए स्वर्णकाल यानी परसाई युग (1947 से 1990) पर आते हैं और परसाई युग के बाद के व्यंग्य लेखन के दौर को वे 'आधुनिक काल' का नाम देते हैं और इसके पश्चात वे 'प्रतिनिधि व्यंग्यकार' शीर्षक छठे और अंतिम अध्याय में 80 व्यंग्यकारों के लेखन पर एक-एक पर टिप्पणियां करते हैं। इन 80 व्यंग्यकारों में मध्यकाल के बाद के व्यंग्य रचनाकार भी शामिल हैं- वे भी जिन पर 'परसाई युग' के अंतर्गत लिखा जा चुका है और वे भी जिन पर नहीं लिखा गया है। इन प्रतिनिधि व्यंग्यकारों में स्वयं परसाई भी शामिल हैं तो यह नाचीज़ भी। चर्चित व्यंग्यकार शामिल हैं तो एकदम नए से नए भी।

पुस्तक के उपरोक्त रुपाकार की यहां इसलिए चर्चा की गई है कि आम पाठक और व्यंग्य के शोधार्थी जान सकें कि सुभाष चंदर ने 'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' किस नजरिए से लिखा है। लेकिन ऊपर जिस सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात का ज़िक्र नहीं किया गया है, वह ये कि चूंकि पुस्तक विभिन्न युगों या काल में बांटकर लिखी गई है, इसलिए व्यंग्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के पांचों वृहद् अध्यायों में सबसे पहले वे प्रत्येक युग या काल की परिस्थितियों को रेखांकित करते हैं। कहने का आशय यह कि सुभाष चंदर हर युग के व्यंग्य और व्यंग्यकारों पर बात करने से पूर्व उस दौर की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थितियों और प्रवृत्तियों को सामने रखते हैं, उनका विश्लेषण करते हैं और तब उस युग में लिखी गई व्यंग्य रचनाओं का आकलन करते हैं। यही तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टि है। इसी के चलते यह पुस्तक हिंदी व्यंग्य के इतिहास का प्रामाणिक दस्तावेज बन गई है। उदाहरणार्थ, वे बताते हैं कि भारतेंदु युग में दमनकारी अंग्रेजी राज था, भारतीय उद्योग-धंधे चौपट हो चुके थे, अंग्रेजों ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच दरार पैदा कर दी थी, जात-पांत और छुआछूत का जोर था आदि-आदि। इसके बाद वे इन स्थितियों का व्यंग्यात्मक अंदाज में विरोध करती भारतेंदु की रचनाओं 'अंगरेज स्तोत्र', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'भारत दुर्दशा' आदि के अंशों को उद्धृत करते हैं। इन रचनाओं की सार्थकता को उनकी युगीन परिस्थितियों के आलोक में ही समझा जा सकता है। इसी भांति वे बेढ़ब बनारसी युग, परसाई युग आदि के संदर्भ में बात करते हैं।

साथ ही सुभाष चंदर इस ओर भी इंगित करते हैं कि यदि किसी युग विशेष में व्यंग्य धारदार नहीं रहा तो क्यों? यदि एक ओर वे भारतेंदु युग में अंग्रेजों के दमन आदि के कारण व्यंग्य के धारदार होने की बात करते हैं तो दूसरी ओर 1947 से 1950 में व्यंग्य के धारदार न होने की बात करते हैं। इस संदर्भ में उनका यह मत ठीक है कि 'समग्र व्यंग्य की दृष्टि से देखें तो 1947-1950 तक का कालखंड व्यंग्य के लिए बहुत उपयुक्त समय नहीं था। यह समय तो भारतीय समाज के उत्सव मनाने का समय था। जनमानस में आजादी का उत्साह था। सुखी और आत्मनिर्भर भारत का सपना देखा जा रहा था। रोटी, कपड़ा और मकान की आकांक्षाओं के बलवती होने की आकांक्षा थी। इस युग में व्यंग्य के लिए कहीं कोई गुंजाइश नहीं थी।' (पृष्ठ 160) कहना न होगा कि सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थिति में विसंगतियों और विद्रूप के बीच व्यंग्य की फसल लहलहाती है और इस संक्षिप्त अवधि के पूर्व तथा

पश्चात ऐसा ही हुआ। आशय यह कि सुभाष चंदर ने व्यंग्य रचे जाने और न रचे जाने के कारणों को बड़े सधे हुए ढंग से जाना, पहचाना और पकड़ा है।

पुस्तक में जो एक अन्य बात गौरतलब है, सो यह कि सुभाष चंदर बीच-बीच में व्यंग्यालोचना की चर्चा भी करते हैं। अर्थात जब व्यंग्य लिखे जा रहे थे, तब युगीन परिस्थितियां क्या थीं और व्यंग्यालोचना कैसी थी? या यह कि व्यंग्य के प्रति आलोचकों ने उपेक्षापूर्ण रवैया क्यों अपनाया? इस अर्थ में यह पुस्तक न केवल हिंदी व्यंग्य का इतिहास है, बल्कि कुछ हद तक हिंदी व्यंग्यालोचना का इतिहास भी है, लेकिन कुछ ही हद तक, क्योंकि व्यंग्य पर मूल्यांकनपरक लेखन बहुत कम हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर काल में मुख्यत: हरिशंकर परसाई और आमतौर पर कुछ अन्य व्यंग्यकारों का यह महत्वपूर्ण योगदान है कि उन्होंने आलोचकों को व्यंग्य पर ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रेरित किया, या कहें कि उकसाया।

निश्चित रूप से सुभाष चंदर कि यह पुस्तक ऐसी पहली कृति है जो व्यंग्यालोचना और व्यंग्य के विविध आयामों को एक लंबे दौर के संदर्भ में अपने में समेटे हुए है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सुभाष चंदर ने यह पुस्तक क्यों लिखी? इस संदर्भ में उनका यह स्पष्टीकरण महत्वपूर्ण है– 'स्वातंत्र्योत्तर व्यंग्य के विकास पर तो फिर भी सामग्री उपलब्ध है, लेकिन स्वातंत्र्यपूर्व व्यंग्य का मूल्यांकन करने वाली, व्यंग्य की विकास यात्रा का परिचय कराने वाली पुस्तकों का अभाव है। इस कमी का पूरा करने का अकिंचन प्रयास इस पुस्तक में किया गया है ताकि व्यंग्य के पाठकों को एक ही स्थान पर समग्र व्यंग्य के विकास का इतिहास मिल सके। (भूमिका से) लेकिन जैसा कि ऊपर के वाक्यों में बताया गया है, इस पुस्तक में व्यंग्य की विकास यात्रा ही नहीं है, वरन् देशकाल की परिस्थितियों में व्यंग्य रचनाओं - गद्य में लिखी व्यंग्य रचनाओं– का आकलन भी है। साथ ही आलोचनात्मक मूल्यांकन भी।

सुभाष चंदर ने आज के व्यंग्य की दयनीय स्थिति पर भी अपनी बेबाक राय रखी है। 'भूमिका' में वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं– 'आज व्यंग्य पाठकों के बीच सर्वाधिक लोकप्रिय है। किंतु पाठक के इस विश्वास को बनाए रखने के लिए सटीक विषय चयन, सरोकारों की स्पष्टता और शैलीय उपकरणों में संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता है। यह बात दीगर है कि समकालीन व्यंग्य इसमें कुछ लापरवाही बरत रहा है, विशेषकर अखबारी स्तंभों में व्यंग्य में श्रेष्ठता के तत्व कम होते जा रहे हैं जिन पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।' बात सही है। सच तो यह है कि आज अधिकांश दैनिक पत्रों के लिए व्यंग्य दैनिक आवश्यकता बन गया है। समाचार पत्र कभी मिशन थे, आज 'प्रोडक्ट' या 'उत्पाद' हैं। प्रोडक्ट या उत्पाद बाजार की सामग्री होता है, बाजार में बिकने के लिए होता है। आज व्यंग्य इस प्रोडक्ट या उत्पाद का एक अंग बनता जा रहा है। यह विडंबना ही है कि जिस बाजार पर व्यंग्य लिखा जाना चाहिए, बहुत से व्यंग्यकार उसी का हिस्सा बन गए हैं और इस पुस्तक की अच्छाइयों के बीच एक खामी यह है कि सुभाष चंदर ऐसे व्यंग्यकारों को भी 'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' में शामिल कर लेते हैं। इतिहास का अटल नियम है कि उसमें हर एक शामिल नहीं हो सकता, फिर चाहे वह किसी देश का इतिहास हो या साहित्य का। सुभाष चंदर को व्यंग्य लेखकों के चयन में थोड़ा निर्मम होना चाहिए था। साहित्य की दुनिया में निर्मम हुए बिना काम नहीं चलता। सबको साथ लेकर चलना भीड़ जुटाना हो जाता है। यह कहना भी असंगत न होगा कि सुभाष चंदर ने 'भारतेंदु युग' पर तो बड़े परिश्रम से काम किया है, किंतु अन्य युगों पर वे परिश्रम का यह क्रम जारी नहीं रख सके हैं। यहां तक कि 'परसाई युग' और 'आधुनिक युग' तक आते-आते व्यंग्य के इतिहास पर उनकी पकड़ ढीली हो गई है। कुछ और छुटपुट कमियां भी पुस्तक में हैं। जैसे मनोहरश्याम जोशी की कुछेक पात्रों को केंद्र में रखकर लिखे गए अलग-अलग व्यंग्यों की पुस्तक 'नेताजी कहिन' को उन्होंने व्यंग्य उपन्यासों में शामिल कर लिया है। यह भी कि अनेक व्यंग्यकारों की पुस्तकों के नाम गिनाते समय वे उनकी कई अन्य व्यंग्य पुस्तकों के नाम नहीं दे सके हैं। यह भी कि कुछ व्यंग्यकार एक युग में नजर आते हैं तो दूसरे युग में भी वे दिखाई पड़ते हैं। ऐसे में व्यंग्य के इतिहास को युगों में विभाजित करना काफी दोषपूर्ण प्रतीत होने लगता है। पुनरावृत्ति दोष भी इस पुस्तक में है। सुभाष चंदर एक ही बात को दूसरी जगह भी दुहरा देते हैं। एक उदाहरण, पृष्ठ 31 से, 'भारतेंदु युग की परिस्थितियां भारतवासियों के लिए काफी विषम थीं। सत्तासीन अंग्रेज सरकार का दमन चक्र पूरे यौवन पर था।' इसी बात को थोड़ा फेरबदल के साथ पृष्ठ 32 पर दुहरा दुहरा दिया गया है– 'भारतेन्दु युग में भारत की राजनीतिक परिस्थितियां हताशा उपजाने वाली थीं। अंग्रेजी शासन अपनी जड़ें पूरी तरह जमा चुका था। सत्ता के मद में चूर अंग्रेजों की मनमानी जोरों पर थी।' इस तरह की पुनरावृत्ति या लगभग पुनरावृत्ति पुस्तक में जगह-जगह पर है। लेकिन हमें भूलना नहीं चाहिए कि हिंदी व्यंग्य के इतिहास की, जैसा कि लेखक ने कहा है यह पहली पुस्तक है और पर्याप्त खोजबीन के बाद गंभीरता तथा बेहद परिश्रम करके लिखी गई है। इसलिए खामियों-कमियों की उपेक्षा करके सुभाष चंदर के इस महत्वपूर्ण प्रयास और पहल का स्वागत किया जाना चाहिए।

सी-2/31, ईस्ट ऑफ कै

. . . पृष्ठ 23 का शेष

अब परसाई से लेकर अन्य बहुत से व्यंग्यकार स्वर्णकाल में भी सम्मिलित हैं और आधुनिक काल में भी। यह स्थिति भ्रमकारी है। इस भ्रम में अनेक व्यंग्यकार दोनों कालों के प्रतिनिधि व्यंग्यकार माने गए हैं।

सुभाष चंदर ने व्यापक अध्ययन, शोध एवं परिश्रम से ज्यादा से ज्यादा व्यंग्य कर्मियों एवं कृतियों को रेखांकित किया है। व्यंग्य के इतिहास की पहली पुस्तक होने का दर्जा इस विश्लेषण को मिलेगा ही, आने वाले इतिहासकारों का मार्ग भी प्रशस्त होगा। आज हिंदी में हर विधा में इतना प्रचुर लिखा जा रहा है कि मात्र एक विधा का सम्यक अथवा समग्र इतिहास लिखा जाना भी सरल कार्य नहीं है। सुभाष चंदर ने पर्याप्त निसंग रहते हुए अपने बलबूते इस इतिहास में बहुत कुछ को समेट लिया है जो स्वागत योग्य है।

एच-43 (भूतल), साउथ एक्स-1, नई दिल्ली-110049

राजेंद्र सहगल

व्यंग्य के धर्म और मर्म की पड़ताल

हिंदी व्यंग्य के इतिहास में यह स्थिति बेहद त्रासद और दिलचस्प कही जा सकती है कि इस विधा को ज्यों-ज्यों लोकप्रियता हासिल होने लगी त्यों-त्यों आलोचक उससे परहेज करने लगे। गोया लोकप्रियता कोई छत की बीमारी हो, प्रतिभा को हर हालत में हर लेती है। बेशक लोकप्रियता के अपने खतरे हमेशा रहे हैं और उसके मोह में कई प्रतिभाएं भी नष्ट हुई हैं लेकिन इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि हमारे बीच व्यंग्य के इतने सशक्त हस्ताक्षर मौजूद रहे हैं जिन्होंने इस जनतांत्रिक विधा का जनमानस में अलग जगाने के लिए इस्तेमाल किया। व्यंग्यकार और व्यंग्यलोचना के दोहरे गुरुतर कार्य को साधने की क्षमता दर्शाने वाले व्यंग्यकार सुभाष चंदर की पुस्तक 'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' ऐसे समय में प्रकाशित हुई है जब इस तरह की पुस्तक की कमी तीव्रता से महसूस की जा रही थी। इस तथ्य से भला कौन इंकार कर सकता है कि अन्य विधाओं की अपेक्षा इस विधा का आलोचकों के अभाव में उसके सम्यक मल्यांकन की दिशा में कोई ठोस काम नहीं हुआ। व्यंग्यालोचना के क्षेत्र में डॉ. शेरजंग गर्ग का महत्वपूर्ण ग्रंथ 'व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न' इस दृष्टि से कारगर उपस्थिति दर्ज कर चुका है।

हिंदी व्यंग्य के इतिहास को जानने-समझने के लिए यह तथ्य नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि व्यंग्य के आक्रामक तेवर भले ही भारतेंदु हरिश्चंद्र से आरंभ होकर बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. रामचंद्र शुक्ल, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', निराला, भगवती चरण वर्मा के कथा साहित्य में विकसित हुए हैं लेकिन आजादी के बाद इसमें हरिशंकर परसाई के क्रांतिकारी व्यक्तित्व-कृतित्व से इस विधा में तूफान का आवेग परिलक्षित हुआ। यद्यपि साहित्य की किसी भी विधा का कोई सर्वमान्य रूप निर्धारित नहीं किया जा सकता और न ही किसी शास्त्रीय आधार पर मूल्यांकित किया जा सकता है तथापि व्यंग्य विधा पर यह बात और भी तीव्रता से लागू होती है। नहीं तो क्या कारण है कि व्यंग्य को विधा के स्तर पर प्रतिष्ठित करने के लिए संघर्षरत परसाई भी अंततः इसे 'स्पिरिट' कहते हैं तो व्यंग्य उपन्यास 'राग दरबारी' के रचयिता श्रीलाल शुक्ल भी व्यंग्य को विधा न मानने के फेर में पड़ते हुए इसे शैली कहकर इस चर्चा को अलग मोड़ दे देते हैं।

सुभाष चंदर अपने हिंदी व्यंग्य के इतिहास में लिखी भूमिका में आलोचना की तीन धाराओं निर्णयात्मक, व्याख्यात्मक एवं मनोवैज्ञानिक आलोचना की तो बात करते हैं पर वे व्यंग्यकारों की रचनाओं पर टिप्पणी करते हुए व्याख्यात्मक आलोचना पर केंद्रित हो जाते हैं और मनोवैज्ञानिक आलोचना का इस्तेमाल करने से बराबर बचते रहे हैं। इस पुस्तक में बेशक व्यंग्य की व्युत्पत्ति से लेकर उसकी परिभाषा, हास्य से व्यंग्य के अंतर्संबंधों की महीन बुनावट की व्याख्या तथा व्यंग्य को विधा मानने के आधारभूत प्रश्नों को उठाते हुए आदिकाल भारतेन्दु युग (1873-1910) से, मध्यकाल (बेढब बनारसी युग) (1910-1947) एवं आधुनिक काल को 1990 से माना गया है। इसके अलावा पुस्तक के अंतिम अध्याय को लघु व्यंग्य का शीर्षक देते हुए प्रतिनिधि व्यंग्यकारों की व्यंग्य रचनाओं के केंद्र में रखा गया है। व्यंग्य और व्यंग्यकारों की रचनाओं को तत्कालीन युगीन धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए निस्संदेह लेखक ने विपुल सामग्री का अध्ययन किया है। इस सबके बावजूद और उसे काल निर्धारण में वर्गीकृत करने की सफल कोशिश के रहते भी इस पुस्तक की सीमा बनी रहती है।

इस पुस्तक को पढ़ते हुए यह अत्यंत सुखद लगता है कि सुभाष चंदर ने अपने अध्यवसायी वृत्ति और सतत् जागरुकता के चलते अधिकतम व्यंग्यकारों पर अर्थपूर्ण टिप्पणियां भी की हैं। इसके अलावा, उन्होंने व्यंग्य के क्षेत्र में न केवल प्रतिष्ठित व्यंग्यकारों के व्यक्तित्व-कृतित्व व उनके सामाजिक-राजनीतिक सरोकारों पर गंभीर टिप्पणियां की है बल्कि अचर्चित व कम चर्चित उदीयमान व्यंग्यकारों के व्यंग्य संग्रहों तथा श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाओं की प्रवृत्तियों को लक्षित करते हुए उन्हें सामने लाने की पहल की है जिसके लिए वे प्रशंसा के पात्र हैं। इतनी बड़ी संख्या में चर्चित-अचर्चित व्यंग्यकारों की रचनाओं के गहन अध्ययन के बाद उनके रचनात्मक बिंदुओं को व्याख्यायित करने का गुरुतर कार्य बेशक इस पुस्तक की महती उपलब्धि है लेकिन रचनाकारों का प्रवत्तिगत मूल्यांकन अपेक्षित चिंतन-मनन के प्रभाव में कहीं-कहीं सतहीपन का शिकार भी हुआ है। इस तथ्य से कौन इंकार कर सकता है कि आज व्यंग्य की स्थितियां बहुतायत में मौजूद हैं लेकिन व्यंग्य भोथरा है, कुंद है और काफी कुछ चलताऊ-सा होता गया है, पिटे-पिटाये विषयों पर तयशुदा तरीके से कलम चलाने और सतही तरीके से उसे निभा देना ही व्यंग्य की त्रासदी बनता जा रहा है। यह भी एक कटु सत्य है कि इस विधा की शक्ति को लेकर पाठक में इतनी शिथिलता नहीं आई है जितना व्यंग्यकारों की दृष्टि-आ गई है।

व्यंग्य साहित्य के इतिहास में व्यंग्य और व्यंग्यकारों से संबंधित जानकारी की इस पुस्तक में भरपूर सामग्री है। लेकिन व्यंग्यकार एवं व्यंग्यालोचना के दोहरे दायित्व को सफलतापूर्वक निर्वाह करने में लेखक कहीं-कहीं चूक भी करने लगता है। लेखक ने बेशक सुविधा की दृष्टि से व्यंग्यकारों का काल निर्धारण करते हुए उनके कृतित्व पर अलग-अलग आलोचनात्मक दृष्टि से अपना पक्ष प्रस्तुत किया है। लेकिन विपुल सामग्री को उपलब्ध करवाने के बावजूद प्रवृत्तिगत वैविध्य व आधार पर महत्वपूर्ण व्यंग्यकारों के रचनाकर्म पर विश्लेषणात्मक-आलोचनापरक दृष्टि के अभाव में कई स्थलों पर दोहराव थोड़ा खटकता है और मूल्यांकन की समग्रता में

बाधा उत्पन्न करता है।

आलोच्य पुस्तक के माध्यम से लेखक ने व्यंग्य विधा के साथ जुड़े अतिरेक और हास्य के जुड़ाव से उपजी विचित्र मन:स्थितियों को भी समझने का प्रयत्न किया है। इलैक्ट्रानिक मीडिया के बढ़ते प्रभाव व उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते व्यक्ति के जिस ये परिवर्तित होने से सामाजिक-सांस्कृतिक एवं राजनीतिक माहौल की विषमता ने व्यक्ति को विचारशून्यता की तरफ धकेला है। गंभीरता जब जीवन से गायब हुई तो व्यंग्य पर इसकी मार पड़नी स्वाभाविक थी। व्यंग्य के रूपों, व्यंग्यचर्चाओं तथा व्यंग्य यात्रा में समाज के जटिल ढांचे, व्यक्ति मनोविज्ञान के गूढ़ रहस्यों तथा गहरे इतिहास बोध को उजागर करने के अधबीच यह पुस्तक द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मकता से घिर जाती है जिसके प्रभाव में पड़कर कुछेक निर्णायक पहलुओं को उद्घाटित करते हुए एकांगिता, अतिवादिता तथा वैचारिक शैथिल्य का शिकार होने से बच नहीं पाती।

लेखक ने व्यंग्यालोचना के जरिए तात्कालिकता के मोह में पड़कर व्यंग्यकारों की जल्दबाजी में सफलता अर्जित करने के नुस्खों पर कुछ तल्ख टिप्पणियां भी की हैं। व्यंग्य के नाम पर महज जुमलेबाजी और सस्ती लोकप्रियता के फेर में व्यंग्य को नुकसान पहुंचाने की बढ़ती प्रवृत्ति पर भी लेखक ने निशाना साधा है। एक तरफ पत्थर हुई संवेदनाओं और दूसरी तरफ कूंद होते व्यंग्य लेखन पर अंगुली रखती लेखक की गंभीर की टिप्पणियां नए व्यंग्यकारों को चेताती हैं और उनके सामने नई चुनौतियां भी प्रस्तुत करती हैं। कुछेक सीमाओं के बावजूद इस पुस्तक की यह उल्लेखनीय विशेषता कही जा सकती है कि लेखक ने प्रतिष्ठित व उदीयमान व्यंग्यकारों के रचनाकर्म पर गुणात्मक एवं प्रवृत्तिगत आधार से विश्लेषण करने के साथ-साथ मूल्यांकनपरक दृष्टिकोण का भी परिचय दिया है। व्यंग्यकारों की लंबी सूची तैयार करने में निस्संदेह सुभाषचंदर ने दु:साध्य कार्य किया है। नये-पुराने व्यंग्यकारों के व्यंग्य कर्म की आलोचना करते हुए लेखक ने मात्र कसीदे नहीं पढ़े बल्कि उनके अंतर्विरोधों को भी उघाड़ा है। हालांकि प्रत्येक व्यंग्यकार की अपनी शक्ति एवं सीमा होती है और उनका तुलनात्मक अध्ययन कोई नई जमीन तैयार नहीं करता तथापि कुछ प्रवृत्तिगत विशेषताओं को आधार बनाकर दो प्रतिष्ठित व्यंग्यकारों की तुलना की जाए तो न केवल शक्ति और सीमा को पहचाना जा सकता है बल्कि संबंधित क्षेत्र में नई जमीन भी तोड़ी जा सकती है।

सुभाष चंदर ने व्यंग्य विधा के साथ हास्य के अनिवार्य रूप से जुड़े रहने की प्रवृत्ति को सार्थकता-निरर्थकता के स्तर से उठाते हुए इसे ठोस दिशा देने को अधिक महत्व दिया है। परसाई, जोशी, त्यागी एवं श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य साहित्य का समग्र मूल्यांकन करने के अलावा नरेंद्र कोहली, मनोहर श्याम जोशी, डॉ. शेरजंग गर्ग, गोपाल चतुर्वेदी, शंकर पुणतांबेकर, के.पी. सक्सेना, प्रदीप पंत, प्रेम जनमेजय, हरीश नवल, ज्ञान चतुर्वेदी, विष्णु नागर, यशवंत व्यास व हरि जोशी जैसे व्यंग्यकारों के बाद की पीढ़ी पर भी उन्होंने पूरा ध्यान केंद्रित किया है और नए दौर की उभरती नई प्रवृत्तिगत विषयों को भी आलोचनात्मक दृष्टि से जांचने परखने का कार्य किया है। इस पुस्तक की यह भी उपलब्धि कही जाएगी कि लेखक ने अपनी सतत जागरुकता व सक्रियता से कई अचर्चित या कम चर्चित उदीयमान व्यंग्यकारों को भी समुचित स्थान दिया है।

इस सबके बावजूद लेखक काल निर्धारण में युगीन राजनीतिक धार्मिक-अर्थिक-सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों के दुष्चक्र एवं विसंगतियों को आधार बनाकर व्यंग्यकारों के व्यंग्य कर्म के मूल्यांकन के लिए जिस गहरे व व्यापक अनुभव की अपेक्षा होती है उसकी कमी कहीं न कहीं खलती है और भी अच्छा होता यदि लेखक हिंदी व्यंग्य के इतिहास जैसे गंभीर एवं गुरुतर कार्य के निर्वाह के लिए अकादमिक दृष्टि के साथ-साथ इस विधा की गत्यात्मकता तथा जीवंतता के तल्ख व्यवस्था विरोधी तेवरों को आत्मसात करते हुए सम्पन्न दृष्टि से मूल्यांकित करने का जोखिम उठाने की पहल करता। इस सबके बावजूद व्यंग्य की मूल शक्ति को मूल्य संक्रमण की पेचीदगी व उलझाव में परखने की दृष्टि से यह पुस्तक व्यंग्य जगत में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करेगी।

40, सिद्धार्थ अपार्टमेंट, नजदीक मियांवाली नगर
रोहतक रोड, दिल्ली- 110087

पहल 89

इस महादेश के वैज्ञानिक विकास के लिए प्रस्तुत प्रगतिशील रचनाओं की अनिवार्य पुस्तक

सुलभा कोरे, सुचादेव सिंह, सत्यपाल सहगल, धर्मेंद्र पारे, पंकज चतुर्वेदी, गीत चतुर्वेदी, व्योमेश शुक्ल, खालिद जावेद, एकांत श्रीवास्तव की रचनाएं

साक्षात्कार-

बातचीत- विक्रम सेठ के साथ सुदीप सेन, अरुंधति राय से शोभा चौधरी, सलमान रश्दी से एलेस्टेयर निवेन।

कविताएं-

कुमार अंबुज, शैलेंद्र चौहान, प्रेमशंकर रघुवंशी, प्रतापराव कदम, अनिल त्रिपाठी, मधुरेश, परमानंद श्रीवास्तव और रवि श्रीवास्तव के आलेख।

इसके अतिरिक्त-

धारावाहिक, नये कहानीकार, डायरी, गीत दुनिया आदि

संपादक : ज्ञानरंजन

संपर्क : १०१ रामनगर आधारतल जबलपुर

नया पथ

अप्रैल-जून 2008

हिंदू-उर्दू साझा संस्कृति पर केंद्रित

परिप्रेक्ष्य-

एजाज एहमद, टाम डीगनशअली अहमद, फातमी, यावर अब्बास, महेश्वर दयाल, असग़र वजाहत प्रमोद मिश्र आदि

कहानियां-

रज़िया सज्जाद ज़हीर, रज़ा हमाम, ख़ालिदा हुसैन आदि

कविताएं और नज़्में-

सारा शगुफ्ता, यासमीन हमीद, मनमोहन आदि

विरासत-

शरीफ हुसैन कासमी, अली जावेद, सज्जाद जहीर, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, कमलेश्वर, शमशेर बहादुर सिंह आदि

संपादक-

मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चौहान

***संपर्क** : ४ विट्ठलभाई पटेल हाऊस, नई दिल्ली-१*

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया से प्रकाशित स्वर्ण जयंती पुस्तकमाला की कुछ पुस्तकें

देसिल बयना

तारानंद वियोगी द्वारा संकलित एवं संपादित आजादी के बाद के 46 प्रमुख मैथिली कथाकारों की महत्त्वपूर्ण कहानियों को इस संकलन में शामिल किया गया है।

पृ.330 रु.100-00

वादि-ए-खयाल

मखमूर सईदी द्वारा संकलित एवं संपादित आजादी के बाद के 138 प्रमुख उर्दू कवियों की महत्त्वपूर्ण कविताओं को इस संकलन में शामिल किया गया है।

पृ.328 रु.100-00

आजादी तों बाद दीयां पंजाबी कहानियां

वरयाम सिंह संधू द्वारा संकलित एवं संपादित आजादी के बाद के 37 प्रमुख पंजाबी कथाकारों की प्रतिनिधि कहानियों को इस संकलन में शामिल किया गया है।

पृ.368 रु.140-00

साख भरै सबद

अर्जुन देव चारण द्वारा संकलित एवं संपादित आजादी के बाद के 31 प्रमुख राजस्थानी कवियों की प्रतिनिधि रचनाओं को इस संकलन में शामिल किया गया है।

पृ.186 रु.75-00

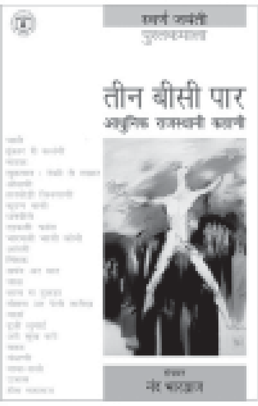

तीन बीसी पार

नंद भारद्वाज द्वारा संकलित एवं संपादित आजादी के बाद की राजस्थानी कहानियों के इस संकलन में 32 प्रमुख कथाकारों की महत्त्वपूर्ण कहानियों को शामिल किया गया है।

पृ.244 रु.85-00

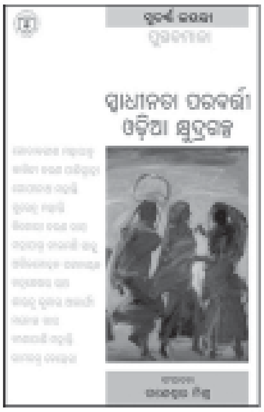

स्वाधीनता परबर्ती ओड़िया क्षुद्रगल्प

गणेश्वर मिश्र द्वारा संकलित एवं संपादित आजादी के बाद के 90 प्रमुख ओड़िया कथाकारों की प्रतिनिधि कहानियों को इस संकलन में शामिल किया गया है।

पृ.302 रु.90-00

अधिक जानकारी के लिए कृपया संपर्क करें :

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, फेज-II, नई दिल्ली-110070 दूरभाष : 24526169, 24526164, 24526174 (अस्थायी)
ई-मेल : nbtindia@ndb.vsnl.net.in वेबसाइट : http://www.nbtindia.org.in
मुंबई : दूरभाष व फैक्स : 91-22-23720442 ई-मेल : nbtindiamumbai@yahoo.com
बंगलुरु : दूरभाष व फैक्स : 91-80-26711994 ई-मेल : nbtindiasro@vsnl.net
कोलकाता : दूरभाष व फैक्स : 91-33-22413899 ई-मेल : nbtero@dataone.in

नेशनल बुक ट्रस्ट किताब क्लब के सदस्य बनें और नेशनल बुक ट्रस्ट के प्रकाशनों पर 20 प्रतिशत की छूट पाएं

श्रीकांत चौधरी

कामरेड

बांये हाथ में विदेशी कीमती घड़ी, दाहिने हाथ की अंगुलियों में तीन सोने की अंगूठियां, एक में छोटा हीरा जड़ा हुआ था। किसी ज्योतिषी की सलाह पर अलग-अलग नंगों की अंगूठियां पहनी गई थीं। सफारी सूट, सुनहरा चश्मा और आंखों में एक चमक, सर्तकता, चाल में सौम्यता, वाणी में ओजस्व।

मजदूरों पर हुए लाठी चार्ज पर संसद में उन्होंने गंभीर आक्रोश व्यक्त किया। सरकार को चेतावनी दी कि अगर मजदूरों को इस तरह दबाया कुचला गया, उद्योगपतियों ने तालाबंदी जारी रखी तो वे राज्य की इस निरंकुश सत्ता को उखाड़ फेकेंगे!

'हमारा सर्वहारा वर्ग, पूंजीपतियों की हितैषी विदेशी निवेश की लोलुप, इस मजदूर विरोधी सरकार के खिलाफ चुप नहीं रहेगा। सारे देश में उग्र आंदोलन किया जाएगा। सरकार को याद रखना चाहिए कि दुनियां के सारे मजदूर एक हैं, समाजवादी, साम्यवादी क्रांति अब कुचली नहीं जा सकती, पूंजीवाद का अंत अब निकट है!'

उनके वक्तव्य में गहरा आत्म विश्वास, आक्रोश और ओज था, वे अखिल भारतीय स्तर के सुविख्यात नेता थे। सारा सदन स्तब्ध होकर सुन रहा था। सदन की कार्यवाही समाप्त होने के बाद वे अपनी कार से तुरंत घायल मजदूरों से मिलने गए। यूनियन के नेताओं से भी विचार विमर्श किया!

रात्रि 10 बजे लगभग घर पहुंचे। हल्के पैग के साथ डिनर लिया। ड्रायवर को छुट्टी दी। अपने कमरे का एयर कन्डीशनर चला वे निद्रामग्न हो गये। उनका मकान लगभग पचास लाख का था। बैंक बैलेंस भी लगभग पचास लाख ही था। कुछ मिलाकर अचल सम्पत्ति दो करोड़ से अधिक नहीं थी।

वे बहुत अनुभवी और अजेय समझे जाने वाले, मजदूरों के अत्यंत लोकप्रिय नेता थे। एक भी चुनाव नहीं हारे, हर बार प्रचंड बहुमत से लोकसभा का चुनाव जीते। मंत्री पद के लालची नहीं थे। सांसद ही बने रहे! सभी उनका बहुत आदर करते थे!

अभी नींद लगने को ही थी कि कम्पाउंड में कुत्ते के भौंकने की जोरदार आवाज से वे चौंक गये। संयोगवश चौकीदार भी आज ही छुट्टी लेकर गांव गया था। पत्नी गहन निद्रा में थी। तत्काल रिवाल्वर लेकर वे पोर्च के नजदीक आये, उनकी नजर एक चीथड़े पहिने लड़के पर पड़ी दुबला, पतला, सांवला बिखरेबाल, सूखा चेहरा, सदियों से भूख से पिटा जिस्म, उन्हें देख घबराकर भागा तो चैनल गेट से टकराकर गिर गया, जर्मन शेफर्ड कुत्ते को शायद रहम आ गया, उसने उसे नहीं काटा, मालिक के तलुवे चांटने लगा। उन्होंने गुस्से में तमतमाकर लड़के को गर्दन पकड़कर उठाया, कसकर चार पांच झापड़ रसीद किए।

'चोर, हरामी, रसाले. . . खुशनसीब है कि बच गया, अभी गोली चला देता तो बेमौत मर जाता . . .अभी पुलिस को बुलाकर तेरी खाल उधड़वाता हूं. . .।'

लड़का थरथर कांप रहा था, रोते गिड़गिड़ाते हुए बोला- 'माई बाप माफ कर दीजिए, दो दिन से भूखा था. . .गलती हो गई. . ' वह पैरों पर गिर पड़ा। उन्हें दुष्यंत का एक शेर अनायास याद आ गया जो किसी सांसद ने दो तीन बार दुहराया था।

'कल नुमाईश में मिला था चीथड़े पहिने हुए! मैंने पूछा नाम, तो बोला कि हिन्दुस्तान है!' पुलिस अदालत, के झमेले में कौन पड़े, उन्होंने सोचा रहमदिल होकर उन्होंने हिन्दुस्तान को माफ कर दिया। भूखे को जाने दिया।

कालमार्क्स ने साम्यवाद और साम्यवादी यानि कामरेड की जो भी परिभाषा लिखी हो, आज अगर वे जिंदा होते तो उन्हें भारतीय कामरेड को समझने में काफी समय लग जाता, उन्हें शायद 'दास केपीटल' में नया अध्याय जोड़ना पड़ता।

दलितों का मसीहा

दस दिन पूर्व ही बर्ड फ्लू के उपचार तथा देसी मुर्गी पालन की बेहतर संभावनाओं के तरीके जानने हेतु मंत्री जी विदेश गए थे। आज शाम ही स्वदेश लौटे, एयरपोर्ट पर ही उन्हें जानकारी मिल चुकी थी वे असहज हो गए, आंखों में खून उतर आया। चेहरा गुस्से से लाल पड़ चुका था, दिमाग में कारगिल का घमासान चल रहा था। टी.वी. चैनल्स के रिपोर्टरों को बड़ा गहरा दुख और पछतावा रहा कि वे इस जोरदार, मसालेदार, सनसनीखेज मामले का सचित्र प्रसारण करने से वंचित रह गए। केवल मौखिक विवरण देकर संतोष करना पड़ा।

तेज कदमों से सीधे बेड़रूम गए। शहर के चार-पांच सबसे बड़े सरकारी डॉक्टर खड़े थे बिलकुल चौकन्ने। इनमें से दो तो मंत्री जी के पी.ए. का फोन पाते ही इमरजेंसी ऑपरेशन अधूरा छोड़ बंगले पर आ गए थे। बाकी अपने मन से आ गए थे। कुछ को तो मंत्री जी की पत्नी ने ही विनम्रता से वापस कर दिया था। पी.ए. तथा मंत्री जी के परिवार को इस बात का संतोष हुआ कि प्रदेश में स्वास्थ्य सेवाएं बहुत बेहतर हैं और डॉक्टर्स ईमानदार, संवेदनशील और ड्यूटी के लिए समर्पित यानि कर्त्तव्यपरायण हैं।

मंत्री जी को सी.एस. ने तुरंत बताया– 'सर, चिंता की कोई बात नहीं, बेबी को सदमा लगा है। हमने इंजेक्शन दे दिया है, दो तीन घंटे में होश आ जाएगा। नो प्राबलम!' मंत्री जी कुछ सहज हुए, पी.ए. से बोले, 'तुरंत कलेक्टर, एस.पी. को तलब करो।'

चंद मिनटों में ही कलेक्टर, एस.पी. हाजिर हुए, वे एयरपोर्ट से बंगले की तरफ ही आ रहे थे। ड्राईंग रूम में आकर बैठने भी न पाए थे कि मंत्री जी आग बबूला होकर बोले। कमरे में अमेरिका की ग्यारह सितम्बर जैसा माहौल था।

'आप लोग इतने नकारा, इतने निकम्मे हैं? जंगल राज चल रहा है?? लॉ एंड आर्डर को लकवा मार गया है??? उन हरामजादों मादर . . . ने मेरी पिंकी, मेरी बिटिया के, कॉलेज कैम्पस के अंदर कपड़ फाड़ डाले? बलात्कार की कोशिश की, सारे लोग तमाशा देख रहे थे? दो तीन प्रोफेसरों ने आकर उसे बचाया, कपड़े ओढ़ाकर घर पहुंचाया वरना भगवान जाने क्या होता . . .

'कहां मर गए थे आप सब? क्या किया आप लोगों ने? वे गुंडे बलात्कारी कहां हैं, अब तक जिंदा हैं???'

'सर, हम लोगों ने उन दोनों को तत्काल गिरफ्तार किया था, मैं खुद थाने लेकर आया था। वे भी उसी कॉलेज के छात्र हैं। बेबी के क्लास फेलो हैं।' एस.पी. ने विनम्रता से सर झुकाकर बताया। कलेक्टर ने सहमति में सिर हिलाया।

'उनकी खाल उधेड़ देना थी, हत्या, डकैती, बलात्कार का केस बनाना था, क्या किया आपने?' मंत्री जी गरजे।

'सर, हमने उन्हें दो चांटे मारकर छोड़ दिया। कोई मामला कायम नहीं किया।' कलेक्टर ने अबकी बार अत्यंत विनम्र लज्जित भाव से कहा!

मंत्री जी सोफे पर उछल पड़े, जैसे सुनामी लहरों का कहर टूट पड़ा हो।' आप लोगों की ये मजाल? आप लोग न्याय कानून के हत्यारे हैं। इंसानियत का जनाजा निकाला है आप लोगों ने!!! प्रशासन का, सरकार का ऐसा अपमान? हाऊ यू डेयर? यू विल बी नो मोर इन सर्विस!' वे गुस्से से कांप रहे थे। चेहरा तमतमा रहा था।

एस.पी. ने गिड़गिड़ाने की मुद्रा में निवेदन किया, 'सर, पिछली बार जब आजाद पार्क में एक लड़की के साथ चार लोगों ने बलात्कार किया था तो हमने उनकी खाल उधेड़ दी थी, मुंह काला कर, सर मुंड़वाकर जुलूस निकलवाया था, तब आपने ही हमें डांटा था कि ये सब अमानवीय है, गैर कानूनी है। आपके निर्देश पर हमने मामला भी कायम नहीं किया था। उन्हें चेतावनी देकर छोड़ दिया था। फिर ये तो बलात्कार का मामला ही नहीं है।'

'क्या बकते हो? वो मेरी लड़की थी क्या? और फिर वे लोग मेरे यानि पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता थे, पॉलिटिक्स में सब करना पड़ता है।' कुछ कम रोष और गहन क्षोभ के साथ मंत्री जी ने दोनों को फटकारा, आंखों में कच्चा खा जाने का भाव था।

'सर दरअसल बात ये है कि– 'अत्यंत शहद भरी गोल्ड प्लेटेड वाणी में एस.पी. ने निवेदन शुरू किया, 'आप तो दलितों के मसीहा समझे जाते हैं सर, आपने विदेश जाने से पहले प्रेस कान्फ्रेंस में भी कहा था और सभी विभागों को सरकुलर भी भिजवाया था कि दलितों, खासकर अनुसूचित जाति जनजाति के लोगों द्वारा अपराध किए जाने पर तत्काल मामले कायम नहीं किए जाएं, पहले उन्हें समझाइश दी जाए, उनके साथ नरमी बरती जाए, खासकर मारपीट बल प्रयोग बिलकुल न किया जाए, सर ये लड़के भी दलित वर्ग से थे, इसलिए हमने उन दोनों लड़कों को अच्छी तरह समझा दिया कि भविष्य में वे इस तरह की बदतमीजी यानि अपराध न करें। प्रिंसिपल साहब ने भी उन्हें चेतावनी दी है कि आगे अगर उन्होंने ऐसी हरकत की तो वे दोनों लड़कों को कॉलेज से निकाल देंगे।'

'हमने तो सर आपके निर्देशों का ही ईमानदारी से पालन किया है।' कलेक्टर ने हाथ जोड़कर कहा।

मंत्री जी दोनों हाथों से अपना माथा पकड़कर बैठ गए!

एक्स. सिविल जज
नया बाजार नं.1, दमोह (म.प्र.)

रामशरण जोशी

मैं और वो

अब मैं प्रेत बन गया हूं। अपने ही घर का मैं अदृश्य निवासी हूं। घर को मैं देख सकता हूं, वह मुझे नहीं देख सकता। कभी मैं घर की फसील पर बैठता हूं। आने जाने वालों को देखता हूं। अंदर-बाहर आती वस्तुओं को देखता हूं। कभी मैं अपने रीडिंग रूम में एक कोने में चुपचाप खड़ा रहता हूं। हर चीज को बड़े ध्यान से देखता हूं। सब कुछ बदल डाला है उसने। दीवारें, पर्दा, अल्मारियां, फर्नीचर, पलंग, बिस्तर, टेलीफोन, टाइपराइटर, अखबारी रद्दी, पुराने जूते, ट्रंक में बंद उतरे कपड़े, माता-पिता का पुराना फ्रेम, मेरे मैरिट सर्टिफिकेट। पता नहीं इन सबको क्या हो गया? मैं बिलकुल अजनबी हूं अपने ही रूम में। कभी फर्श पर खड़े होकर, कभी दीवार से उल्टा लटककर अपनी चीजों को तलाशता हूं। लेकिन, कहीं कुछ दिखाई नहीं देता है। वैक्यूम क्लीनर ने मुझसे जुड़ी तमाम वस्तुओं को निगल लिया है।

मुझे याद है वो दिन जब उसने बुक शैल्फों को बाहर फेंकना शुरू किया था। मैंने उसे रोका था, और पूछा था, 'अरे मेरे देहधारी, यह क्या कर रहे हो?' तब उसने कहा था, 'मेरे प्रेतबंधु, देख नहीं रहे हो मैं क्या कर रहा हूं?'

'लेकिन, ऐसा क्यों कर रहे हो? किताबों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?'

मैंने उससे पीड़ा और याचना के साथ पूछा था। उसने मेरी ओर देखा भी नहीं। वह अपने काम में लगा रहा। मुझसे रहा नहीं गया। मैं उसके और बुक शैल्फ के बीच तनकर खड़ा हो गया। मुझे उम्मीद थी कि वह डर जाएगा। किताबों को अपने स्थान पर रहने देगा। पर उसने ऐसा नहीं किया। उसने बड़ी निर्दयता से मुझे धक्का मारा। मुझे एक कोने में फेंक दिया गया जहां मेरी हालत एक 'यूज्ड कंडोम' से अच्छी नहीं थी। वह चीखने लगा, 'तुम इसी तरह पड़े रहो। जानते नहीं हो अब इस खपत की जरूरत नहीं है।'

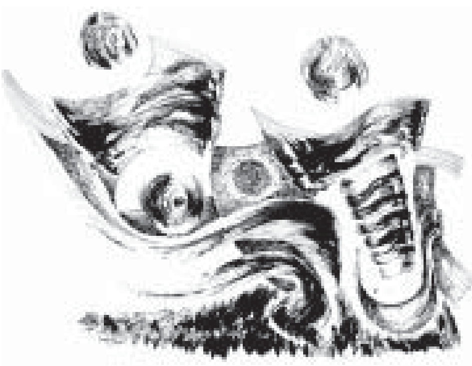

उसने किताबों की ओर इशारा किया और मुझे चिढ़ा-चिढ़ाकर उन्हें बाहर फेंकने लगा। 'मैंने तुम्हें कई दफा समझाने की कोशिश की। लेकिन, तुम्हारे भेजे में कुछ भी नहीं आता। जानते नहीं अब विचारधारा का अंत हो चुका है। इतिहास का अंत हो चुका है। सभ्यता का अंत हो चुका है। जब इन चीजों का अंत हो चुका है तब इस कमरे में किताबों की आवश्यकता क्या है?'

मैं उसे जवाब नहीं दे सका। खामोशी से उसकी प्रत्येक हरकत सहन करता रहा। मैं देखता रहा अपने ही कमरे में अपनी चेतना का दाह संस्कार। गीता, बाइबल, कुरान, सुखसागर, मार्क्स, माओ, गांधी, टॉलस्टाय, गोर्की, सार्त्र- सभी का उसने अंतिम संस्कार कर दिया था। उसने इनका अलाव लगाया था और अपने दोस्तों के साथ देर रात तक मौज की थी। उस रात सभी ने मुझे चिढ़ाया था- देखो, देखो कोने में. . . वो कंडोम. . .कंडोम. . .कंडोम। सभी ने मेरे नए नाम को कोरस में गाया था। उस दिन को याद कर आज भी मेरे कान फट पड़ते हैं।

मुझे याद है, पार्टी की समाप्ति पर सभी ने संकल्प लिया था कि मेरी देह की कमर को कमान की शक्ल देना है। मेरे देहधारी ने तुरंत ही अपनी कमर को कमान का रूप दे दिया। मैंने उससे बहुत कहा था कि ऐसा मत करो। कमर को सीधी रहने दो, सीने को सिकोड़ो मत, सर को झुकाओ मत, गर्दन को खड़ी रहने दो। पर वह सुनने वाला कहां था। उसके लिए मैं अस्तित्वहीन हो चुका था। उसने मेरी काया पर पहले से ही डाका मार रखा था। मेरे इहलोक और परलोक का वह नियंता बन बैठा था। अब वह मेरे घर के किसी भी हिस्से का मनचाहा इस्तेमाल कर सकता था। एक दिन तो उसने हद ही कर दी। मेरी देह में घूमता हुआ वह किसी लड़की को उठा लाया। उसके साथ उसने वह सब कुछ किया जो उसे नहीं करना चाहिए था। इससे भी उसे संतोष नहीं मिला। उसका गला घोंट डाला। पिछवाड़े से उसने कब्र खोदी, फिर उसे दफना दिया। फिर वह साफ-सुथरे सफेद कपड़े पहनकर बाहर निकल गया। देर रात लौटा। एक नया परिवर्तन दिखाई दिया। उसके सर पर टोपी थी। कई रंगोंवाली। वह सफेद भी थी। वह पीली भी थी। वह हरी भी थी। वह काली भी थी। अब उसकी नई पहचान बन चुकी थी। उस दिन उसने मुझे बुलाया था। बड़े सयाने अंदाज में मुझसे बात की थी।

'सुनो, इधर आओ! हमेशा उस कोने में गुमसुम क्यों खड़े रहते हो?' उसने मुझे अपनी ओर बुलाने का संकेत दिया। मैं उसके पास पहुंच गया। चुपचाप उसके पास खड़ा हो गया। उसने मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहा, 'तुमने उस रोज मुझसे पूछा था कि मैंने कमर को कमान क्यों बना लिया है? आज मैं तुम्हें राज की बात बतलाता हूं।' उसने मेरी आंखों में घूरकर देखा। मैं कुछ संभल गया। कानों को चौकस कर लिया। सोचा कि यह कोई नए सत्य का अविष्कार या उद्घाटन करेगा। हो सकता है कि यह मुझे इसके बाद प्रेत-योनि से मुक्ति दिला दे। मैं आशान्वित था। वह बोला, 'सुनो प्रेतबंधु, युवती की लाश को दफनाने के लिए कमर

को कमान बनाना जरूरी था। उसे कमान बनाने के लिए मैंने रीढ़ को निकाल फेंका था। रीढ़ के रहते मैं कुछ नहीं कर सकता था। अब मैं कहीं भी उड़ सकता हूं। कहीं भी विचर सकता हूं। कहीं भी घुस सकता हूं। कहीं भी बैठ सकता हूं। समझे तुम?' मैं निर्निमेष दृष्टि से उसे देखता रहा। उसने मुझे कई बार झकझोरा भी। पर मैं उसके सवाल का हां या ना में उत्तर नहीं दे सका। मैंने देखा इस घटना के बाद वह कहीं रुका नहीं। वह सुरंग में घुस सकता था। वह चूहे की तरह गटर से निकल सकता था। वह किसी भी बुर्ज-मचान से घोषणाएं कर सकता था और कीचड़ में रहकर मेंढक की तरह टर्र-टर्र भी कर सकता था। वह सुबह अजान भी देता और शाम को आरती में शामिल भी होता। अवसर पड़ने पर वह सूअर का गोश्त मस्जिद में और गऊ का मांस मंदिर में फिंकवा देता। दोनों की इंटें भी खिसकवा देता।

जब वह मेरे घर से बाहर निकलता लोगबाग यही सोचते कि यह सब कुछ मेरे ही कारनामें हैं। मैं ही दंगे करवाता हूं, हत्या करवाता हूं, चकले चलाता हूं, तस्करी कराता हूं, विस्फोट करता हूं। इसमें लोगों का भी क्या दोष? उनका कसूर सिर्फ इतना ही है कि वे असलियत से अपरिचित हैं। उन्हें नहीं मालूम कि मैं मेरी देह में नहीं हूं। मैं तो प्रेत बन चुका हूं। मेरी देह में 'वो' घुस चुका है। वो ही मेरी देह का इस्तेमाल कर रहा है। मैं तो उसे हथियारबंदों से घिरे देखता हूं। भीड़ में खड़ा उसकी कारों के काफिले को देखता हूं। उसे मंच पर सलामी लेते देखता हूं। कई बार इच्छा भी होती है कि साहस जुटाकर उस पर टूट पड़ूं। उसकी टोपी की चिंदी-चिंदी कर डालूं। टोपी के हर रंग को धागा समेत खींचकर रख दूं। भीड़ से चीख-चीखकर कहूं कि इसने मेरी देह पर कब्जा जमा रखा है। मैं प्रेत बनकर लावारिस दर-ब-दर घूम रहा हूं। एक दो बार मैंने प्रयास भी किए थे। मगर नाकाम रहे। उसके सुरक्षा गार्डों ने गोलियां चला दीं। वह पूरी तरह से साबुत रहा। जब वह घर लौटा तो वह मुझ पर टूट पड़ा।

'देख लिया मुझ पर हमला करने का नतीजा? खुद को भी लहूलुहान किया और अपने अनगिनत प्रेत साथियों को भी गोलियां खिलवाईं। याद रखो, तुम हमें कभी नहीं मार सकोगे। प्रेत हो, प्रेत बने रहो। इसी में तुम्हारी और तुम्हारी कौम की भलाई है।' वह काफी देर तक गुर्राता रहा। मैं हारा हुआ सब कुछ कोने में पड़ा-पड़ा उसका प्रवचन सुनता रहा। लेकिन इस हादसे के बाद उसने कुछ सावधानी जरूर बरती। हथियारबंद आदमजात उसके साथ पहले से ही थे। अब उसने कुछ गैबी ताकतों से भी रिश्ते जोड़ लिए। तांत्रिकों से मृत्युंजय यज्ञ करवाए। तांत्रिकों से हर मामले में उसने सलाह लेना शुरू कर दिया। विरोधियों का संहार करने के लिए भी उसने यज्ञ करवाए। वह तांत्रिकों का, और तांत्रिक उसके दलाल बन गए। उन सभी ने दलाली में नहाना शुरू कर दिया। उसकी एक मुट्ठी में राजशक्ति थी और दूसरी में गैबी। मैं प्रेत करता भी तो क्या करता?

आज मैं देख रहा हूं कि खूब सजा-संवरा हुआ है। सफेद झक कपड़े पहने हुए है। कलफदार कपड़ों की कलफ से उसकी कमर का पोलापन उघड़ता नहीं है। कंधे से झूलते केसरिया अंगोछे से उसकी छाती की सिकुड़न ढकी हुई है। टोपी ने उसके बंजरपन को छुपा लिया है। अब उसके कपाल के गड्ढे भी दिखाई नहीं देते हैं। वह ऊपर से नीचे तक महक रहा है। वह है या नहीं, महक जरूर है। मैंने हिम्मत जुटाकर उससे पूछ ही लिया, 'क्या बात है, आज तुम बड़े बने-ठने बने हुए हो? क्या आज कोई नए प्रेत-भक्षण अभियान पर निकल रहे हो?'

'तुमने खूब पहचाना। आज का दिन मेरे लिए किसी अभियान से कम नहीं है। मुझे तुम्हारे जैसे लाखों-करोड़ों प्रेतों का भक्षण करना है। कुछ समझे?' उसने अपने संपूर्ण दंभ के साथ कहा, और जाते-जाते मुझे हिदायत भी दी, 'जरा आधा घंटे बाद सामने रखे टीवी सेट को ऑन करना मत भूलना।' वह यह कहकर बाहर निकल गया। उसके आगे-पीछे कई एस्कोर्ट कारें थीं। वह चला गया। मैं कोने से निकलकर गलीचे पर बैठ गया। आधा घंटे का समय था। सो मैंने एक बार फिर उसके कमरे का मुआयना किया; इटालियन पेंटिंग्स, मारबल मूर्तियों, फ्रेंच परफ्यूम, शैम्पेन, चेक कट-ग्लास, चीनी बर्तन, पोलिश भित्ति कालीन, रूसी वोदका, स्विस घड़ी, ब्रिटिश पाइप, चीनी सिल्क, जापानी वीडियो, अमेरिकी कम्प्यूटर, आयातित कश्मीरी गलीचा, इटली, ग्रीक और मिस्र के एंटिक पीस, आबनूसी फर्नीचर, अफ्रीकी शेर की लटकती मुंडी बनता था। उसका यानी मेरा कमरा। मैं इसमें कहा हूं, समझ नहीं पा रहा हूं। टीवी खोलता हूं। इलेक्ट्रानिक पर्दे पर उसका चेहरा उभरता है। वह बोलता है, 'मेरे प्रेत भाइयों और बहनो! आज गणतंत्र दिवस है। हम सबकी मुक्ति का दिवस 'हमारे अधिकारों का दिवस। खुदमुख्तियारी' का दिवस। यह दिवस याद दिलाता है कि हमें विषमता से लड़ना है। अंधेरे से लड़ना है। शोषण से लड़ना है। हमें बराबरी का समाज पैदा करना है। मूल्यों, आदर्शों की स्थापना करनी है।

'मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मेरा प्रेत-मुक्ति अभियान जारी रहेगा। आने वाले वर्ष में आपकी एक चौथाई जनसंख्या को प्रेत-योनि से मुक्त कराया जाएगा। उन्हें मनुष्य योनि में शामिल किया जाएगा। इस संबंध में जल्दी ही नया अध्यादेश जारी किया जाएगा। बस आपकी कृपा-वर्षा मुझ पर ऐसे ही होती रहे।' तालियां. . .तालियां। 'प्रेतों के नेता अमर रहे. . .प्रेतों के नेता जिंदाबाद. . .' नारों से आसमान गुंजायमान है।

उसका भाषण समाप्त हो चुका है। सलामी ली जा चुकी है। वह विशिष्टजनों का अभिवादन स्वीकार करते हुए अपनी कार में बैठ चुका है। उसका काफिला घर की ओर मुड़ चुका है। वह किसी क्षण यहां पहुंच सकता है।

अब मुझे याद आ रहा है मैं कैसे प्रेत बना था। एक रात मैं। चटाई पर लेटा हुआ था। सपनों में गाफिल था। धीरे-धीरे कॉकरोच मेरे जिस्म पर चढ़ने लगा। मैं जगा भी पर मैंने उसकी परवाह नहीं की। मैंने सोचा यह निरीह तिलचट्टा है। इससे भयभीत होने की जरूरत नहीं है। इसे कभी भी मसला जा सकता है। मेरी लापरवाही ने उसे चढ़ने दिया। वह मेरी टांगों के रास्ते ऊपर चढ़ा। पेट पर रेंगता हुआ सीने तक पहुंच गया। मैं तब भी गाफिला रहा। मुझमें आत्मविश्वास भरा हुआ था। मेरा यह क्या बिगाड़ सकता है? मैं हर क्षण यही सोचता रहा। उसने

शेष पृष्ठ 34 पर. . .

श्यामसुंदर घोष

जानी न जाय छपासक माया

हिंदी शब्दों का भी जबाव नहीं। अंग्रेजी के पब्लिशर के लिए हिंदी में प्रकाशक शब्द चलता है। पब्लिशर और प्रकाशक दोनों का कोई मुकाबला नहीं। क्या व्यंजना, गरिमा और उदात्तता है प्रकाशक शब्द में! पर विडम्बना है कि हिंदी के प्रकाशक इस शब्द की गरिमा का निर्वाह नहीं कर रहे। मैं प्रकाशक के बदले छपासक शब्द का इस्तेमाल करता हूं। हिंदी में कुछ ही इने-गुने-चुने प्रकाशक है बाकी तो सभी छपासक हैं।

हिंदी छपासकों को आजकल एक बीमारी लगी हुई है। बड़ी नफीस बीमारी है। इसमें कोई कष्ट नहीं है। यह आमदनी का जरिया है और बीमारियों में तो मरीज को डॉक्टर को फीस देनी पड़ती है पर हिंदी छपासकों को कोई फीस नहीं देनी पड़ती है, उल्टे वे लेखकों से छपास फीस वसूल करते हैं।

इसमें बहुत से लेखकों का भी दोष है। मैं ऐसे लेखकों को लेखक नहीं फेखक कहता हूं। फेखक मतलब फेक लेखक बना हुआ लेखक। ये लेखक समूह के रंगे स्यार होते हैं। ये पांडुलिपि के साथ छपासक को पत्रम्-पुष्पम् भी भेंट करते हैं। पत्रम्-पुष्पम् भेंट करते हुए कहते हैं– यह तो पांडुलिपि को छपासार्थ स्वीकार करने का उपहार है।

मैंने एक लेखक को ऐसा करते हुए पाया तो टोका– बंधु यह क्या करते हो? छपने के पहले ही यह सब? उसने हंसकर कहा– 'वकील को जब आप कोर्ट मामला सौंपते हैं तो सब कागज-पत्र पढ़ने के लिए फीस देते हैं या नहीं? वह बिना फीस लिए कागज पढ़ता है क्या? तो यह प्रारंभिक पूजा है।

मैंने कहा– तब तो आप घृतं तोयं भी भेंट करते होंगे।

क्यों नहीं. . .उन्होंने बड़ी बेशर्मी से कहा।

इस संबंध में छपासकों का कहना है जब लेखक देते हैं तो हम क्यों नहीं लें?

फिर तो आप लेने के लिए कई-कई हथकंडे अपनाते हैं। लेखक की पांडुलिपि लेकर रख लेते हैं और कान में तेल डालकर सो जाते हैं।

फिर लेखक यदि कान में फुटेरी डाले, तो हम जग भी जाते हैं। उन्होंने बेहयायी से कहा। हम तो साहब धंधा करते हैं। धंधे में सब चलता है। कह कर उन्होंने कंधा उचकाया। मैंने पाया कि यहां तो छपासक जगत में कितने चिकने घड़े पड़े हैं। आप कुछ कहकर लीजिए इन पर असर पड़ने वाला नहीं है।

अब तो आप लोग स्थापित लेखकों से भी पैसे मांगने लगे हैं।

हम मांगते नहीं। हमसे मांगने को कहा जाता है।

कौन कहता है ऐसा?

हमारे साहित्य सलाहकार. . .

वे भी तो लेखक ही होते हैं। वे क्यों कहते हैं ऐसा?

क्योंकि इससे उनका भी भला होता है। पहला पत्रम-पुष्पम् उन्हीं को मिलता है।

तो आप ऐसे सलाहकार क्यों रखते हैं?

रखने को तो दूसरों को रख लेंगे पर इन बेचारों का क्या होगा?

तो आप इनको अपना औजार बनाते हैं?

हम बनाते नहीं ये खुद बनते हैं. . .

एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं आप लोग. . .

अब जो कह लीजिए। लेकिन एक बात है, हम लोग यह सब बहुत 'विनोद भाव' से करते हैं। समझिये कि हमारा नजरिया यह होता है, लगे तो तीर, नहीं तो तुक्का। जो दे देते हैं, ले लेते हैं, आभार

मानकर यह कह कर कि आपने सहयोग किया, हम शुक्र गुजार हैं। अब कोशिश करेंगे कि आपकी किताब जल्द निकल जाए. . .

अब भी आप 'कोशिश करेंगे' ही कहते हैं?

क्या करें साहब। हमारा ढंग ही ऐसा है। आपसे तो इतना कह-बता रहे हैं। नहीं तो यह सब तो ट्रेड सीक्रेट है. . .खुलासा करने का नहीं है। इससे नुकसान होता है।

ऐसे दरियादिल लेखक आप लोगों को दलिद्दर प्रकाशक कहते हैं. . .

कहने में कुछ हर्ज नहीं है। वे हमारा दलिद्दर दूर करते रहें, तो हमें सब स्वीकार है।. . .लेखक को आप और कैसे-कैसे ठगते हैं?

निकालिये सौ का नोट. . .

सौ का नोट? किसलिए?

इसलिए कि आप मुझसे बहुत कुछ उगलवा चुके हैं. . .

इसके लिए पैसे?

क्यों? किस बात के पैसे नहीं लगते? बिना पैसे दिए कुछ होता है क्या?

चलिए आपका मुझ पर उधार रहा। आगे बताइए।

तो आप एक थम्स-अप मंगाइये कम से कम. . .

थम्स-अप? क्या यह आपका बहुत प्रिय पेय है? चलिए आपके लिए एक थम्स-अप मंगवा लेते हैं?

थम्स-अप आ गया तो उन्होंने उसे अपने स्कूटर की डिक्की में रख लिया. . .

यह क्या? आपने तो इसे डिक्की में रख लिया?

मैं तो समझे हुए था कि आप पिएंगे. . .

यदि पीनी होती तो क्या दो नहीं मंगवाता?

दो मंगवाते? वह क्यों?

एक आपके लिए, और एक अपने लिए. . .

तो यह एक किसके लिए है?

आप भानुप्रताप जी को तो जानते होंगे. . .

वही जो प्रसिद्ध कथाकार हैं. . .

हां, वही।

आपने तो उनकी कई किताबें छापी हैं। वे तो बहुत लोकप्रिय लेखक हैं. . .तो क्या यह थम्स-अप उन्हीं के लिए है?

बिल्कुल ठीक समझे आप. . .

अजीब ढंग है आपका? अपने प्रिय लेखक के लिए एक थम्स-अप? और कुछ नहीं? और वह भी अपने पैसे से नहीं. . .

मान गए। भई वाह. . .

अभी कहां। मानेंगे तो आप बाद में . . . खुलासा होने पर।

खुलासा होने पर? क्या मतलब? कुछ घपला है क्या?

हां साहब, भानु प्रताप जी बहुत दिनों से रायल्टी का हिसाब करने को कह रहे हैं, भुगतान की बात भी करते हैं. . .

तो कर दीजिए। आपने तो उनकी दो किताबें छापी हैं। वे काफी बिक रही हैं।

मगर मैंने उनसे किताबें छापने के लिए पैसे नहीं लिए थे।

वे तो स्थापित लेखक हैं? वे आपको पैसे क्यों देते?

चलिए, उन्हें नहीं देना था, नहीं दिया। फिर मुझसे क्यों मांगते हैं?. . .

आप उनके छपासक हैं, उनकी किताबें छापी हैं। किताबें बिकती हैं। आपको उन्हें पैसे देने चाहिए।

इसलिए आपसे यह थम्स-अप मंगवाया हैं. . .

तो क्या आप एक थम्स-अप देकर उन्हें संतुष्ट करना चाहते हैं?

आप बड़े भोले हैं। अपने को लेखक और लेखक का संगी-साथी कहते हैं। पर कुछ जानते-समझते नहीं।

तो आप समझा कर कहिए न?

यह थम्स-अप उनके पीने के लिए नहीं भेजूंगा. . .

तो किसलिए भेजेंगे?

आप अब भी नहीं समझे? धन्य हैं आप! यह एक संकेत है।

अब मैं समझा। कितना घुटा हुआ है यह शख्स। तो आप उन्हें अंगूठा दिखा रहे हैं।

अंगूठा नहीं, थम्स-अप। वे खिल-खिलाकर हंस पड़े।

मैंने सोचा कितने शातिर मगरमच्छ लोग पड़े हैं छपास-जगत में।

ऋतंवरा, गोड्डा-814133
झारखंड

. . . पृष्ठ 32 का शेष

अबाध रूप से अपनी विजय-यात्रा जारी रखी। वह कंधों पर चढ़ा। गर्दन पर रेंगा। फिर फटाक से मेरी नाक तक जा पहुंचा। मैं अब घबरा उठा। मैंने अपने हाथों को ऊपर लाने की लाख कोशिश की। पर मेरे हाथ बोझिल हो गए। अंगुलियों ने साथ देने से इंकार कर दिया। मैंने सोचा कि करवटें लेकर इसे मुंह से नीचे गिरा दूं। पर वह भी नहीं हुआ। शरीर ने मेरा साथ नहीं दिया। मैं करवट नहीं ले सका। वह नथुनों तक पहुंच गया।

मैंने अंतिम कोशिश की। मैंने सांस को रोक लिया। नाक को भींच लिया। कब तक इस हालत में रहता। मेरा दम घुटने लगा। सांस लेने के लिए मैं विवश हो गया। जैसे ही पहली सांस ली, वह खटाक से नाक के द्वार से ऊपर चढ़ गया। उसने सबसे पहले मेरे दिमाग पर हमला बोला। दिमाग के तंतुओं को छिन्न-भिन्न कर दिया। मेरी इंद्रियों ने काम करना बंद कर दिया। मैं शरीर के किसी भी क्षेत्र में अपने आदेश नहीं भेज सकता था। ऊपर से नीचे तक संचार व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। मेरा डिफेंस सिस्टम चरमरा गया।

वह तेजी के साथ उतरा। दिमाग से आत्मा में पहुंचा। उसने आत्मा को छलनी कर दिया। वैसे मेरी आत्मा का तिलचट्टे के साथ काफी देर तक द्वंद्व हुआ। आत्मा कब तक साथ देती? तिलचट्टे का हर क्षेत्र में कब्जा हो चुका था। अब उसके आदेश पर मेरे पैर हिलते, हाथ ऊपर उठते, सांसे चलतीं, जुबान खुलती, दिमाग हरकत में आता, शब्द निकलते और आंखें इधर-उधर घूमतीं। जब उसका मुझ पर संपूर्ण कब्जा हो गया तो उसने अविलंब मेरी आत्मा को मेरी देह से बाहर निकालकर कूड़ेदान में फेंक दिया। जहां मैं प्रेत-योनि को प्राप्त हो गया। और. . .और इस तिलचट्टे को मनुष्य योनि मिल गई। अब मैं मानव खोल में पुनर्प्रवेश के लिए मुक्ति-अनुष्ठान की सोच रहा हूं। तिलचट्टे को मेरे इस खतरनाक इरादे की भनक न लगने पाए, इसकी सावधानी जरूर ध्यान में रखूंगा। खबर है, मेरे दूसरे प्रेतबंधु भी ऐसा ही सोचते हैं।

(काफ्का की आत्मा से क्षमा के साथ)

कैलाश मण्डलेकर

वासंती गोष्ठी और कविता का कुष्ठ

यह रचना मुझे इसलिए पसंद है कि यह साहित्यिक गोष्ठियों पर है। साहित्य में गोष्ठियों की पुरातन परंपरा है। यह परंपरा इतनी लोकप्रिय है कि साहित्य हो या न हो। गोष्ठियां जरूर होती हैं। कई बार तो गाड़ी लेट होने पर चतुर कवि रेलवे के माल गोदाम में गोष्ठियां जुटा लेते हैं। मैंने अपनी तरफ से कभी जमीन से जुड़ने की कोशिश नहीं की। जमीन से जुड़ा लेखक कैसा होता है, मैं नहीं जानता। हां सुना जरूर है कि लेखक ज़मीन से जुड़े होते हैं। कुछ के बारे में यह जुमला इतनी बार प्रयुक्त होता है कि जमीन से जुड़ना उनकी मजबूरी हो जाती है। कुछ सहज जुड़ जाते हैं। अधिकांश को हिंदी आलोचना की झूठी और चापलूस ठकुर सुहाती जमीन और आसमान दोनों से जोड़ देती है। लेखक सोचता है कि जुड़ने के लिए सब हजारों एकड़ जमीन पड़ी है तो जुड़ जाओ अपने बाप का क्या जाता है। समझदार लेखक समय रहते जमीन से जुड़ जाते हैं। क्या पता कल कोई कालोनाइजर आकर प्लाट काट लें। आमीन!

उस शहर में वह कविता की शाम थी। शाम तो खैर वह वैसी ही थी जैसी और शामें षड्यंत्रपूर्वक कविता की शाम कहा था। निमंत्रण पत्र में ऐसा ही छपा था। 'वसंत ऋतु और कविता की शाम' कुछ मिलाकर यह एक काव्यगोष्ठी का निमंत्रण था जो कि शाम में आयोजित थी तथा वसंत ऋतु के निमित्त उसे आयोजित करना जरूरी जैसा था।

जो लोग कवि-सम्मेलनों में नहीं बुलाए जाते वे काव्य गोष्ठियां करते हैं, तथा इन गोष्ठियों में उसी किस्म की हरकते करते हैं जो कवि-सम्मेलनों में होती है। काव्य गोष्ठियां प्राय: दस बाई दस के कमरे में होती हैं, जिसमें सात-आठ स्थानीय कवि मिलकर अपनी-अपनी डायरियों में लिखी कविताएं पढ़ते हैं। इन गोष्ठियों में अलग से कोई श्रोता नहीं होता। गोष्ठी में आमंत्रित कवि ही श्रोता की भूमिका का भी निर्वाह करते हैं। ये लोग चूंकि परंपरागत श्रोता नहीं होते इसलिए उन्हें कविता सुनने में बोरियत होती है। तथा वे अपनी बारी की प्रतीक्षा करते रहते हैं। ये लोग गोष्ठी में पूरे समय बेचैन रहते हैं तथा कविता सुनाने वाले कवि की तरफ नफरत से देखते रहते हैं। इस तरह देखा जाए तो ये सारे कवि एक-दूसरे से नफरत करते हैं।

काव्य गोष्ठियों में प्राय: सीनियर और जमें हुए कवि आने में हिचकिचाते हैं। कारण कि इस किस्म की सैकड़ों गोष्ठियां वे पहले ही निपटा चुके होते हैं, तथा कई तरह के पुरस्कारों और सम्मानों से नवाजे जा चुके हाते हैं। उन्हें ऐसी गोष्ठी में जाकर 'शाम' खराब करना अखरता है। इन्हें बुलाने के लिए गोष्ठी को उनके सम्मान में आयोजित करनी होती है। गोष्ठी आयोजित करने वाले दो-तीन दिन पहले से ही यह प्रचारित करना शुरू कर दे हैं कि नगर के वरिष्ठ कवि फलाने जी के सम्मान में यह गोष्ठी आयोजित है। इस मिथ्या प्रचार के भपके में फलानेजी झक मारकर गोष्ठी में आ जाते हैं। जिस व्यक्ति के घर यह गोष्ठी आयोजित की जाती है वह भी कवि ही होता है। तथा यदि वह साल में चार-पांच बार ऐसी गोष्ठी आयोजित करले तो धीरे-धीरे उसकी पत्नी भी कविता लिखने लगती है, मैं ऐसे दो तीन लोगों को जानता हूं जिनकी पत्नियां घरेलू गोष्ठियों के कारण कवयित्री हो गई। जिस कवि के घर गोष्ठी आयोजित होती है उसे नमकीन बिस्किट और चाय आदि का इंतेजाम करना पड़ता है। यह काव्य गोष्ठियों के लिए एक अलिखित संविधान जैसा है। यदि कवि पत्नी मंगोड़े बनाने में प्रवीण हो तो मंगोड़ों की भी व्यवस्था हो जाती है। गोष्ठी में आए ज्यादातर कवियों का ध्यान मंगोड़ों बनानी वाली पर रहता है। 'भाभी जी आप कितने बढ़िया मंगोड़े बनाती हैं– 'इत्यादि। मेजबान कवि पत्नी नई साड़ी पहनती है तथा बच्चों को भी नई ड्रेस पहनाती है ताकि कवि लोगों पर अच्छा इम्प्रेशन गिरे। 'चुन्नु फटाफट नहा लो– आज काव्य गोष्ठी है।'

कविगोष्ठी के शुरू होते के पहले अथवा बाद में अक्सर घरेलू किस्म की चर्चाएं होती हैं। बच्चों की पढ़ाई लिखाई, शादी नौकरी आदि को लेकर चिंताएं व्यक्त की जाती हैं।

'हां जी हमारे बिन्नू का बी.ई हो गया है।'

जी हां बिट्टी के लिए दमोह में लड़का देखा है। अब देखिए, क्या होता है।' या फिर 'नर्मदा विहार कॉलोनी में प्लाट कट रहे हैं, तुम भी देख लो ना गिरीमोहनजी।'

यदि गोष्ठी के चार छ: रोज पहले किसी बड़े साहित्यकार का निधन हो जाए तो उसकी भी चर्चा होती है जैसे– 'राम सजीवन जी नहीं रहे, बड़ा दुखद निधन हुआ।' गोष्ठी में एकाध कवि ऐसा भी रहता है जिसके राम सजीवन जी के निकट के संबंध रहे होते हैं। वह राम सजीवन जी के निधन को लेकर अपेक्षाकृत ज्यादा उदास हो जाता है तथा संस्मरण सुनाने की मुद्रा धारण कर लेता है। बाकी के कवि इसलिए उदास हो जाते हैं कि उनके संबंध राम सजीवन जी से नहीं थे।

मेजबान कवि का यह भी कर्तव्य होता है कि वह गोष्ठी की रपट अखबारों में भिजवाए, जिसमें इस बात का जिक्र हो कि उक्त गोष्ठी के कारण शहर का साहित्यिक और सांस्कृतिक वातावरण काफी सुधरा है और उसका श्रेय अमुक-अमुक कवियों को जाता है जिन्होंने इस गोष्ठी में शिरकत की। इस प्रकार की रपट जब अखबारों में छपती है तो कतिपय कवि उसे काटकर अपनी डायरी में चिपका लेते हैं ताकि वक्त जरूरत काम आए।

अपने शहर की काव्य गोष्ठियों में मैं भी जाता हूं लेकिन मैं ऋतुओं के मामले में

अनाड़ी हूं। मुझे वसंत ऋतु का पता नहीं रहा कब आती है, कब चली जाती है। जब यार लोग वसंत पर कविता ठोक रहे होते हैं, तब मैं अपने घर की छत पर खड़े होकर प्रायः उस दिशा की ओर देखता रहता हूं। जिधर सूरज डूबता है अथवा डूबने के बारे मेमं विचार कर रहा होता है। ऐसा मैं किसी दार्शनिक विवाश्ता अथवा विचार मंथन आदि के लिए नहीं करता बल्कि इसलिए करता हूं कि उस दिशा की तरफ एक पॉश कालोनी विकसित हो रही है जहां खूबसूरत बंग्लों के समक्ष गुलमोहर के पेड़ लगे हैं। इन पेड़ों को देखकर मेरा ऋतुबोध जाग्रत होता है। ये गुलमोहर वैसे तो पर्यावरण की चिंता में लगाए गए हैं लेकिन इसमें भी एक बदमाशी है। बीच में एक दौर ऐसा आया था जब सरकारी तौर पर पर्यावरण का हल्ला मचाया गया। इस हल्ले का नतीजा यह हुआ कि लोगों ने अपने घर के सामने पेड़ लगाना शुरू कर दिए। पेड़ लगाने वालों ने ऐसी चतुराई दिखाई कि अपनी बाउंड्रीवाल से लगी हुई जो सरकारी जमीन थी उस पर गुलमोहर उगाकर बगीचा विकसित कर लिया और पर्यावरण के बहाने सारी जमीन पर अतिक्रमण कर लिया। अब सारे दिन इन पेड़ों से लाल फूल टपकते हैं और पांवों क सारी धरती गुलमोहर से भर जाती है। शाम में जब इन घरों की गृहणियां, शॉपिंग कॉम्प्लैक्स से खरीदी गई खूबसूरत झाडू से गुलमोहर के फूल समेटती है तो मौसम रंगीन हो उठता है। दुष्यंत कुमार ने कहा है कि–

'जी ओ तो अपने बगीचे में गुलमोहर तले,
मरो तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए।'

वही वाली बात कि जो कुछ करना है गुलमोहर के लिए करो और इस कार्यक्रम को इतनी तबीयत से करो कि क्या गुलमोहन और क्या सरकारी जमीन सब कुछ हड़प लो। मैं कॉलोनी के गुल मोहर देखकर कविता करने के बारे में सोचता हूं और वसंत ऋतु निकल जाती है।

दरअसल वसंत ऋतु के कुछ स्थाई प्रतीक हैं जो वर्षों से जनमानस में स्थापित हो चुके हैं। जैसे आम्रकुंज हो। कोयल बोलतती हो टेसू फूल चुके हों और सारा वातावरण बिना कुछ किए धरे एकदम वल्ले-वल्ले टाइप का हो। पुराने कवि इन प्रतीकों को कविता में घुसेड़कर ऐसे छंद बनाते थे कि तबीयत बाग-बाग हो जाती थी। अब ये प्रतीक नहीं बचे, और बचे भी हैं तो अपने मौलिक गुणधर्मों को छोड़ चुके हैं, लेकिन अतीतजीवी इन्हें पकड़कर बैठे हैं। कबीर ने कहा है– 'खांखर भए पलाश' खांखर यानि निष्पत्र अर्थात कंगाल। हम ऋतुओं के मामले में कंगाल हो चुके हैं। हमारा ऋतुबोध वित्तमंत्री के बजट भाषण से निर्धारित होता है। गैस के सिलेण्डर के दाम बढ़ रहे हैं और इनकमटैक्स कटौती रुकने का नाम नहीं लेती। वसंत से रोमांच तो होता है पर चिदम्बरम की हंसी भयभीत कर देती है।

बहरहाल जिस वासंतिक काव्य गोष्ठी का जिक्र मैंने ऊपर किया (और हो सकता है नीचे भी करूं) वह एक उजड़े हुए आम्रकुंज में आयोजित थी जो शहर से 10-12 मील दूर एक खंडित फार्म हाउस के निकट था। इस फार्म हाउस में एक पुराना कुंआ था जो इतना गहरा था कि झांकने वाले को आत्महत्या के लिए प्रेरित करता था। आम्रकुंज में तीन चार आम के पुराने पेड़ लगे थे जिनके पत्तों से भुतहा खड़खड़ाहट होती थी। इन झाड़ों पर कुछ चमगादड़ लटककर वसंत की अगवानी कर रहे थें। हम चार-पांच कवि थे, जो कुष्ठ उन्मूलन वाली जीप में बैठकर इस गोष्ठी में शामिल हुए। कुष्ठ उन्मूलन वाली जीप डॉ. धूमकेतु की थी, वे भी कवि थे और चिकित्सा विभाग से जुड़े थे तथा फिलहाल कुष्ठ उन्मूलन का काम देख रहे थे। लेकिन देखा जाए तो उन्हें कुष्ठ उन्मूलन में कोई रूचि नहीं थी। वे कुष्ठ रोगी को देखना भी पसंद नहीं करते थे। लेकिन यदि उन्हें कोई सुंदर-सी कवयित्री दिख जाए तो वे जीप सहित उसके पीछे लग जाते थे। डॉ. धूमकेतु की समस्या यह है कि उनकी पत्नी फारेस्ट विभाग में पदस्थ है और शहर के साठ-सत्तर कि.मी. दूर एक छोटे से कस्बे में स्थित रेंज ऑफिस में नौकरी करती है। मित्र की इच्छा है कि पत्नी का तबादला इसी शहर में हो जाए। लेकिन इच्छा से कुछ नहीं होता। वसंत ऋतु आती और चुपचाप चली जाती क्योंकि पति और पत्नी के बीच प्रशासन और राजनीति की इतनी लंबी गटर है कि उसे लांघ पाना मुश्किल हो रहा है। वास्तविक काव्य गोष्ठी इस गटर पर कविता का सेतु बनाने के लिए आयोजित की गई थी।

गोष्ठी जिनके मुख्य आतिथ्य मे होनी थी, उनका नाम सुराना था। वे कवि और विचारक तो खैर थे ही, असल बात यह थी कि वे मोहकमा-ए-जंगलात अर्थात फारेस्ट विभाग में आला आफिसर थे। उन्होंने गोष्ठी का मुख्य आतिथ्य स्वीकार करके हम सबको कृतार्थ किया था।

वह केवल काव्य गोष्ठी ही नहीं बल्कि विचार गोष्ठी भी थी, जिसका विषय था, साहित्य में जनव्यापी स्वरूप पर बाजार का हस्तक्षेप। इस विषय पर अनेक विद्वानों ने अपने विचार रखें। एक विद्वान ने कहा कि साहित्य का इस कदर बाजारीकरण हो रहा है कि कविता लिखने के बजाए कवि को चाट का ठेला लगा लेना चाहिए क्योंकि चाट के ठेले का सबसे बड़ा फायदा यह होता है कि उससे हाजमा दुरस्त हो जाता है जोकि कविता से हर्गिज संभव नहीं है। एक अन्य विद्वान ने बताया कि, बाजार हमारे घरों में घुस रहा है जबकि घरों में साहित्य और संस्कृति आदि को घुसना तो बहरहाल ठीक है पर आजकल मौके का फायदा उठाकर कुछ साहित्यकार भी लोगों के घरों में घुस जाते हैं जो कि ठीक नहीं है।

सुराना जी के विचारों को सब लोगों ने काफी गंभीरता से लिया। उनके विचारों में एक अजीब-सा बीहड़ था और कविताओं में उस जंगल का सूनापन था, जिस जंगल के वे अधिकारी कहे जाते थे। हरियाली उनके काव्य गोष्ठी के उपरांत सुरानाजी के सम्मान में एक और गोष्ठी हुई जिसका संबंध खाने-पीने से था। खाने में मुर्गे थे और पीने के लिए महुए की देशी शराब जो सुराना जी को शुरू से पंसद थी। फार्म हाउस की खंडित दीवारों पर वसंत उतर रहा था इसी दौरान गोष्ठी के प्रमुख आयोजक डॉ. धूमकेतु ने अपनी पत्नी की विनय पत्रिका सुरानाजी के सामने प्रस्तुत कर दी। जिसे उन्होंने स्वीकार किया और हफ्तेभर मेमं 'भाभी जी का काम होने जाने का आश्वासन दे दिया। वसंत गोष्ठी निर्विघ्न संपन्न हो चुकी थी और आम के झाड़ पर उल्टे लटके हुए चमगादड़ चिंचियाने लगे थे। हम कुष्ठ उन्मूलन की जीप में बैठकर वापस लौट रहे थे।

38 नाका जसवाड़ रोड, खंडवा

जवाहर चौधरी

कामरेड की लंगोट

वो कामरेड हैं या नहीं हैं इस मुद्दे पर विद्वानों और जानकारों में लंबे समय से मतभेद चले आ रहे हैं। लेकिन बावजूद मतभेदों और विरोधों के जैसे तमाम चीजें बनी रहतीं हैं वैसे ही उनकी कामरेडियत बनी हुई है। अब बनी हुई है तो बनी हुई है, सैंकड़ों की बनी रहती है। कोई नई बात तो है नही कि मीडिया के पेट में मरोड पड़े। अपने यहां राजा है, कोई राजकुमार है तो कोई प्रिंस पुकारा जाता है लेकिन क्या कोई उनका खानदान खंगालता है! बहरहाल, आप भी हमारे कामरेड को कामरेड ही मान लें, इसमें आपका भी कुछ नहीं जाएगा और मेरा भी।

हां तो कामरेड को अचानक अमेरिका जाने का मौका मिल गया। वैसे कामरेड कभी खुश होते नहीं हैं लेकिन वे हुए, बोले देश ने अब काफी तरक्की कर ली है और कामरेड़ों तक को मौके मिलने लगेंगे। हमें इंतजार करना चाहिए। अमेरिका गरीबी से भले ही चिढ़ता हो पर गरीबों से नहीं। उसे पता है कि गरीब सबसे अच्छी प्रजा होते हैं यों देखा जाए तो उनमें बोलने की ताकत नहीं होती, लेकिन बोलना पड़े तो 'अन्नदाता की जय हो, माई-बाप अमर रहें, गॉड सेव द किंग' वगैरह ही बोलते हैं, और बहुत अच्छे से बोलते हैं। इसीलिए अमेरिका दुनियाभर के गरीबों की मदद करता है। एक रस्साकशी-सी चल रही है, दुनिया भर के लोग अमेरिका में घुसना चाहते हैं और अमेरिका पूरी दुनिया में। अधिक सफलता अमेरिका को ही मिल रही है।

आप लोग भी कहोगे कि अमेरिका की हॉके जा रहा है! बात तो कामरेड की हो रही थी। तो भईया, कामरेड बोले, 'यार बताना मत किसी को, अमेरिका जाने को मिल रहा है।. . .अमेरिका के सपने रोज आते हैं पर जाने के मौके बार-बार नहीं आते हैं।. . .यू नो. . .।

'दादा ये हुआ कैसे?' जिसे भी मौका मिलता है उससे यही पूछने का चलन है।

'भगवान ने सुन ली यार. . .समझो भाग्य से छींका टूट पड़ा।' कामरेड ने जेब में रखी डायरी से भगवान का चित्र निकालकर माथे पर लगाते हुए कहा।

'लेकिन अमेरिका को तो हम लोग कोसते हैं! विश्व का गुण्डा, दुनिया का दादा, ग्लोबल चौधरी वगैरह. . .!' हमने फटी आंखों से उन्हें देखते हुए पूछा।

'कहने का क्या है यार!. . .कहते तो हम भगवान को भी हैं लेकिन कोई देख नही रहा हो तब मंदिर भी जाते हैं पूरी श्रद्धा से। दूसरे शहर जाकर यज्ञ-अनुष्ठान सब करवाते ही हैं. . .फिर अमेरिका को लेकर क्या है! 'कामरेड ने पत्ते खोले।

'प्रतिबद्धता. . .! प्रतिबद्धता ब्रह्मचारी की लाल लंगोट है जिसे रोजाना धोकर बाहर रस्सी पर सुखाना काफी है ताकि लोग देख लें और मान लें कि बंदा ब्रह्मचारी यानी प्रतिबद्ध है। संसार में माना जाना महत्वपूर्ण है, होना नहीं। जो माने जाते हैं वही महान होते हैं, जो सिर्फ होते हैं उनका नाम नगर निगम के जन्म-मृत्यु रजिस्टर के अलावा कहीं दर्ज नहीं होता है।'

'ये क्या कह रहे हो कामरेड!. . .चलो माना. . .लेकिन तुम्हें पता है वो लोग हिन्दुस्तानियों को एयरपोर्ट पर ही नंगा करके देखते हैं. . .!' कामरेड की दलीलों से हम चौक रहे थे।

'नंगा करके देखते हैं?' इस बार कामरेड जरा-सा गंभीर हुए।

'देखेंगे क्या. . .शायद लंगोट ही।. . . वो भी सुना है उतरा लेते हैं।'

'फिर तो कोई दिक्कत नहीं है. . . लंगोट तो मैं यहीं छोड़ जाने वाला हूं बाहर रस्सी पर सूखती हुई. . .वैसे भी वहां लंगोट का क्या काम।'

'है क्यों नहीं! लंगोट अमेरिका का राष्ट्रीय परिधान है। वहां आदमी-औरतों जो पहनते हैं वो लंगोट से बड़ा शायद ही होता है।'

'कन्फ्यूज मत करो यार, वो उनकी लंगोट है. . .प्रगति की लंगोट। हमारी लंगोट हमारी है, प्रतिबद्धता की लाल लंगोट। जब झण्डों की कमी पड़ती है तो हम इनका भी इस्तेमाल करते हैं।' कामरेड ने लगभग डांटते हुए जवाब दिया।

'सुना है वो हर हिन्दुस्तानी को एक्सरे मशीन के आगे भी खड़ा करते हैं।'

'तो क्या हुआ यार!. . .गरीब देश से कोई आता है तो यह देखना जरूरी हो जाता है कि कहीं टीबी-ईबी वाला तो नहीं है।'

'वो ये देखते हैं कि इसके पेट में क्या है. . .।'

'फिर तो भूख देखते होंगे. . .अमीरों के देश में जाओ तो हमेशा खा-पीकर जाना चाहिए।'

'हमारे मंत्री तो भरे पेट होते हैं. . .उन्हें भी नंगा करते हैं, एक्सरे होता है।'

'उन्हें मंत्रीजी, . . .बाल की खाल मत निकालिए। सारे मंत्री बुरे नहीं होते हैं कुछ मौका देने वाले भी होते हैं।'

'अच्छा कामरेड, आपकी दाढ़ी का क्या होगा?'

'वहीं जो लंगोट का होगा. . .उसे भी यहीं छोड़ जाउंगा. . .डस्टबिन में।'

एक दिन कामरेड सचमुच चले गए। सुना है अपने साथ सूट-टाई, परफ्यूम, पाउडर-क्रीम, शेविंग किट, कुछ आयुर्वेदिक नुस्खे और स्थानीय उद्योगपतियों द्वारा दिए गए डालर्स ले गए हैं।

घर के बाहर रस्सी पर उनका सूखा हुआ लाल लंगोट लगातार सूख रहा है।

16 कौ

इंदौ

श्रवण कुमार उर्मलिया

एक और कीचड़जीवी

पहले बड़े साहब को हम सब इन्सानी नस्ल का समझते थे, पर जब उनकी नस्ल के बारे में कोई शक नहीं रह गया है। बहुत दिनों तक वे अपनी असली नस्ल को इन्सानी खोल में छिपाए हुए थे। गहन छानबीन, विस्तृत अन्वेषण और वांछित तिकड़मों के बाद हम लोग उनकी नैसर्गिक नस्ल को उनके खोल से बाहर निकालने में सफ़ल हुए हैं। शुरू-शुरू में जब बड़े साहब आए थे तो निखालिस इन्सानी नस्ल के लगते थे। बहुत हंसमुख, मिलनसार और हमेशा दूसरो की मदद को तत्पर। जब वे दफ्तर के अहाते में प्रवेश करते, तो गाड़ी से उतरने के बाद थोड़ी देर इंतजार करते। फिर वे चारों ओर अपनी कृपादृष्टि डाल कर पूरे वातावरण को कृतार्थ करते जैसे कोई संत अपनी आशीष लुटा रहा हो। तब तक दो सिक्युरिटीगार्ड भागते हुए आते और उन्हें लम्बा सलाम ठोंकते हुए उनके अगल बगल खड़े हो जाते। खाकी वार्दी वाले आस पास हों तो उनसे घिरा हुआ सख्स वैसे ही महिमामंडित हो जाता है। हमारे बड़े साहब भी दो सिक्युरिटी गार्डो की खाड़ी महिमा लादे दफ्तर की ओर चल पड़ते। दूर से देखने पर ऐसा लगता जैसे दो पुलिस वाले किसी अपराधी को पकड़े लिए जा रहे हों। अपने दफ्तर में पहुंचते ही वे लोगों को अपनी महिमा के ढेले मरना शुरू कर देते। ऐसा लगने लगता जैसे अंधों में काना राजा आ गया हो। अपनी महिमा से आतंकित करने के लिए वे जोर-जोर से मोबाइल या फोन पर बातें करते ताकि आस-पास उपस्थित लोग सुन सकें। फोन पर इनके वार्तालाप को सन कर कई अनुमान लगाए जाते। कोई कहता- 'यार, बड़े साहब इतने बड़े-बड़े लोगो से बाते करते रहते हैं। लगता है जैसे इनके सुझाव के बिना लोग छींकते भी नहीं' दूसरा कहता- 'हा यार! मुझे तो अब लगने लगा है जैसे भारतवर्ष भी हमारे बड़े साहब के मार्गदर्शन में ऊदर्वगमन कर रहा है।' तीसरा कहता- 'मुझे तो, यार ये कोई प्रापर्टी डीलर से लगते हैं जो हर समय फोन पर कोई न कोई सौदा करते रहते हैं।' चौथा कहता- 'कुछ भी कहो, दोस्तो, पर मुझे तो ये एक सधो हुए दलाल से लगते हैं। अनका चेहरा, हावभाव और यहां तक कि इनकी आदतें भी कमीशन-एजेंट जैसी लगती है।' पांचवा कहता- 'भाइयो, मुझे तो ये कोई लफाड़िया से लगते हैं जो इधर की उधर और उधर की इधर करते रहते हैं। बड़ी सफाई से इन्होंने अपनी बेईमानी पर ईमान-धरम का कवच चढ़ा रखा है।' बड़े साहब की महिमा से आतंकित सभी मातहत भीतर ही भीतर उानकी असलियत को टटोलते रहते, पर दफ्तर की आचार संहिता के अनुसार सामने साहब की चापलूसी करते- 'आप कितना बोझ अपने कंधों पर उठाए हुए हैं, सर इतना बोझ तो बोझ उठाने वाला प्राणी भी नहीं उठा सकता। आप धान्य हैं, सरजी!' सुन कर बड़े साहब गद्गद् होते और जुमला उछालते- 'अभी आप लोग हमें जानते नहीं हैं।' कुछ और महिमा के कीटाणु उनकी काया से चिपक जाते। चमचागिरी में पारंगत मातहत साहबजी को साष्टांग दण्डवत करते हुए तारीफों के पुल बांधते- 'आपकी प्राण शक्ति कितनी प्रबल है, सरजी! सूंघाकर ही बता देते हैं कि समस्या क्या है और उसका निदान क्या है। इस मामले में तो आपने उस प्राणी को भी मात कर दिया है जिसके सुंघने की क्षमता को उपयोग पुलिसवाले भी करते हैं। आप जैसी महान प्रतिभा को हमारा नमन है, सरजी!' ऐसे कर्णप्रिय वचन श्रवण कर बड़े साहब खुशी से छलकते हुए कहते- 'अभी लोग हमें जानते ही कितना है?' कुछ और महिमा के कॉकरोच उनके निन्दनीय अस्तित्व पर रेंगने लगते। दोगली प्रवृत्ति की जन्मजात प्रतिभा के मालिक मातहत साहब की प्रदाक्षिणा कर स्तुति करते- 'साहब जी, आपके साथ काम करते हुए हम तो कृतार्थ हो गए। कितनी सरलता और सहजता टपकती है आपके चेहरे से कि लगता ही नहीं कि छल, कपट और प्रपंच से आपका दूर-दूर तक भी कोई संबंधा होगा। इतनी सफाई से तो वह चौपाया भी खुद को नहीं छिपा सकता, हालांकि लोग उसे 'रंगा हुआ होशियार कहते हैं।' गद्गद् होते हुए साहबजी गर्व से कह उठते- 'अभी आप लोगों की कुठित बुद्धि ने मुझे समझा ही कितना है?' कहकर वे अपने ऊपर महिमा की छिपलियों और बड़प्पन के चमगादड़ों को चढ़ा लेते। धुर्तता के गुणों से सराबोर सहकर्मी बड़े साहब की प्रशंसा में कसीदे पढ़ते- 'हुजुर, वन्दापरवर, आपके गुणों के तो हम कायल हैं, जिनके सामने इस अक्षर संसार के सभी दुर्गुण भी शरमा जाएं। आप बड़ी विनम्रता से स्वीकार करते हैं और प्राय: कहते भी रहते हैं कि 'मो सम कौन कुटिल, खल, और कामी ओहदे में आपसे बहुत छोटे हैं। साधुावाद है आपकी इस प्रतिभा को!'

बड़े साहब स्वाभिमान से भरकर कहते- 'अभी आप लोगों की की छुद्र समझ ने मुझे आजमाया ही कितना है? अभी आप लोग हमें जानते नहीं हैं।' कहकर वे गरिमा के विषधार और स्वनामधन्य खुदाई के नाग अपने आस्तीन में पाल लेते। इस तरह कुछ ही दिनों में बड़े साहब ने अपने ऊपर बहुत सारे महिमारूपी गिद्धों को स्थापित कर लिया, तो दफ़्तर में कुछ लोगों को वे गिद्ध चुभने लगे। उन लोगों ने एक गिद्ध-उन्मूलन सभा की, जिसमें एक ने कहा- 'दोस्तो, अभी आप लोग हमें जानते नहीं हैं।' कह-कहकर इस नर-कंकाल ने हमारी आत्माओं को पका डाला है। आखिर यह चीज़ क्या है, यारो?'

जलकर खाक होते हुए एक दूसरे ने कहा- 'हां साथियो, लगता है जैसे जन्म-जन्मांतरों से यह नरपिशाच हमारी छातियों

में सांप की तरह लोट रहा है। हमें कुछ न कुछ करना ही चाहिए ताकि इस नरपिशाच का पिण्डदान किया जा सके।'

एक अनुभवी बुजुर्ग ने सलाह दी– 'भेड़िए की कारगुजारियों का पता लगाने के लिए हमें जंगल की खाक छाननी पड़ेगी। इसलिए खुराफाती दिमाग वाले लोगों का एक खोजी दस्ता बनाना पड़ेगा। जैसा कि पुराने ज़माने में होता था, इस दस्ते के सदस्य चारों दिशाओं में चले जाएंगे और एक महीने बाद सभी अपनी रिपोर्ट पेश करेंगे।'

इस तरह बड़े साहब की महिमा के चीरहरण के लिए कुशल दुशासनों का दल चारों दिशाओं में फैल गया।

गहन छानबीन के बाद एक महीने बाद जो रिपोर्टें दी गईं, उनका लेखा जोखा कुछ इस तरह है–

रिपोर्ट संख्या-1 : 'सुबह बच्चों को स्कूल जाने के लिए तैयार करता है, अपनी ही महिमा के नीचे दबा हुआ यह इंसान। बच्चों का नाश्ता-पानी तैयार कर उन्हें स्कूल तक छोड़ने जाता है। फिर तैयार होकर अपनी बीवी के बिस्तर छोड़ने से पहले घर छोड़ देता है। पता यह चला है कि इसकी बीवी ने इसको निर्देश दे रखा है, जिसके तहत नौकरानी के घर में घुसने से पहले इसे किसी भी हालत में घर छोड़ देना चाहिए। कहते हैं कि नौकरानी को देखते ही यह भी उसी नस्ल का बन जाता है। कई बार यह इस वजह से पिट भी चुका है।

देर रात यह चोरों की तरह मुहल्ले में घुसता है और कुत्ते इस पर भूंकते हैं, इसे रगेदते हैं, पता नहीं क्यों, कुत्ते इसे देखते ही अपना आपा खो बैठते हैं। अपने ही घर में यह महिमाशाली ऐसे घुसता है जैसे पूरे मुहल्लेवालों से इसने कर्ज ले रखा हो।'

रिपोर्ट संख्या-2 : 'सुबह साढ़े सात बजे तक यह खानदानी खानसामे की तरह महामहिम के घर पहुंच जाता है। इसके इंतजार में महामहिम कान पर जनेऊ चढ़ाए और अपने पेट पर हाथ फेरते हुए इधर से उधर परेशान से भटकते रहते हैं। इसे देखते ही महामहिम संडास में घुस जाते हैं। यह संडास के बाहर प्रतीक्षा करता है। थोड़ी देर बाद अपने चेहरे पर तृप्ति लिए महामहिम बाहर निकलते हैं यह तुरंत संडास में घुसकर फ्लश चलाता है और सफाई करता है। बाहर निकलकर महामहिम से पूछता है– 'सर जी! नाश्ते मे क्या लेंगे?' महामहिम जवाब देते हैं– 'अरे बड़बोंग, हम नाश्ते में नाश्ता लेंगे, और क्या! बुड़बक कहीं का।' कहकर वे 'हो! हो!! हो!!!' हंसने लगते हैं। यह झेंपता हुआ महिमा का एप्रन पहनकर किचेन में घुस जाता है।

इसके हाथों का बना नाश्ता कर तृप्त होने के बाद महामहिम प्रसन्नता व्यक्त करते हैं– 'इतना बढ़िया पाव-भाजी बनाना कहां से सीखा रे, बुड़बक?' यह निहाल होकर उनके द्वारा की गई प्रशंसा की महिमा ओढ़कर विशिष्ट बन जाता है। यह इतनी दूर-दृष्टि वाला है कि संडास के रासते महामहिम से महिमा बटोर रहा है। महामहिम भी इस पर इतने मेहरबान हैं कि इसे देखे बिना उनको हाजत की जरूरत ही महसूस नहीं होती। सुना है कान्सरिपेशन के दिनों में महामहिम इसकी तस्वीर लेकर संडासमय होते हैं।'

रिपोर्ट संख्या 3 : 'छोटे महामहिम की कृपादृष्टि प्राप्त करने के लिए यह बड़े महामहिम के घर से निकलकर सीधा सब्जी बाजार जाता है। सब्जी लाकर छोटे महामहिम की डाढ़ी बनाता है, उनके शरीर में तेल की मालिश करता है और अपने चापलूसी एवं चुगलखोरी के गुणों का सदुपयोग कर उनके कान भरता है। वहां जूते पॉलिश करने से लेकर छोटे महामहिम के कुत्ते को पॉटी कराने तक का सभी काम यह पूरी ईमानदारी से करता है। कभी-कभी तो यह खुद भी उनका दूसरा कुत्ता लगने लगता है।

इस तरह इसने छोटे महामहिम के तलुवे चाट चाटकर महिमा बटोरी है। यह कहता फिरता है कि छोटे महामहिम इससे बहुत प्यार करते हैं। यह सही कहता है। जब छोटे महामहिम अपने कुत्ते से प्यार कर सकते हैं तो उनके तलुवे चाटने वाला यह तो एक इंसान है।'

रिपोर्ट संख्या 4 : 'दिन के बाकी हिस्सों में दफ्तर और दफ्तर से बाहर यह कई रोल निभाता है। अफसरशाही के रंगमंच पर यह कभी दलाल बन जाता है तो कभी कमीशन-एजेंट। कभी जोड़-तोड़ का नायक तो कभी साठ-गांठ का संयोजक। कभी कमीनेपन का प्रतिनिधि तो कभी नीचता का पथ-प्रदर्शक। कहते हैं कि जितनी भी सौदे बाजियां होती हैं उनका यह मसीहा है। दफ्तर-तंत्र में जितनी भी रिश्वतखोरियां होती हैं उनका यह पितामल समझा जाता है। यह इतना सिद्धहस्त है कि बड़ी-बड़ी डीले करवाता है और डकार तक नहीं लेता। कई लोगों ने तो घूस लेने के लिए इसे अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर रखा है।

कर्मों की तो बात ही क्या, कोई कुकर्म भी इससे नहीं छूटे हैं। इसने नीचे गिरने के जो भी मापदंड स्थापित किए हैं, उन्हें कोई छू भी नहीं सकता। इसकी ख्याति सुनकर सारे भेड़िए अपनी-अपनी मांदों में छिप गए हैं और सारे सियार जंगल भाग गए हैं। इस तरह नीचता, कपट, धूर्तता, कमीनेपन, नंगेपन औ रहर तरह के मान्य भ्रष्ट आचरण के द्वारा इसने स्वयं को महिमामंडित किया है।'

ये सारी रिपोर्टें गुप्त रूप से सार्वजनिक कर दी गईं तो लोगों की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएं सामने आईं।

– 'यारो, यह तो बहुत बड़ा जालसाज निकला। मौका लगे तो यह अपने बाप को भी बेच खाए।'

– 'खुद को इसने इतना नीचे गिरा लिया है कि अब और नीचे गिरने की गुंजाइश ही नहीं है।'

– 'इस महान देश में यह भ्रष्टाचार की औलादों का प्रतिनिधित्व करता सा महसूस होता है।'

– 'साथियो, इसने कमीनेपन की जिन ऊंचाइयों को छुआ है, उसे कोई और पा भी नहीं सकता।'

– 'दोस्तो, इसे देखकर ऐसा लगता है जैसे इंसानी जिस्म में एक कीचड़जीवी रह रहा हो।'

जितने मुंह, उतनी बातें, पर बड़े साहब घाघ हैं, बेशर्म हैं और नग्नता के आवरण में खुद को लपेटे हुए हैं। वे अब भी कहने से नहीं चूकते– 'अभी आप लोग हमें जानते ही नहीं हैं।'

ऐसे समय में सभी मातहत समवेत स्वरों में चिल्ला पड़ते हैं– 'हम आपको जब बहुत अच्छी तरह से जान गए हैं, सरजी!'

श्रवण कुमार उर्मलिया
19/207, शिवम् खंड
वसुन्धरा गाजियाबाद - 201012

सूरज प्रकाश

कैसे मिलती थी शराब अहमदाबाद में

मैं 1989 से 1995 लगभग 75 महीने अहमदाबाद में रहा। ज्यादातर अकेले ही रहना हुआ। बेशक मैं उस मायने में पियक्कड़ या शराबी नहीं माना जा सकता जिस मायने में यार लोग मिल बैठते ही बोतलें खोल कर बैठ जाते हैं। मैं ठहरा 9 से 5 वाली नौकरी वाला बंदा इसलिए मुंबई में आठ बरस बिताने के बाद और उससे पहले हैदराबाद और दिल्ली में कई बरस अकेले रहने के बावजूद मैं देर रात तक चलने वाली मुफत की या पैसे वाली पार्टियों में कम ही शामिल हो पाया। हमेशा कभी कभार वाला मामला रहा। लेकिन अहमदाबाद आने के बाद जब पता चला कि यहां तो दारूबंदी है और बंबई से दारू लाना खतरे से खाली नहीं तो तय कर ही लिया कि हम इस शहर में दारू मिलने के सारे अड्डों का पता लगायेंगे और अपना इंतज़ाम खुद ही करेंगे।

तब मैं नारणपुरा में रहता था। एक दिन खूब तेज़ बरसात हो रही थी कि मूड बन गया कि आज कुछ हो जाये। छतरी उठायी और चल पड़ा सड़क पार दो सौ गज दूर बने पान के खोखे की तरफ। छोटी सी लालटैन जलाये वह मेरे जैसे ग्राहक का ही इंतज़ार कर रहा था। जाते ही एक सिगरेट मांगी, सुलगायी और पैसे देते समय उसके सामने सवाल दाग ही दिया - दारू चाहिये। कहां मिलेगी।

वह चौंका, तुरंत बोला– मुझे क्या पता, कहां मिलेगी। वो उधर पूछो।

किधर पूछूं। मेरा अगला सवाल।

वो आगे चौराहे पर घड़े बेचने वाले की दुकान है। उधर मिलेगी।

मैं जिद पर आ गया। अब इस बरसात में वहां कहां जाऊं। कितना तो अंधेरा है और कीचड़ भी।

कितनी चाहिये, उसने मुझ पर तरस खाया।

क्वार्टर मिलेगी तो भी चलेगा। मैंने अपने पत्ते खोले।

तीस रुपये लगेंगे।

चलेगा।

निकालो और उधर खड़े हो जाओ। मैं हैरान कि इतनी जल्दी सौदा पट गया। मैंने पैसे थमाये, मुड़ने के लिए गर्दन मोड़ी, दो कदम ही चला कि उसकी आवाज़ आयी। ये लो। और व्हिस्की का क्वार्टर मेरे हाथ में था।

उस वक्त मैं किस रोमांच से गुज़रा होऊंगा, उसकी आप स्वयं कल्पना करें। और उस क्वार्टर ने मुझे कितनी सैकड़ों बोतलों का नशा दिया होगा, ये भी खुद ही कल्पना करें। ज्यादा मज़ा आयेगा।

अब तो सिलसिला ही चल निकला। झुटपुटा होते ही मैं अपनी यामाहा मोटर साइकिल उसके ठीये के पास खड़ी करता, उसे पैसे देता और दस मिनट बाद वापिस आता तो माल मेरी मोटरसाइकिल की डिक्की में रखा जा चुका होता।

एक बार जूनागढ़ से कथाकार शैलेश पंडित आये हुए थे तो प्रोग्राम बना। पान वाले को हाफ के पैसे दिये और जब वापिस आये तो उसने कहा कि आज फुल बाटल ले जाओ। बाकी पैसे बेशक बाद में दे देना। मैं हैरान। ये इतना उदार क्यों हो रहा है, आधे के बजाये पूरी आफॅर कर रहा है। बाद में उसने बताया था कि वह कई बार आधी रात को आ कर सप्लाई लेता है और बोतलें खोखे के पीछे जमीन में गाड़ कर देता है। आधी बोतल खोदने के बजाये पूरी हाथ में आ गयी तो वही सही।

इस तरीके से दारू लेते कुछ ही दिन बीते थे कि घर पर अखबार डालने वाला धर्मा एक दिन शाम को आया और बोला कि साब आप उस पान वाले से लेते हैं। घर तक लाने में रिस्क हो सकता है। मैं आपको घर पर ही सप्लाई कर दिया करूंगा। मैं हैरान, तो इसका मतलब हमारे मामले की खबर इसको भी है।

पूछा मैंने– लेकिन मैं तुम्हें ढूंढूंगा कहां, तो धर्मा ने कहा कि साब आप बाल्कनी में खड़े हो कर सामने सड़क पार देखें तो मैं आपको वहीं कहीं मिल जाऊंगा। आप बाल्कनी से भी इशारा करेंगे तो माल हाजिर हो जायेगा। बाद में धर्मा मेरे बहुत काम आया। फिलहाल एक और प्रसंग।

अब पान वाले की सप्लाई बंद और धर्मा की शुरू। कुछ ही दिन बीते थे और मुश्किल से उससे पांच सात बार ही खरीदी होगी कि मेरे घर पर सफाई करने वाला राजस्थानी लड़का रामसिंह एक दिन कहने लगा– साब जी आपसे एक बात कहनी है।

बोलो भाइ क्या पैसे बढ़ाने हैं ?

नहीं साब पैसे तो आप पूरे देते हैं। आप धर्मा से खरीदते हैं। अगर मुझे कहें तो मैं ला दिया करूंगा। दो पैसे मुझे भी बच जाया करेंगे।

तो ये बात है। सप्लाई सब जगह चालू है। अब धर्मा बाहर और घरेलू नौकर रामसिंह चालू।

उस घर में मैं लगभग एक बरस रहा और कभी ऐसा नहीं हुआ कि अपने यार दोस्तों के लिए चाहिये हो और न मिली हो।

एक बार फिर धर्मा प्रसंग।

धर्मा ने एक बार बताया कि उसे बहुत नुकसान हो गया है। बिल्डिंगों के बीच जिस खाली मैदान में उसने रात को पचास बोतलें जमीन में गाड़ कर रखी थीं, कोई रात को ही निकाल कर ले गया।

तभी मुझे नवरंगपुरा में मकान मिला। बेहतर इलाका और बेहतर लोग, बस एक ही संकट था। वहां दारू कैसे मिलेगी।

रास्ता सुझाया धर्मा ने। आपको एक फोन नम्बर देता हूं। फोन टाइगर उठायेगा। शुरू शुरू में आपको मेरा नाम लेना होगा। बाद में वो आपकी आवाज पहचान लेगा, क्या चाहिये, कितनी चाहिये, कब चाहिये और कहां चाहिये ही उसे बताना है। एक शब्द फालतू नहीं बोलना। माल आपके घर आ जायेगा। मैं निश्चिंत। इसका मतलब होम

डिलीवरी वहां भी चालू रहेगी। शुरू शुरू में टाइगर की गुरू गंभीर आवाज सुन कर रूह कांपती थी। लगता था टाइगर नाम के किसी हत्यारे से बात कर रहा हूं, लेकिन बाद में सब कुछ सहज हो गया। वह मेरी आवाज पहचानने लगा।

नवरंगपुरा आने के बाद दारू बेचने वालों की एक नयी दुनिया ही मेरे सामने खुली। एक मील से भी कम दूरी पर गुजरात विश्वविद्यालय था। उसके एक गेट से सटी हुई लकड़ी की एक बहुत बड़ी लावारिस सी पेटी पड़ी हुई थी। शाम ढलते ही एक आदमी उस पेटी के अंदर से ऊपर की तरफ एक पल्ला खोल देता और भीतर जा कर बैठ जाता। अंदर ही एक मोमबत्ताी जला कर खड़ी करता और शुरू हो जाता उसका कारोबार। वहां क्वार्टर या हाफ ही मिला करते। बस, एक एक करके वहां जाना होता। गुनगुने अंधेरे में।

ये तो मील भर दूर की बात हुई, हमारी कालोनी से नवरंगपुरा की तरफ जाओ तो सौ गज परे दो हॉस्टल थे। एक दृष्टिहीनों के लिए और दूसरा लड़कियों के लिए। थोड़ा आगे बढ़ो तो सामने की तरफ कुछ साधाारण सी दुकानें और उनके पीछे एक गली में झोपड़ पट्‌टी। अंदर गली में देसी और विलायती शराब मिलने का बहुत बड़ा ठीया। वहां शाम ढलने से देर रात तक इतनी भीड़ हो जाती कि अंदर गली में स्कूटर या साइकिल ले जाना मुश्किल। किसी आदमी ने इसमें भी कारोबार की संभावना देखी और सड़क पर ही साइकिल स्टैंड बना दिया। शाम को वहां इतनी साइकिलें और स्कूटर नज़र आते कि राह चलना मुश्किल। एक और समस्या निकली इसमें से। आपने स्टैंड पर अपना वाहन खड़ा किया। उसे पैसे दिये, आप भीतर गली में गये तो पता चला कि दारू खतम है तो मूड तो खराब होगा ही समय भी बरबाद होगा। इसका रास्ता भी दारू वालों ने ही खोजा। गली के बाहर कोने में एक छोटा सा दोतल्ला मंदिर बना दिया। उसमें मूर्तियां तो क्या ही रही होंगी। वह ढांचा मिनी मंदिर जैसा लगता था। उसमें शाम के वक्त दो बल्ब जलते रहते। नीचे वाला बल्ब देसी दारू के लिए और ऊपर वाला विलायती के लिए। जब कोई भी दारू खत्म हो जाती तो एक आदमी आ कर ऊपर या नीचे वाला बल्ब बुझा जाता। मतलब अपने काम की दारू खतम और स्कूटर स्टेंड पर पैसे खर्च करने की जरूरत नहीं। हां, अगर थोडी देर में नयी सप्लाई आ जाती तो बल्ब जला भी जाता।

कुछ दिन बाद इलाके में एक ऐसे आदमी का पता चला जो साइकिल पर खूब सारे थैलों में दारू लाद कर धंधा करता था। साइकिल एक अंधेरे में एक पेड़ के नीचे खड़ी होती और वह दूसरे पेड़ के नीचे खड़ा होता। लेन एक पेड़ के नीचे और देन दूसरे पेड़ के नीचे। पकड़े जाने का कोई रिस्क नहीं।

यहां धर्मा का एक और किस्सा

एक बार मुंबई से पत्नी आयी हुई थी। उसे रात की गाड़ी से वापिस जाना था। हम स्टेशन के लिए निकलने ही वाले थे कि जूनागढ़ से शैलेश पंडित आ गये। इसका मतलब दारू की जरूरत पड़ेगी। मैंने शैलेश को एक बैग दिया और कहा कि जब तक मैं स्टेशन से वापिस आता हूं वह ऑटो में नारणपुरा जा कर धर्मा को खोज कर माल ले आये।

जब मैं वापिस आया तो शैलेश पंडित का हँसी के मारे बुला हाल। बहुत पूछने पर उसने बताया. सरऊ क्या तो ठाठ हैं। मैंने फिर पूछा. यार काम की बात करो धर्मा मिला कि नहीं।

जो कुछ शैलेश ने बताया उसे सुन कर हँसा ही जा सकता था। हुआ यूं कि जैसे ही नारणपुरा में मेरे पुराने घर के पास ऑटो से उतर कर शैलेश ने धर्मा की खोजबीन शुरू की एक भारी हाथ उनके कंधा पर आया। आप धर्मा को ढूंढ रहे हैं ना।

शैलेश को काटो तो खून नहीं। वे मैं. . .मैं. . .ही कर पाये। घबराए ये क्या हो गया। उस व्यक्ति ने दिलासा दी। घबराओ नहीं आपके कंधे पर जो बैग है ना वो सूरज प्रकाश साब का है और ये बैग दारू ले जाने के काम ही आता है। मैं ही धर्मा हूं। बोलो कितनी चाहिये।

बाद में हमने मस्ती के लिए और खोज अभियान के नाम पर हर तरह के दुकानदार से शराब खरीदने का रिकार्ड बनाया। एक बार तो रेडिमेड कपड़े वाले के ही पीछे पड़ गये कि कहीं से भी दिलाओ दोस्त आये हैं और चाहिये ही। और उसने दिलायी।

एक बार हम कुछ साथी आश्रम रोड पर लंच के वक्त टहल रहे थे। बंबई से एक नये अधिकारी ट्रांसफर हो कर आये थे। कहने लगे– यार तुम्हारा बहुत नाम सुना है कि कहीं से भी पैदा कर लेते हो शराब। हम भी देखें तुम्हारा जलवा। मैंने भी शर्त रख दी। . अभी यहीं पर खड़े खड़े आपको दिलाऊंगा बस लेनी होगी आपको बेशक थोड़ी महंगी मिलेगी। वे तैयार हो गये। हमारे सामने एक गरीब सा लगने वाला अनजान आदमी जा रहा था। मैंने उसे रोका अपने पास बुलाया और बताया कि ये साब बंबई से आये हैं इन्हें अभी दारू चाहिये। उस भले आदमी ने एक पल सोचा और बोला। लेकिन साब आपको आटो रिक्शे के आने जाने के पैसे और बक्शीश के दस रुपये देने होंगे। मैंने उसकी बात मान ली और अपने साथी को पैसे निकालने के लिए कहा। वे परेशान। राह चलते अनजान आदमी को इतने पैसे कैसे दे दें लेकिन मैंने समझाया। आपके पैसे कहीं नहीं जाते। ये गुजरात है।

तय हुआ कि आधे घंटे बाद वह आदमी ठीक उसी जगह पर मिलेगा और माल ले आयेगा। और वह अनजान आदमी जिसका हमें नाम भी नहीं मालूम था। ठीक आधे घंटे बाद माल ले कर हाजिर था।

और भी कई तरीके रहे माल लेने के। एक बार तो होम डिलीवरी वाला सुबह दूध लाने वाले से भी पहले माल दे गया। हमारे यहां जितने भी सिक्यूरिटी वाले थे। सब भूतपूर्व सैनिक ही थे। वे अपने साथ अपनी एक आधा बोतल रख कर कहीं भी आ जा सकते थे, मतलब पकड़े नहीं जा सकते थे। बस काम हो गया। जो भूतपूर्व सैनिक नहीं पीते थे। उनका स्टॉक बेचने के लिए यही कैरियर का काम करते थे।

और अंत में,

आपने कई शहरों में बर्फ के गोले खाये होंगे। अलग अलग स्वाद के। मुंबई में तो चौपाटी और जूहू में बर्फ के गोले खाने लोग दूर दूर से आते हैं लेकिन अगर आपको रम या व्हिस्की के बर्फ के गोले खाने हों तो आपको अहमदाबाद ही जाना होगा।

इस बार इतना ही नहीं त1ो ज्यादा नशा हो जायेगा और...।

एच-1/101, रिद्धि गार्डन
फिल्म सिटी रोड
मलाड (पूर्व), मुंबई-400097

अनुराग वाजपेयी

हनुमान किसके हैं

भगवान राम अयोध्या लौट आए थे। धोबी के कहने पर लोकापवाद के डर से सीता माता को घर से निकाल चुके थे। समय काफी रहता था सो राजकाज में काफी ध्यान देने लगे थे और दरबार देर रात तक चलता रहता था। मर्यादा पुरुषोत्तम का दरबार था इसलिए सब कुछ संयमित रहता था। नीति और आदर्श की बातें होतीं और शिष्ट हास-परिहास चलता रहता। एक दिन अचानक एक अमर्यादित घटना हुई और इसे अंजाम भी दिया राम के परम भक्त हनुमानजी ने। वे तमतमाते हुए आए और बिना अभिवादन किए रामचंद्र जी बोले– 'मैं जा रहा हूं अब नहीं लौटूंगा ये रखिए त्यागपत्र। रामचंद्र जी ने पूछा– क्या हुआ वत्स। हनुमान बोले– होना क्या है, मान सम्मान को ताक पर रखकर अपने से काम नहीं होता। आप वत्स-वत्स कहते हैं और वहां नीचे धरती पर मेरे मंदिर तोड़े जा रहे हैं। राम बोले– क्या कह रहे हो हनुमान, ऐसा भी कहीं होता है? तुम्हारी मूर्तियां तो हमारे साथ होती हैं, फिर तुम्हारे मंदिर मेरे भी तो हुए, बताओ किसने किया है। यह धतकर्म मैं उसे यथोचित दण्ड दूंगा। हनुमान जी बोले– एक तो आप ये गलतफहमी निकाल दीजिए कि मेरी मूर्तियां केवल आपके मंदिरों में ही हैं। मेरे अपने सेपरेट मंदिर भी हैं जहां केवल मेरी विराट रूप वाली मूर्ति होती है, शहरों में देखिए, राम मंदिर से ज्यादा हनुमान मंदिर प्रसिद्ध होते हैं। एक तो दिल्ली में ही है, खास कनॉट प्लेस पर। और रही बात मंदिर तोड़ने की तो मुझे पता लगा है कि वहां एक नगर में मेरा मंदिर आपने ही अपने भक्तों को कहकर तुड़वा दिया है। रामचंद्र जी सकते में आ गए। बोले, हनुमान तुम्हें किसने कहा कि मैंने तुम्हारा मंदिर तुड़वा दिया, मैं भला ऐसा क्यों करूंगा?

हनुमान बोले, मुझे उस राज्य के विधायकों ने बताया है कि आपका नाम जपने वाली पार्टी की सरकार ने मेरा मंदिर तुड़वा दिया है। अब राम थोड़ा सहज हुए, बोले, मैं समझ गया, इस विधायक प्रजाति ने तुम्हें बहकाया है। सुनो हनुमान, धरती की ये प्रजाति राक्षसों से भी चतुर होती है। उनसे भी ज्यादा मायावी, तरह-तरह के रूप रचने वाली। इन्होंने तो मुझे भी ठग लिया था, बोले कि आपका अयोध्या में भव्य मंदिर बनाएंगे। चंदा भी खा गए और मंदिर बनाना तो दूर मेरी मूर्ति को 20 साल से खुले में रख छोड़ा है तुम इनकी बातों में न आओ हनुमान, ये विधायक, सांसद और गेरुए वस्त्रधारी बाबा बड़े खतरनाक हैं। तुम्हें तो पता है सीता को भी रावण ऐसे ही साधु बनकर उठा ले गया था। हनुमान का गुस्सा शांत नहीं हुआ। वे बोले– आप मुझे बहला रहे हैं मुझे पक्का पता है, उस राज्य की राजधानी में मेरा मंदिर तोड़ दिया गया है और उस जमीन को आपको नाम जपने वाली पार्टी ने अपनी शाखा लगाने के लिए ले लिया है। मैं कैसे मान लूं कि आपने मेरे बढ़ते जनाधार से घबराकर यह कार्यवाही नहीं की है। राम ने पता किया तो मालूम हुआ कि घटना सच्ची है। वे बोले, वत्स, तुम्हारी बात सही है, पर तुम्हारी भाषा से लगता है कि विधायकों ने अपनी संगत का तुम पर पर्याप्त असर छोड़ा है, तुम ऐसा करो उस राज्य में चले जाओ आज वहां इसी विषय पर विधानसभा में भी चर्चा हो रही है। तुम्हें सब खुद स्पष्ट हो जाएगा।

हनुमान जी तत्काल सूक्ष्म रूपधर कर विधानसभा में पहुंच गए। वहीं उन्हें पत्रकार का रूप धरे नारद जी भी मिल गए। हनुमान जी ने उन्हें प्रणाम किया और आने का उद्देश्य बताया तो नारद उन्हें भी पत्रकार का रूप धरवा कर अपने साथ प्रेस दीर्घा में ले गए।

विधानसभा का भवन अति विशाल और गरिमापूर्ण था। एक ओर सत्तापक्ष और दूसरी ओर विपक्ष के बैठने के स्थान थे। विचारों से असहमत होने पर शारीरिक प्रहार के लिए माइक आदि लगे हुए थे। सदन की कार्यवाई शुरू हुई और विपक्षी पार्टी के एक विधायक ने कहना शुरू किया कि राजधानी

में हनुमान जी का एक मंदिर कल आधी रात गिरा दिया गया। नगर निगम के एक दस्ते ने भगवान की मूर्ति को अपने कब्जे में ले लिया और पुलिस थाने में रख दिया। भगवान हनुमान तब से भूखे हैं, उन्हें भोग नहीं लगा है और यह सब काम सत्ता में बैठी उस पार्टी के राज में हुआ है जो राम का नाम लेकर सत्ता में आई है। यह शर्म की बात है कि रामनामी पार्टी ने अपनी संस्था के एक विद्यालय को जमीन देने और वहां शाम को युवकों को धर्म रक्षा का ज्ञान देने का प्रशिक्षण देने के लिए हनुमान जी का मंदिर तोड़ डाला।

प्रेस दीर्घा में बैठे हनुमान जी ने नारद से कहा– ऋषिवर कल यही बात स्वयं भगवान राम स्वीकार नहीं कर रहे थे। नारद जी ने कहा, पवनपुत्र इतनी जल्दी निष्कर्ष मत निकालो, देखते जाओ। तभी सत्तापक्ष के कई सदस्य अपने-अपने स्थान पर खड़े हो गए और चिल्लाने लगे कि यह झूठ है गलत है। इस पर विपक्षी ने कहा, क्या यह भी झूठ है कि वहां सात साल से हनुमान जी का मंदिर था, रोज आरती होती थी और हनुमान जी का मंदिर तोड़ने से व्यथित भक्त अनशन पर बैठे हुए हैं। हनुमान जी की फिर मुट्ठियां तन गई, इसी बीच नगर निगम के मंत्री खड़े हुए, उन्होंने काले रंग का घुटनों तक का कुर्ता पहन रखा था अैर मुख से स्पष्ट लग रहा था कि पान वे सदन में प्रवेश करने से ठीक पहले थूककर आए हैं और सुबह से दांतों में जमे उस स्वादिष्ट बीड़े के अभाव में काफी अहसज महससू कर रहे हैं। उन्होंने कहा, इतना उत्तेजित होने की जरूरत नहीं है मैं अभी सारी स्थिति स्पष्ट कर देता हूं। फिर उन्होंने रहस्य भरी मुस्कान के साथ यह मामला उठाने वाले विपक्ष के विधायक की तरफ देखा और बोले, ये सच है कि नगर निगम ने हनुमान जी की एक मूर्ति चबूतरे से उठाई है पर वहां मंदिर कभी नहीं था बल्कि एक चबूतरा बनाकर मूर्ति रख दी गई थी और इसका मकसद जमीन पर कब्जा करना था क्योंकि उस इलाके में जमीन के दाम लाखों में पहुंच चुके हैं यह भूमि माफिया की कोशिश थी जिसे नाकाम कर दिया गया। मूर्ति थाने में है और पुलिस वाले हनुमान जी की पूजा कर रहे हैं, सरकार ने विचार किया है कि थोड़े दिन बाद विधि विधान से थाने में ही मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा कर दी जाएगी। प्रेस दीर्घा में हनुमानजी इधर-उधर झांकने लगे। नारद से बोले, तो ये कलजुगी भक्त मेरी मूर्ति का इस्तेमाल जमीनें कब्जाने में कर रहे हैं? नारद जी समझदार मुस्कुराहट बिखेरते हुए बोले, तुम्हारी ही नहीं हनुमान सभी देवी-देवताओं की मूर्तियों का अब यही प्रयोग हो रहा है।

उधर सदन में फिर शोरगुल शुरू हो गया। विपक्षी विधायक बोला, आप सदन को गुमराह कर रहे हैं वहां सात साल से ये मंदिर था आपने इसे तोड़ा है। मंत्री ने भी एक कागज लहराते हुए उसी बुलंदी से कहा, उस कालोनी की विकास समिति ने लिखकर दिया था कि मंदिर हटाया जाए। विपक्षी भी एक कागज लहराकर चीखा, विकास समिति ने ऐसा कभी नहीं कहा, ये चिट्ठी है वे लोग तो आहत होकर धरने पर बैठे हुए हैं। हनुमान जी बेचैन हो गए, उन्होंने नारद से पूछा, ये विकास समिति ने दो अलग-अलग पत्र कैसे लिख दिए? नारद जी बोले, पत्र अलग-अलग नहीं है उस कॉलोनी में विकास समितियां ही दो होंगी। एक इनके पक्ष वाली एक विपक्ष वाली। इस बीच सदन में जोरदार हंगामा होने लगा। सभी सदस्य खड़े होकर नारे लगाने लगे। तभी हांफता हुआ एक विधायक घुसा, उसके गले में भगवा दुपट्टा पड़ा था, उसने अपने पड़ौसी से हल्ले की वजह जानी और चिल्लाने लगा, तुम विपक्षी किस मुंह से भगवान का नाम लेते हो, वे हमारे हैं हम उनका कुछ भी करें, कहीं भी रखें तुम्हें क्या मतलब। हनुमान जी इस घोषणा से सिहर उठे। इसी बीच हंगामा बढ़ते देखकर अध्यक्ष ने दखल दिया। वे बोले, इस बात का क्या प्रमाण है कि वहां मंदिर था। विपक्षी विधायक तैयारी से था तुरंत फोटो लहराने लगा। अब सत्ता पक्ष थोड़ा दबा और उसका दुपट्टे वाला विधायक फिर चिल्लाने लगा, तुम विधर्मी हो तुम्हें भगवान के बारे में बोलने कोई हक नहीं है। हमने राम का मंदिर भी बनाने की शपथ खाई थी हनुमान का भी बनाएंगे। विपक्ष से आवाज आई, तुम मंदिर की केवल बात करते हो राम मंदिर का ताला तो हमने खुलवाया था। फिर शोर, हो-हुल्लड़ शुरू हो गया। विपक्षी विधायक फिर बोला, सरकार धर्म विरोधी हो गई है, मंत्री कहते हैं वहां मंदिर नहीं था, ये हमारे एक और विधायक खड़े हैं जो सात साल से उस मंदिर में जा रहे हैं, बोलिए ना, फिर हमेशा चुप रहने वाला वह विधायक भी पहली बार बोला, हां मैं जाता हूं। फिर शोरगुल शुरू हो गया और कुछ सुनाई नहीं दिया।

प्रेस दीर्घा में बैठे हनुमान जी कान खुजाने लगे। नारद जी बोले, महाराज इनमें कौन सच कह रहा है, कौन झूठ पता ही नहीं लग रहा। नारद जी बोले, ये विधानसभा है हनुमान, यहां मुद्दे उछाले जाते हैं, सच झूठ का फैसला तो न्यायालय करता है, और वहां अगर मामला चला गया तो अगले कई युगों तक अटक जायेगा। दरअसल हनुमान ये दोनों ही सच बोल रहे हैं और दोनों ही झूठ बोल रहे हैं। हनुमान ने कहा, महाराज ये क्या उलटबांसी है? नारद जी बोले, देखो, सच तो यह है कि वहां सात साल से आपकी मूर्ति थी और झूठ ये कि मंदिर था, मंदिर वहां नहीं था। सच ये कि वहां जमीन का दाम बड़ा महंगा है मूर्ति के सहारे उसे कब्जाने की योजना थी और झूठ ये कि विकास समिति ने उसे हटाने को कहा था। इस तरह ये दोनों झूठे भी हैं और सच्चे भी हैं। हनुमान, तुम नहीं समझते, ये विपक्षी विधायक रातों रात धार्मिक नहीं हो गए हैं इन्हें जमीन कब्जाने वालों ने यह मामला उठाने के लिए प्रेरित किया है, कैसे तुम नहीं समझोगे वरना इससे पहले जब भूख से लोगों के मरने का मामला उठा था तो ये बिलकुल खामोश थे। और ये सत्तापक्ष, इसके विधायकों को पता है कि वहां शाखा लगनी है और वह शाखा जो संस्था लगवाती है उसके खिलाफ ये तो क्या इनके आका भी नहीं जा सकते। ये विधायक बड़े मायावी होते हैं हनुमान तुम इनकी बातों में न आओ। इनके कई रूप होते हैं, चुनाव प्रचार वाला अलग, जीतने वाला अलग, मंत्री बनने वाला कुछ और, हारने वाला कुछ और। हनुमान एकदम से चौके, ये बात मेरे आराध्य राम भी कह रहे थे। उन्हें अपनी गलती का भान हुआ। उन्होंने तुरंत सूक्ष्म रूप धरा और सीधे श्रीराम के चरणों में जा पहुंचे। भगवान राम मंद-मंद मुस्कुराने लगे।

39, टाइप-3, सीपीडब्ल्यूडी
निर्माण विहार-2, सै
विधाधर नगर, जयपुर (राजस्थान)

रमेश सैनी

मंहगाई बनाम मंदिर

रामलाल जी हमारे मुहल्ले में रहते हैं, लोग उन्हें हमारी गली का नेता कहते हैं। वे सर्वव्यापी हैं और कहीं भी मिल जाएंगे अलग-अलग रूपों में, वैसे आजकल नेता लोग रंगों से पहचाने जाते हैं। कई नेताओं ने सभी रंगों का अनुभव किया है। मगर हमारे नेता जी को किसी रंग का अनुभव नहीं है। मगर वे नेता हैं। हमेशा गली के विकास के बारे चिंता करते हैं। वे जितनी चिंता करते हैं उनके शरीर का क्षेत्रफल उतना ही बढ़ जाता है। रामलाल जी सिर्फ नेता ही नहीं, वरन अच्छे आदमी भी हैं। सबसे मुस्कुराकर बात करते हैं फिर भी लोग कहते हैं वे चालाक हैं। वे तिकड़मी हैं। काम निकालू हैं। और वे सभी गुण भी हैं जो एक सर्वमान्य नेता में होते हैं। उनको विभिन्न गुणों के कारण बहुआयामी व्यक्तित्व का धमनी कहा जाता है। मगर मुझे लगता है यह कुछ अधिक हो गया, वरन बहुआयामी नहीं, त्रिआयामी कहा जाए तो ठीक रहेगा। पहला वे सरकारी कर्मचारी हैं, दूसरा हमारी गली के नेता हैं, तीसरा वे अपने को बुद्धिजीवी कहते हैं। वे अच्छे आदमी हैं, मगर उनकी गोपनीय रिपोर्ट में लाल स्याही वाली टिप्पणी भी है। कहते हैं कालेज के दिनों में वे जरा लाइन में फिसल गए थे। एक बार पुलिस इनके घर आ धमकी। घर के सब लोग घबरा गए। पूछने पर पुलिस ने बताया इन्होंने कॉलेज जाती बालिका से प्यार का इजहार करने के लिए उसे रोक लिया। बालिका ने शोर मचा दिया। शोर सुनकर भीड़ इकट्ठा हो गयी। कालेज के दिनों में ये स्पोर्ट्स मेन थे, अत: मौका लगते ही 500 मीटर की दौड़ लगा दी, और पब्लिक के कोप भाजन से बच गए। मगर बालिका के बाप ने पुलिस को सूचना दे दी। किसी तरह रामलाल जी के पिता श्री ने पुलिस से मामले को सेटिल कर लिया। पुलिस से निपटने के लिए पिताश्री ने रामलाल जी को निपटाने में कोई कसर नहीं रखी। तब रामलाल जी को समझ में आया कि इस क्षेत्र में ज्यादा स्कोप नहीं है, और इस क्षेत्र से अपने को समेट लिया। इसका यह परिणाम निकला कि वे आज चरित्रवान, समझदार और सबकी सहायता करने वाले के रूप में जाने जाते हैं।

एक दिन रामलाल जी सुबह-सुबह टकरा गए। नमस्कार चमत्कार के बाद बोले, आप भी घूमने जाते हैं। 'हां! मगर आप भी घूमने निकलते हैं।' मैंने पूछा, 'हां! पर नियमित नहीं। मगर घूमने से एक फायदा हो जाता है कि लोगों से मेलजोल, मुलाकात, हालचाल, दुख-सुख के समाचार मिल जाते हैं। वरना आदमी के पास समय ही कहा हैं? उन्होंने कहा।

इस तरह बातों का सिलसिला आगे बढ़ता गया। मुहल्ले की राजनीति से लेकर राष्ट्रीय राजनीति तक। मंहगाई पर चर्चा चल पड़ी। वे कहने लगे यह कैसा देश है, देश का प्रधानमंत्री कह रहा है हम महंगाई पर लगाम नहीं लगा सकते हैं। अर्थात स्थिति गंभीर है। यह कह वे मुस्कुराने लगे। मुझे लगा इतनी महंगाई में नेताजी मुस्कुरा रहे हैं। लगता है मंहगाई का नेताओं पर कोई असर नहीं होता।

तब मैं बोला भाई साहब! मंहगाई ने तो हमारा दम तोड़ दिया। सारा पैसा खाने-पीने में लग जाता है, पैसा बचता ही नहीं। कुछ उपाय बताइए। या कोई पार्ट टाइम काम या धंधा, जिससे दो पैसा कमाया जा सके।

तब वे बोले आप तो बुद्धिजीवी हैं, अपने लेखन से कमा सकते हैं।

'अरे अब क्या बताएं, यहां पर भी अपनी-अपनी सेटिंग है। और हम सेटिंग में अनफिट हैं।

यह सुन उन्होंने कहा, एक धंधा है जिसमें लागत बहुत कम या न के बराबर है, जिसे कहते हैं 'हर्रा लगे न फिटकरी और रंग भी चोखा आए।'

'बताइए! जल्दी बताइए। 'मैंने जिज्ञासा व्यक्त की।

आप लेखक हैं?

हां!

आप भाषण भी अच्छा देते होंगे। प्रोफेसर जो ठहरे।

मुझे लगा वे यहां पर गड़बड़ा गए। आजकल कॉलेज में भाषण देने की जरूरत नहीं पड़ती है। विद्यार्थी कॉलेज में नेतागिरी सीखने आते हैं, और वे खुद प्रोफेसरों को भाषण देकर चले जाते हैं। कॉलेज में आजकल पढ़ाई को छोड़कर सब कुछ होता है। फिर मैंने सोचा, यदि सच कहा तो सीक्रेट खुल जाएगा। अत: उनसे हां कह दिया।

बस हो गया काम। आप प्रवचन करो। उपदेश दो। रामकथा, भागवत का पाठ करो इसमें कुछ पैसा है। इस धरा पर जैसे-जैसे भ्रष्टाचार, घूसखोरी, मुनाफाखोरी, पक्षपात बढ़ा है वैसे लोगों का विश्वास धर्म पर बढ़ा है। उन्हें लगता है कि कुछ दान पुण्य करके दूसरा लोक सुधारा जा सकता है। वे जानते हैं कि उनका तारणहार धर्म ही है। वे लोग धर्म पर पैसा खर्च करते हैं और कुछ धर्म के नाम पर पैसा पैदा करते हैं।

मगर मेरा इस विषय में ज्ञान और अध्ययन निल बटा निल है।' मैंने कहा।

तब क्या हुआ। दो चार किताबें खरीद लो, और पढ़कर बन जाओ आचार्य श्री, महात्मा श्री 1008, या संत आदि। इस कार्य

में पैसा भी है और सम्मान भी।

आपकी बात सही है, मगर मैं प्रवचन नहीं कर पाऊंगा। मैंने असमर्थता व्यक्त की।

तब वे बोले यह कठिन काम नहीं है। चालू हो जाओगे तो बनने लगेगा। इसमें किसी प्रकार का कोई लफड़ा नहीं है। न कोई इन्कम टैक्स देना है, और न कोई लायसेंस लेना है। यह एक एकतरफा का खेल है। इसमें एक ओर फायदा होता है, यदि कोई अधिकारी और राजनेता आपका भक्त हो गया तो फिर आपको किसी बात की कोई चिंता नहीं।' उन्होंने कहा।

फिर भी मुझसे यह नहीं हो सकता।

मेरा उत्तर सुन वे चुप हो गए। कुछ देर सोचते रहे, फिर अचानक बोले, एक और धंधा इससे मिलता जुलता है। मगर उसमें थोड़ी लागत लगेगी।

तो फिर बताइये! थोड़ा बहुत मैं खर्च कर लूंगा।

मैंने जिज्ञासा व्यक्त की।

आप एक मंदिर खोल लो, उन्होंने कहा।

मंदिर खोल लें! क्या मतलब? मैंने प्रश्न किया।

'अरे भाई साहब, आप नहीं समझे, धंधे में कोई काम शुरू करने को खोलना कहते हैं। एक बार मंदिर खुल गया फिर आपके वारे-न्यारे।' उन्होंने समझाया।

वह कैसे?

'एक बार मंदिर खुल गया। लोग पूजा करेंगे। पैसा चढ़ाएंगे, फल-फूल चढ़ाएंगे। सारी चढ़ोत्तरी, आपकी। बस इसमें कुछ समय लग सकता है।'

कितना समय लगेगा? मैंने पूछा।

ज्यादा नहीं आपके मंदिर में कुछ चमत्कार करना होगा, जैसे भभूत आदि निकालना। जहां एक बार चमत्कार हुआ, और पैसे की बरसात शुरू हो जाएगी। आप पैसा संभाल नहीं पाएंगे।' उन्होंने मेरे सवाल पर खुलासा दिया।

'मगर चमत्कार होगा कैसे?'

'इसकी चिंता आप मत करें। इसे मुझ पर छोड़ दें। बस मुझे चढ़ोत्तरी पर आपको कमीशन देना होगा।

'वो तो मैं दे दूंगा। इतने सारे मंदिर हैं, फिर मंदिर में लोग आएंगे या नहीं?'

'आप चिंता न करें। जितने मंदिर खुलेंगे उतने चलेंगे। आप देख नहीं रहे, मंदिरों में कितनी भीड़ रहती है। जितने मंदिर खुलेंगे, लोगों को उतनी सुविधा मिलेगी। लोग नयी चीज पर आकर्षित होते हैं, वैसे नये मंदिर पर लोग दर्शन करने और चढ़ावा चढ़ाने आएंगे बस हिम्मत करिए। यदि मंदिर, स्कूल, अस्पताल, कोर्ट-कचहरी, थाना के आसपास खुला हो तो अच्छा है यहां पर मार्केट अच्छा रहता है। यदि मंदिर अच्छा चल गया तो आसपास के क्षेत्र को हथियाकर नारियल-प्रसाद-फूल धार्मिक किताबें आदि दुकान किराये से दे दो। इसमें कमाई ही कमाई है।

'हिम्मत तो कर लूं, मगर आजकल नगर निगम और अतिक्रमण वालों की निगाहें, धार्मिक स्थलों को तोड़ने में अधिक हैं।' मैंने पूछा।

'आप चिंता न करें, हम सरकारी जमीन पर नहीं वरन अपनी जमीन पर मंदिर खोलेंगे। फिर अतिक्रमण वाले कैसे तोड़ेंगे।' यह कह वे मेरी ओर गहरी नजर से देखने लगे। मैं उनकी नजरें देख भयभीत सा हो गया। थोड़ी देर उनसे नजर मिलायी मगर अपनी नजरें नीची कर ली। इस बीच वे, फिर रुककर बोले, 'आपको मालूम है मैंने चार साल पहिले मंदिर खोला था। आप देख रहे हैं, आज मेरी कैसी स्थिति है। बस आप भी हिम्मत कर लो।'

उनकी कद काया का मैंने निरीक्षण किया, फिर पुरानी काया का स्मरण और दृढ़निश्चय किया मंहगाई से निपटने के लिए एक अदद मंदिर खोल लिया जाए।

245/ए एफ.सी.आई लाइन
त्रिमूर्तिनगर, दमोह नाका
जबलपुर-482002 (म.प्र.)

महावीर समता संदेश

गैर बराबरी के विरुद्ध समता का आंदोलन

10 जुलाई, 2008 अंक

शिक्षा की पड़ताल

पर केंद्रित

सुरेश पण्डित, एस.बी.लाल, अनिल पालीवाल, उषा कुमावत, अवध प्रसाद, कमलेश झा, सुरेश कुमार बाली, मनीष सक्सेना, वेद प्रकाश, सुरेश अवस्थी, दीप्ती कोचर, वेद व्यास, चिन्मय, हेमेंद्र चण्डालिया, दत्तेश कुमार आदि के विचारवान सार्थक आलेख।

प्रधान संपादक

हिम्मत सेठ

संपर्क

30 एफ, भूपालपुरा
उदयपुर-313001

कुलदीप तलवार

रिटायरमेंट के बाद

रिटायरमेंट का दिन भी क्या दिन है। एक ऐसा पानी का जहाज जिस पर लगभग तीस वर्ष पहले सफर शुरू किया था अब अपनी बंदरगाह तक पहुंचा है। इस जहाज ने बुरे और अच्छे मौसम में अपना सफर जारी रखा, किसी के जीवन की इस लंबी यात्रा की सफलता पर खुशी होती है।

एक दिन रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर क्या देखता हूं, बड़े जोर से ढोल बज रहा है। चारों तरफ भीड़ लगी हुई है। भीड़ में एक अधेड़ सज्जन टेरीकॉट का नया पाजामा और कमीज, गले में फूलों के हार पहने नाच रहा है। शायद घोड़ा-रम के दो पैग भी अंदर गए हुए थे। ढोल वाला बड़े जोर से ढोल बजा रहा है। हमने भीड़ में किसी साहब से पूछा, 'ये माजरा क्या है?' जवाब मिला, 'जो सज्जन नाच रहे हैं, वह आज रिटायर हुए हैं। तीस वर्ष पहले वह रेल की नौकरी में भर्ती हुए थे। अब उसी रेल ने उन्हें अपनी मंजिल तक पहुंचा दिया है। थोड़ी देर में क्या देखता हूं, उनके साथी पांच रुपए का और कोई दस रुपए का नोट उनके सर से उतारकर ढोल वाले को दे रहे हैं। हमने जब इन नोटों की वर्षा के बारे में पूछा, एक सज्जन बोले, 'रिटायर तो सभी को होना है, लेकिन ये सज्जन बा-इज्जत रिटायर हुए हैं इसलिए यार-दोस्त खुश हैं और जश्न मना रहे हैं। यकीनन आज के दौर में बा-इज्जत रिटायर होना बहुत बड़ी चीज है। हमारी दिलचस्पी और ज्यादा बढ़ गयी। हमने तय किया कि इन सज्जन से हाथ जरूर मिलाया जाएगा। जिसका सारा केरियर जीवन के भेंट पर रहा, जिसने जीवन में बहुत सारी स्पिंस और बाउन्सर्स का सामना किया लेकिन वह अपने ओवर की आखिरी गेंद तक शानदार तरीके से खेला, ना वह बोल्ड हुआ, न कैच और ना ही एल.बी.डब्ल्यू।

जब भीड़ कम हुई तो हमने उस खुशनसीब शख्स को बा-इज्जत रिटायर होने की बधाई दी। आगे के प्रोग्राम के बारे में पूछा, कहने लगे, बस अब मथुरा में जाना है और कन्हैया से इश्क करना है। उसी के आगे सजदा करना है।

हमारी भी कबूल हो मथुरा में हाजरी
सुनते हैं आशिकों पे तुम्हारा कर्म है खास।

ऐसे ही हमारे मित्र हैं मिस्टर सेठ, दो वर्ष पहले रिटायर हुए थे। एक वर्ष पहले उनका जीवन साथी चल बसा। दो लड़के हैं, जो अमरीका में रहते हैं। कुछ दिन पहले काफी हाउस में मिल गए। मेरे पूछने पर कि आजकल क्या सिलसिला है, कहने लगे रिटायरमेंट तो खेल की आखरी सीढ़ी है जो अभी-अभी खत्म हुई है। ये एक ऐसा पर्दा है जो नाटक के बाद गिरा है। अभी तो और बहुत खेल खेलने हैं। मैं रिटायर्ड जरूर हूं लेकिन टायर्ड नहीं। आजकल मैं सिंगल्स फैलोशिप ऑफ इंडिया संस्था का मैंबर बन गया हूं, जो हम जैसे अकेलों के लिए अभी हाल में नयी दिल्ली में बनी है। इसके उद्देश्य रंडवे और विधवाओं को एक दूसरे से मिलवाना है ताकि वह अकेलापन महसूस न करें। एक दूसरे के विचारों को जानना है। अकेलेपन को कैसे खत्म किया जाए, उसका रास्ता भी निकालना है. . .आगे कहने लगे, मेरे दोनों बेटों का विचार है कि मैं अमरीका चला आऊं। वहां पर उन्होंने एक तलाकशुदा लेडी से मेरी शादी की बात भी पक्की की हुई है। दोनों लड़कों का कहना है कि 'बुढ़ापे में बूढ़े को रोमांस की ज्यादा जरूरत होती है।' दाद देनी पड़ती है ऐसी औलाद की।

हसीनों की महफिल में बैठा था बूढ़ा,
बैठे ही बैठे जवां हो गया।

हमारे एक और मित्र हैं खान साहब। दो महीने बाद रिटायर हो रहे हैं। हमने उनसे रिटायरमेंट के बाद का प्रोग्राम पूछा- कहने लगे, 'एक लड़की की अभी शादी करनी है। खुदा ने चाहा तो इस साल शादी कर दूंगा, उसके बाद अपनी बेगम के सारे गिले-शिकवे दूर करने हैं। दरअसल उनको अब तक इतनी फुरसत ही नहीं मिली कि वह अपनी शरीके हयात की बात ध्यान से सुन सकें। तीस वर्ष की नौकरी में उनके अट्ठाईस तबादले हुए। शायद इसका कारण उनका अपना मिजाज था, जो दूसरों को रास नहीं आया। छोटी-छोटी बातों पर जामे से बाहर हो जाना उनकी शादत में शामिल रहा। शायराना तबीयत के मालिक हैं, खुद ही फरमाते हैं-

हैं कुछ खराबियां मेरी तामीर में जरूर,
सौ बार बनाकर बिगाड़ा गया हूं मैं।

खैर, अब उनका इरादा अपनी बेगम से भरपूर इश्क करने का है, बेगम सारा जीवन उनके साथ कदम मिलाकर चलीं। अगर खान साहब ने तपती धूप में सड़क काटी तो बेगम ने टोकरी से उन पर साया किया।

धूप है तेज बहुत, मुझको बचाये रखना,
ऐ मेरी बेगम की जुल्फों यूं ही साये रखना।

खान साहब का भरपूर इश्क करने का तरीका क्या होगा, हमारे पूछने पर वह इसका जवाब नहीं देते। शायद परदे में रखना चाहते हैं। हमारी राय में रिटायरमेंट के बाद इश्क टें-टें, ना जाने रिटायरमेंट के बाद उम्र साथ देगी भी या नहीं। 'जो कुछ करना है अभी कर लो'। इसलिए हम भी मसरूफ हैं अपनी पत्नी को खुश करने में।

ए-39, अशोक नगर
गाजियाबाद-201001

दामोदर दत्त दीक्षित

हम टायर होंगे, रिटायर नहीं

हिन्दुतानी आदमी बहुरंगी-बहुस्तरीय विशेषताओं वाला प्राणी है। उसकी एक विशेषता है यह है कि वह टायर हो जाता है, पर रिटायर नहीं होना चाहता। वह अजर-अमर कामी होता है और स्वयं को विकल्पहीन मानते हुए उसी दिन रिटायर होना चाहता है जिस दिन महिषवाहन यमराज टांग पकड़कर कुर्सी से खींचें और भैंसे की पूंछ से बांधकर फिल्मी अंदाज़ में घसीटते हुए नरक की ओर प्रस्थान करें या क्या जाने उस दिन भी नहीं? शायद सोचता हो, उसकी भटकती प्रेतात्मा भी छूटे हुए महान दायित्व को संभालने में सक्षम है।

वैसे तो देशवासी बात-बात में मूंछ मरोड़ते रहते हैं, पर रिटायर होने के मामले में भयंकर कायर होते हैं। इकदम बोदे, इकदम कांचू। वे वन में भले ही न डरें, पर वानप्रस्थ से डरते हैं। जैसे कुत्ते के काटने से पागल हुआ व्यक्ति पानी से डरता है, जैसे पुलिस के लोग 'लाइन हाज़िर' होने से डरते हैं, जैसे राजनेता चुनावी हार से, जैसे उपदेशक मौनव्रत से और अध्यापक कक्षा से डरता है, वैसे ही हिन्दुस्तानी पदधारक रिटायर होने से डरता है। उसके दो-चार झापड़ रसीद कर दो, चार-पांच लातें जड़ दो, मुर्गा बना दो, बस रिटायर न करो। रिटायरमेंट का नाम सुनते ही उल्टी-दस्त होने लगती है। सिरदर्द, पेटदर्द, मुंहदर्द, दांतदर्द, आंखदर्द, कानदर्द, नाकदर्द सब सताने लगता है। कुछ लोग राजयोग छूटने का नाम सुनते ही राजरोग के शिकार हो जाते हैं। किसी को मधुमेह, किसी को हृदयरोग, किसी का गुर्दा क्षतिग्रस्त, तो किसी का यकृत। एक से एक मंहगे, मजबूत और टिकाऊ राजरोग। किसी को जूड़ी-ताप हो जाता है, किसी को दमा, किसी को कब्ज़ तो किसी को गठिया। किसी को बवासीर हो जाती है, किसी को गुप्तरोग तो किसी को नामर्दी। कुल मिलाकर वे चिकित्सा विज्ञान के अद्‌भुत माडल बन जाते हैं। ये तो कहिए अंगविशेष होते नहीं अन्यथा रिटायरमेंटद्रोही जन राजनिवृत्ति के साथ-साथ रजोनिवृत्ति और स्तनकैंसर की भी शिकायत करने लगें।

रिटायरमेंटलॉजी (सेवानिवृत्ति-विज्ञान) का एक और फंडा भी है। अशुद्ध-अबुद्ध जीवात्मा स्वयं तो रिटायर होना नहीं चाहती, पर दूसरे को समय से या हो सके समयपूर्व रिटायर होते देखना चाहती है। सार्वजनिक स्थानों की बतकहियों, दफ़्तरों की कनफुसकियों और ड्राइंगरूमीय चरितचर्चाओं में अक्सर लोग अमूल्य सुझाव देते मिल जाते हैं। 'राजनेताओं के भी रिटायरमेंट की आयु सीमा होनी चाहिए।' मेरा अनुभव है कि ऐसे लोग वे होते हैं जो कभी रिटायर नहीं होना चाहते। वे परसंताप ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। 'ये नामाकूल नेता कभी रिटायर नहीं होते, मरते दम तक जनता की छाती पर मूंग दलते रहते हैं जबकि यह सुअवसर हम नामाकूलों को दिया जाना चाहिए।'

अफसरशाही देश का सबसे निर्लज्ज वर्ग है। ऐसा मैं दावे के साथ कह सकता हूं क्योंकि मैं स्वयं उसका अविभाज्य अंग हूं। चतुर-चंट अफसर रिटायरमेंट से पहले ही कटोरा लेकर खड़ा हो जाता है। 'हुजूर, किसी काम-धंधे का जुगाड़ किया जाए।' यानी कि रिटायरमेंट की वय तक अधिकारिक तौर पर जो बनकर खून चूसते रहे, पर पेट नहीं भरा। तन शिथिल, मन उससे भी ज्यादा शिथिल, पर रिटायरमेंट के लिए तैयार नहीं। ऐसे व्यक्तियों के लिए भर्तृहरि बहुत पहले कह गए हैं-

अंग गलितं पलितं मुण्डं, दशनविहीनं जातं तुण्डम्।

वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं, तदपि न मुंचत्याशा पिण्डम्।।

हमारे अफसर भी आशा का पिण्ड नहीं छोड़ते।

'माइटी-हाइटी-फाइटी' अफसरों के लिए विभिन्न आयोग, निगम, संस्थाएं आदि चारागाह के रूप में उपलब्ध हैं। हाल यह है कि घोड़ा न हो, तो गधे की ही सवारी दे दो, सिर पर चौराहा बना दो, तब भी चलेगा। अफसर में जरा भी गैरत बची हो, तो उसे सेवाविस्तार, पुनर्नियुक्ति या दैनिक वेतनभोगी के रूप में मिलने वाले प्रस्ताव से इंकार कर देना चाहिए। पर ऐसा होता नहीं क्योंकि अब अफसरों के पास सब कुछ होता है, बस ग़ैरत नहीं होती। आप चारों ओर नज़र दौड़ाइए, एक से एक सेवानिवृत्तर अफसर निर्लज्जता के साथ, राजा ययाति की मुद्रा में कुर्सी से चिपके बैठे हैं, तन-मन से मज़बूत योग्य जनों का अधिकार हड़पते हुए। सच ही, बेशर्ममेव जयते!

खेल का भी खेल कुछ कम नहीं। दुनिया जानती है कि आउटडोर खेलों या शारीरिक शक्ति वाले खेलों की प्रतिस्पधपिरक आयु लगभग 15 से 32 वर्ष तक होती है। अद्वितीय क्षमतावान खिलाड़ी हो, तो एक-दो साल और खींच ले जाएगा। बस. . .। पर हमारे हिन्दुस्तानी खिलाड़ी इस तथ्य से अपरिचित हैं, अपरिचित ही रहना चाहते हैं। अन्य देशों में क्षमता के ह्रास होते ही खिलाड़ी सम्मानजनक ढंग से स्वयं रिटायर होने की घोषणा कर देता है। पर अपने देश में जब तक खिलाड़ी की पीठ से चार इंच नीचे चार लातें मारकर 'जा फूट, बहुत हुआ' कहने का पवित्र मंत्रोच्चारण नहीं होता, तब तक वह रिटायर नहीं होता। यानी खिलाड़ी रिटायरमेंट से पूर्व चार लातें खाना अपना अनिवार्य धर्म समझते हैं।

एक समस्या और भी। यहां अगर खिलाड़ी रिटायर भी होना चाहे, तो उसके 'फैन' रिटायर नहीं होने देते। अगर 'टेनिस एल्बो' के कारण किसी क्रिकेटर का हाथ उठने से इंकार करता है और वह बार-बार बोल्ड होने की उदारता दिखाता है, तो उसके समर्थक कहते हैं, 'कोई बात नहीं।

ससुरे लंदन के डॉक्टर कब काम आएंगे। वे ऑपरेशन कर हमारे महान खिलाड़ी का महान 'टेनिस एल्बो' को महान 'क्रिकेट एल्बो' बना देंगे।' पर ऐसा हो नहीं पाता। हमार महान खिलाड़ियों और उससे भी ज्यादा महान उनके समर्थकों को यह नहीं पता कि उम्र का तकाजा होता है और एक निश्चित उम्र के बाद एक नहीं, एक सौ एक ऑपरेशन करा डालो, पर पहले जैसी बात नहीं आ सकती। ऐसे में खिलाड़ी देश के प्रति ही नहीं, अपने प्रति भी अन्याय करता है।

कमर में पीरें उठने लगी हैं, गठिया ने घुटने को जकड़ लिया है। ऐसी स्थिति में गेंद आपकी हाकी स्टिक का नमस्ते स्वीकार करने से रहा। स्पान्ड-लाइटिस हो जाने पर, टैबलेट खाकर 'हेडर' मारेंगे, तो फुटबाल कितनी दूर जाएगा, इसका अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। फास्ट बालर के कंधे में अंदरुनी चोट है, तो उसकी बालिंग की गति कितनी होगी और बाल किस दिशा में जाएगा, समझा जा सकता है। पर हमारे तथाकथित खिलाड़ीप्रेमी सुनने-समझने को तैयार नहीं होते। अंधभक्ति और व्यक्तिपूजा हावी रहती है और वे घायल-चोटिल अस्वस्थ कमज़ोर हो चुके खिलाड़ियों की पैरवी करते रहते हैं। गालिब याद आते हैं-

गो हाथ को जुम्बिश नहीं, आंखों में तो दम है,

रहने दो अभी सागर ओ मीना मेरे आगे।

कुल मिलाकर हम अ-रिटायरमेंट माहौल में घिसट रहे हैं। लोग इतने कायर हो चुके हैं कि घिसे टायर बनने को तैयार हैं, पर रिटायर होने को नहीं। पर घिसा हुआ टायर तो घिसा हुआ होता है। एक दिन अचानक फटेगा, तो बस में सवार यात्रियों को भी दुर्घटनाग्रस्त कर देगा, 'हम तो डूबेंगे सनम, तुमको भी ले डूबेंगे।' इसलिए प्यारे देशवासियों आदरणीय रिटायरणीयों को अशांति से रिटायर होने दो, उन्हें टायर होने से बचाओ। इसी में देश का भला और जिसमें देश का भला है, उसमें सबका भला है।

दारा रहा न रहा सिकन्दर-सा बादशाह,

तख़्त-ए-ज़मीं पे सैंकड़ों आए, चले गए।

ए-130, पाण्डव नगर, मेरठ-250003

मधुसूदन पाटिल

आरक्षण प्रेम कथा

यह इंडिया के इन्द्रप्रस्थ का आरक्षण सीन है। आरक्षण के कुरुक्षेत्र में अर्जुन की लाठी ऐसी चली कि साक्षात् मधुसूदन भी किंकर्तव्य विमूढ़ हो गए। कौरव सेना के महारथी ही नहीं पांडव पार्टी के भाई लोग भी मैदान में उतरने की सोच में डूबने उतराने लगे। बड़े-बड़े बयानवीरों ने अपने बयान-बाण तरकसों में वापिस रख लिए। वे समर्थन और विरोध के गहन और निहित अर्थ के चिंतन शिविर में चले गए। जिन्हें अपने बनाए डाक्टरों पर भरोसा नहीं था, वे विदेश में इलाज कराने चले गए।

भारत में यह मसला नया नहीं है। क्या महाभारत भी खानदानी आरक्षण के विरोध का परिणाम नहीं था? धृतराष्ट्र ने खानदानी आरक्षण का ही तो विरोध किया था कि सिंहासन पांडुपुत्रों को नहीं मेरे पुत्र को मिलना चाहिए। बस इसी आरक्षण अस्त्र ने भीष्म पितामह और विदुर जैसे राष्ट्रचिंतकों को चिंताजनक हालत में पहुंचा दिया था। दरबारी बेचारे न हां कह पा रहे थे न ना। आज के राष्ट्रवादी बयानवीरों को भी इस आरक्षण ने शिखंडी बना दिया है, बस, चिंतन चालू आहे।

आज के धृतराष्ट्र खानदानी आरक्षण बनाए रखना चाहते हैं। उनके मन, वचन कर्म इसी एक लक्ष्य पर केंद्रित हैं कि अपनी प्यारी संतान ही हमारे वोट बैंक की एकमात्र उत्तराधिकारी हो। किसी दूसरे वंश, जाति या क्षेत्र के नेता का हमारे अंगने में क्या काम है। पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के आरक्षण के घमासान में क्या नपुंसकलिंग को आरक्षण मांगने का अधिकार नहीं है। और यह हो गया तो विधान व संसद भवन तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठेंगे। वह भारतीय राजनीति का नृत्य संगीतमय अध्याय होगा। दर्शन का मध्यम मार्ग यही है।

ज्ञान आधारित संत समाज ने धार्मिक आरक्षण को सिरे से खारिज कर दिया था। वैष्णव भक्ति का कीर्तनमय आंदोलन तीसरी सदी में ही शुरू हो गया। संतों का वैष्णव भक्ति आंदोलन मात्र धार्मिक नहीं था। वह मंदिरों में लागू जातीय आरक्षण तोड़ने के लिए था। वह प्रभुमूरत की मुक्ति का आंदोलन था, शूद्रों और स्त्रियों को भक्ति का अधिकार दिलाने का आंदोलन था। कबीर वाणी की आंधी ज्ञान की आंधी थी, जिसने भ्रम की सारी टाटी उड़ा दी थी। उनके कीर्तन क्रांतिकारी साबित हुए।

आधुनिक अर्थ आधारित समाज में आर्थिक आरक्षण तो बीसवीं सदी से ही लागू है। शिक्षा और नौकरी दोनों में आर्थिक आरक्षण क्या पहले से ही लागू नहीं है। डोनेशन सीट, मैनेजमेंट कोटा, एमएलए कोटा, आर्थिक आरक्षण नहीं तो क्या है। नौकरी में पेड सीट पहले ही आरक्षित है। आम आदमी की संतान के भाग्य पर नौकरी की 'गली विच ने एंट्री' की तख्ती पहले ही लटकी है। फिर यह महाभारतीय रामलीला किसलिए? राजनीतिक मंच पर खुल्लम-खुल्ला प्यार करना मना है। चोरी-चोरी चुपके-चुपके क्या-क्या नहीं होता। यह आरक्षण भी उस प्यार की तरह अनंत और ज्वलंत है, जो सौ साल पहले भी था, आज भी है और कल भी रहेगा। यह वोट प्रेम का अमर गीत है।

1041, अर्बन एस्टेट-2
हिसार-125005

सुदर्शन वशिष्ठ

बनना उपाध्यक्ष साहित्य का

'मुबारक हो . . .मुबाकर हो. . .।' सुबह ही फोन बजने लगे। कुछ लोग होते हैं जो दूसरों की चिंताएं ओढ़ सोते जागते हैं और सुबह उठते ही फोन करना शुरू कर देते हैं। कई फोन पर ही अखबार की बेहूदी खबरें सुनानें लग जाते हैं।

सब से पहला फोन उस लेखक कहलाने वाले व्यक्ति का था जो पिछले दस साल से लिखना छोड़ चुका था।

'कहां बैठेंगे अब आप . . .कार्यालय कहां होगा।' दूसरा फोन संपादक का था जिसे, अपने सिवा सब साहित्यकारों में अवगुण ही अवगुण दिखलाई पड़ते थे।

'अरे भाई, कुछ मिलेगा भी।' तीसरा अपनी पीड़ा छिपा न पाया।

'कार कौन सी ले रहे हैं। . . .एस्टीम या स्कोर्पियो। नोवा या स्कोडा लीजिए। हम भी झण्डी वाली कार में बैठेंगे।'

जिस बात का डर था, वही होने जा रहा था। निर्मोही ने संकोचवश किसी अखबार में खबर नहीं दी थी। वैसे भी अखबार में खबर कुछ देते हैं, तो छपता कुछ है। एक हितैषी अधिकारी ने एक अखबार में बयान दे डाला जिससे कुछ लोगों के कान खड़े हो गए। अरे, पंकज निर्मोही को उपाध्यक्ष बना दिया . . .बनाया नहीं, वह अपनी कोशिश से बना है, बड़ा मीसणा है, आदि खुसर फुसर होने लगी। अखबारों में कुछ खिलाफ छापने के लिए मंत्रणाएं होने लगीं। कुछ ने बोल्ड बनते हुए ड्राफ्ट भी बना डाला कि किसी और के नाम छपवाएंगे।

. . .हां भई, इतने लंबे समय से संस्कृति विभाग से जुड़े रहे हो, साहित्यकार भी हो, तुम से ज्यादा उपयुक्त व्यक्ति और कौन हो सकता है. . .एक मित्र से लगने वाले वरिष्ठ साहित्यकार ने लंबा उच्छ्वास लेते हुए कहा।

यूं तो सरकार में अनेक बोर्ड, निगम और संस्थान होते हैं जिन में मंत्री, एमएलए और पार्टी के वरिष्ठ कार्यकर्ता अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तैनात किए जाते हैं। कई संस्थानों के अध्यक्ष मुख्यमंत्री होते हैं तो उपाध्यक्ष कोई अन्य भाग्यशाली। प्राय: उपाध्यक्ष को वेतन, भत्ते, कार्यालय, पी.ए., वाहन, सरकारी आवास आदि की सारी सुविधाएं दी जाती हैं। कइयों को तो केबिनेट मंत्री का दर्जा दिया जाता है।

साहित्य का उपाध्यक्ष और उस पर तुर्रा यह कि साहित्यकार ही लगाया जाए, कुछ अजीब सी बात थी। अत: अधिसूचना जारी होने में काफी समय लग गया। गर्भाधान से प्रसव तक जितना समय लगता है, उतना ही समय अधिसूचना निकलने में लगा। कुछ घनिष्ठ और करीबी मित्रों ने इस साहित्यिक अधिसूचना में कई कुछ लिखवा दिया। संस्कृति सचिव द्वारा जारी इस अधिसूचना में 'आप उपाध्यक्ष नहीं होंगे' . . . यह वाक्य ही नहीं था, बाकि तमाम नकारात्मक वाक्य उसमें जोड़े गए थे।. . .आपको किसी प्रकार का मानदेय देय नहीं होगा, आप किसी प्रकार की बैठक की अध्यक्षता नहीं करेंगे। बेशक आप उपाध्यक्ष हैं, आपको फाइल नहीं भेजी जाएगी, आप का किसी प्रकार का दखल संस्थान में नहीं चलेगा आदि आदि। हां, एक सकारात्मक वाक्य था कि आपको मुख्य बैठक में आने के लिए टीए-डीए दिया जाएगा। यह बात अलग थी कि यह बैठक एक सरकार के पांच साल के कार्यकाल में केवल एक बार होती है।

हां, निर्मोही से पहले भी एक बदनसीब साहित्यकार उपाध्यक्ष बने थे। उन्हें कार्यालय में बैठने की तो क्या, खड़े होने की भी जगह नहीं मिल पाई थी।

जब एक मेहरबान अधिकारी ने आग्रहवश उपाध्यक्ष की फाइल चलाई तो कुछ साहित्यकार मित्रों (!) ने आश्वासन दिया था निर्मोही को कि हम आपके उपाध्यक्ष बनने का विरोध नहीं करेंगे।

. . .सरकार की अधिसूचना गर्भ में हाथ डालकर निकालनी पड़ी है, एक ने कहा था। वर्डिंग ठीक तरह लिखवा लेना, नहीं तो कोई ऐसी घुण्डी मार देगा कि न लेते बनेगा न छोड़ते। और वैसा ही हुआ। अधिसूचना में लिखा था : बहुए सारा घर तेरा पर देखणा, कहीं हाथ लगाना।

साहित्य का उपाध्यक्ष. . .यह क्या होता है, किसी ने कहा, पर्यटन का उपाध्यक्ष सुना है, परिवहन का उपाध्यक्ष सुना है, बैंक का उपाध्यक्ष सुना है. . .जंगल, पानी, भेड़-ऊन, रेत-बजरी, ईंट-पत्थर, कूड़ा-कर्कट का उपाध्यक्ष सुना है, यह साहित्य का अध्यक्ष पहली बार सुना और वह भी एक लखारी। अरे लखारियों के लिए क्या स्कूल कॉलेज बंद हो गए जो राजनीति में हाथ पांव मारने लगे। यह साहित्य का संस्थान ही बंद करवा देना; न रहणा बांस और न बजणी बांसुरी. . .जितने मुंह उतनी बातें फैलने लगीं। उपाध्यक्ष का उच्चारण करते हुए साहित्यकार एक दूसरे पर मुंह का थूक झाड़ने लगे।

हरियाणा में रेत बजरी का उपाध्यक्ष बहुत बड़ा आदमी होता है। जब वह हिमाचल आता है तो एके 47 लिए गनमैन उसके आगे पीछे रहते हैं। उसकी गाड़ी इतनी बड़ी है कि पूरा जहाज लगता है।

निर्मोही के मन में अपनी बिरादरी के प्रति करुणा जागी। अंतत: कुछ दिनों बाद बड़ी मेहनत से त्याग पत्र का ड्राफ्ट तैयार किया। तीन चार बार लिखकर फाड़ा। फिर लिखा।

अब तक सचिवालय में फेरबदल हो चुका था। संस्कृति सचिव नये थे। उन्होंने त्याग पत्र हाथ में लेते हुए पूछा, 'क्या-क्या सुविधाएं मिल रही हैं आपको।'

'सुविधा तो कुछ नहीं, बस दुविधा ही दुविधा है।'

'तो रहने दीजिए न। त्याग पत्र देने की

शेष पृष्ठ 51 पर. . .

हरदर्शन सहगल

दूसरा जश्न

भीखम पंडित बेहोश होकर प्लेटफार्म पर गिर पड़ा। उसके हाथ में एक भिंचा हुआ खत दिखाई दे रहा था।

ऐसी बात नहीं कि जो लोग, पंडित की यारी का दम भरते थे, दूर खड़े थे या उन्होंने पंडित को गिरते न देखा हो। बस उनकी प्रतिक्रिया इतनी भर हुई कि उन्होंने अपना समूचा ध्यान उठाकर साहब के चेहरे पर टांक दिया था।

मैं जानता था, साहब स्टेशन पर जल्दी पहुंच जाएंगे। इसलिए सारा काम छोड़कर भागा आया।

साहब जानते हैं, हम सब हमेशा 'सी ऑफ' करने जरूर आते हैं। सो आपको थोड़ा जल्दी स्टेशन पर आना पड़ता है।

– साहब, बंगले पर कोई काम हो तो बताते जाएं।

– अरे तुम फिक्र मत करो। मैं मेम साहब से फोन पर पूछता रहूंगा।

– आपके बिना ऑफिस बिल्कुल ही सूना हो जाता है साहब।

– साहब. . .साहब. . .साहब. . .

पहले, लंबे, धीमे, ऊंचे किंतु गंभीरता धारण किए हर स्वर का एक विशिष्ट प्रभाव साहब के चेहरे पर पड़ रहा था।

आंखों की चमक बढ़ जाती। मुख मण्डल कुछ अधिक खूबसूरत बन जाता। टाई झूमने लगती। गर्दन को हल्का सा झटका देकर पीछे ले आते तो बहुत बड़े लगते साहब।

थोड़े-थोड़े वक्फे से कोई सिगरेट पेश करता। दूसरा झट से उसे माचिस से जलवाता। कोई पान ला देता। पहले मुंह चलता देखकर दूसरा पान उनकी सीट पर रख जाता।

– साहब, आप कब लौटेंगे?

– साहब! आज तो बहुत से पेपर्स पर आपके साइन होने से रह गए।

– इस से कई बेचारों का काम रुका रहेगा। वे थोड़ी प्रतीक्षा कर लेंगे तो क्या कहर ढे जाएगा उन पर।

साहब . . . साहब. . .

– हम बस परसों ग्यारह बजे की गाड़ी से लौट आएंगे। इतने वाक्यों को सुनने के बाद साहब ने एक वाक्य सुनाया।

– स्टेशन पर हाजिर मिलूंगा।

एक वाक्य के थमते ही दस बारह मुंहों ने नारा लगाया।

– ठीक है। आप लोग अटैंन्डेंस की चिंता मत करना। साहब के अधिक निकट खड़े सुपरवाइजर ने अपने मुंह से सारी फराख दिली उड़ेल कर रख दी।

गाड़ी स्टार्ट होने में अभी दस मिनट बाकी थे। सभी यात्री तेजी से अपने-अपने डिब्बों की खोज में भागदौड़ मचा रहे थे।

यात्रियों की ठोकरों से लुढ़कता हुआ भीखम पंडित ऐन साहब के कदमों के बीचों-बीच जा फंसा।

– अरे यह क्या है। हटो। साहब चौंके। सोचा शायद कोई भिखारी है। घृणा से नाक सिकोड़ते हुए तीन कदम पीछे हटे। उसी फुर्ती से पंडित रोलर की मानिन्द तीन कदम साहब की तरफ लुढ़का।

साहब को यह दृश्य प्रेत छाया सा लगा। लेकिन दस बारह लोगों के बीच होने के कारण वे बेहोश नहीं हुए। अपने आपको संभाला तो पहचान गए।

– अरे यह तो अपना भीखम पंडित लगता है।

– कहो भाइ क्या तकलीफ है?

साहब ने सहानुभूति का अमृत जल छिड़का तो भीखम पंडित के मुंह से 'साहब' निकला। तब वह फुर्ती से उठकर खड़ा हो गया। लेकिन इसका अगला शब्द सुनने से पहले, साहब का घेरा डाले सभी जने बेहोश हो कर गिर पड़े।

भीखम पंडित जल्दी-जल्दी भावावेश में बोले जा रहा था शायद किसी को आपके प्रोग्राम का पहले से पता नहीं था। खैर मैं तो छुट्टी पर था। कई दिनों से यह सारे बाबू मेरे पीछे पड़े थे लड़का हुआ है। पार्टी खिलाओ। तुम्हें चपरासी थोड़ा समझते हैं। तुम तो हमारे यार हो।

– हूं-हूं. . .साहब ने सिर को ऊपर नीचे किया तो भीखम पंडित का भरभर्राया स्वर फिर सुनाई देने लगा।

– दफ्तर से छुट्टी ली। सारा दिन इंतजाम में जाया किया। बढ़-चढ़कर पैसा लगाया। रौनक में यह लोग आए तो सारे थे, परंतु रंग में भंग डालने। अपने आप उतावली से लिफाफों से रसगुल्ले, गुलाब जामुन और बर्फी निकाल-निकाल कर गटकने लगे। कड़ाही में हाथ डाल-डाल कर हलुआ फांकते हुए बारी-बारी से भागने लगे। किसी ने कहा- पेट बुरी तरह से दुखने लगा है। किसी ने कहा– पत्नी को ब्लीडिंग होने लगा है। एक ने कहा, अचानक घर पर मेहमान आ गए हैं।

– हर एक पर एक साथ टूट पड़ी विपत्तियों से मैं हक्का-बक्का रह गया। इतनी सारी चाय फेंकनी पड़ी। मैजिक शो वाले को फोकट में ही पैसे देने पड़े। सब का सब बदमजा हो गया साहब।

बिना साहब की मुखाकृति की ओर अधिक ध्यान दिए भीखम पंडित तेज रफ्तार से जबान दौड़ाए चला जा रहा था ताकि गाड़ी दौड़ने से पहले वह ट्रेजिडी बयान कर दे।

– साहब! मेरी पत्नी एकदम कुढ़ गई। बोली- इन्हीं लोगों की दोस्ती का दम भरते थे। अब जाकर यह चिट्ठी डाल आओ। तीन रोज से लिखी पड़ी है। जाओ-जाओ मेरा मुंह क्या देख रहे हो। मैं सारा सामान समेट लूंगी।

सोचा, क्यों न चिट्ठी गाड़ी में ही पोस्ट कर दूं। दूर से देखा, अपने ही बाबू लोग लगते हैं। लेकिन यकीन नहीं हुआ कि यह लोग ऐसा भी कर सकते हैं। पुष्टि करने के लिए और नजदीक चला आया। सबको

शेष पृष्ठ 51 पर. . .

रोमेश जोशी

माचिस कैसे जलाएं

माचिस देश में हर जगह उपलब्ध है। गैस लाइटर के आगमन के बावजूद घर में कहीं भी पड़ी हो सकती है। अस्तु, एक ऐसी माचिस लें, जिसमें तीलियां हों। माचिस को बाएं यानी लेफ्ट हाथ में उठाएं। माचिस के बाहरी खोल के अंदर फंसाए गए दराज अर्थात ड्रावर को अंगूठे के हलके से दबाव से जरा सा बाहर निकालें। ध्यान रहे, अंगूठे पर इतना दबाव न डालें कि दराज पूरा बाहर निकल जाए। अन्यथा तीलियां जमीन पर बिखर जाएंगी और उन्हें वापस उठाने में आपके घुटने, कमर और पेट को असहनीय व्यायाम करने जैसी पीड़ा हो सकती है।

ड्रावर के बाहर आने पर तीलियां दिखाई देने लगेंगी। दाहिने/राइट हाथ से एक तीली उठाएं। तीली के एक सिरे पर काला या हरा पदार्थ लगा होगा, जोकि ज्वलनशील है। तीली को इस सिरे से न पकड़ें। दूसरे सिरे से पकड़ लें। फिर बाएं हाथ में पकड़ी माचिस के पतले वाले पहलू पर ध्यान दें। हैरानी की बात है, आप जैसों के होते हुए, अभी तक हर माचिस पर उसे जलाने की प्रक्रिया छापना अनिवार्य नहीं किया गया।

अब माचिस के इस पतले पहलू पर दाहिने हाथ की अंगुलियों में पकड़ी तीली को होले से रगड़ें। बस, इतना होले से जैसे बाथरूम में प्रवेश करते हुए आपकी तोंद या कूल्हे दरवाजे की चौखट से रगड़ा जाते हैं।

एक बार रगड़ने पर न जले तो थोड़ा जोर लगाकर दूसरी बार रगड़ें। इतना जोर न लगाएं कि तीली टूट जाए। और टूट जाए तो भी परवाह नहीं। दूसरी, तीसरी, कई तीलियां हैं ना! आपको सिखाने के लिए तो इस देश की कई माचिसें न्यौछावर की जा सकती हैं। प्रयास करते रहें। आपको अपने आप पर विश्वास होना चाहिए। पक्का इरादा होना चाहिए। ध्यान रहे, लोग आपकी ओर अभी भी अपेक्षा से देख रहे हैं। जिस तरह आपने रगड़ने, घीसने, पछीटने, पलटी मारने जैसे बहुत से काम सीखे, यह भी सीख लेंगे। फिर भी कोई अड़चन हो, तो मुझे फोन करके पूछ लें या राजधानी बुलवा लें।

दोस्तो, माचिस जलाने की यह विस्तृत विधि बताने का कारण काफी गंभीर है। वो क्या है कि इस देश की जनता बरसों से इंतजार कर रही है कि देश के नेता क्रांति की मशाल जलाएंगे, पर उसकी पहल भी कहीं दिखाई नहीं दे रही। अभी कुछ दिन पहले एक कार्यक्रम में नेताजी के दर्शन हो गए। भाषण देने से पहले और गले में हार डलवाने के बाद उनके लिए जरूरी था कि तस्वीर के आगे रखा एक छोटा-सा दीपक जलाएं। आजकल दीपक जलाना हर कार्यक्रम का अनिवार्य कर्मकाण्ड होता है।

उद्घोषणा के बाद वे ऐसे मुस्कुराते उठे थे, जैसे माचिस जलाना उनके बाएं हाथ का खेल है। मुझे देखकर खुशी हुई कि तस्वीर के सामने पहुंच कर उन्होंने माचिस जलाने के कार्य को बाएं हाथ का खेल नहीं समझा।

माचिस हाथ में लेकर उन्होंने सावधानी से अपनी तोंद को पीछे कर लिया, ताकि गलती से जलता हुआ गुल नीचे गिरे तो तोंद और सिन्थेटिक खादी के कपड़े सुरक्षित रहहें। अलबत्ता, तोंद को पीछे करने की इस प्रक्रिया से फोटो उतरवाने के प्रयास किए, किंतु सारी सावधानी के बावजूद माचिस नहीं जली, तब तक आयोजक ने आगे आकर तीली जलाकर उन्हें दी। नेताजी ने तीली के बुझने से पहले दीपक जला दिया और उपस्थित जनता ने जोरदार तालियां बजाई।

नेताजी के दर्शन के साथ इस घटना ने मुझे यह ज्ञानवर्धक लेख लिखने की प्रेरणा दी, यह सबक मिला कि क्रांति की मशाल जलाने की जिन नेताओं से अपेक्षा की जा रही है, उन्हें सबसे पहले माचिस जलाने का प्रशिक्षण देना जरूरी है। अस्तु, विधि ऊपर लिख दी गई है। अब इसे नेताजी को पढ़वाना आपका काम है, क्योंकि आप तो जानते हैं, हमारे नेताओं को कुछ भी ज्ञानवर्धक पढ़ने की आदत नहीं होती।

और चाहें तो देश के नेता भी यह सबक ले सकते हैं कि जब वे एक जरा-सा दीपक जला देते हैं, तो जनता प्रसन्नता से तालियां बजाने लगती है, वाकई अगर किसी दिन उन्होंने मशाल जला दी तो जनता क्या करेगी, बल्कि क्या नहीं करेगी?

51 रूपरामनगर कालोनी
माणिकबाग रोड, इन्दौ

. . . पृष्ठ 49 का शेष

क्या जरूरत है. . . ये कोई प्रधानमंत्री का त्यागपत्र थोड़े ही है। लीजिए, रख लीजिए।'

सचिव द्वारा मुस्करा कर सहज भाव से लौटाया त्याग पत्र उस जेब में सहेजकर रख लिया निर्मोही ने जिससे कल ही बटुआ खोया था।

'अभिनंदन'
कृष्ण निवास लोअर पंथाघाटी, शिमला (हि.प्र)

. . . पृष्ठ 50 का शेष

सही सलामत देखकर होश खो बैठा। यहां तो दूसरा ही जश्न मनाया जा रहा है- 'सी ऑफ जश्न. . .'

अचानक साहब के खंखारने की आवाज सुनकर भीखम पंडित की आवाज अटक कर गायब हो गई। साहब का चेहरा देखा। पूरी तरह से तमतमाया हुआ था। उन्हें अपनी तरफ बुरी तरह से घूरते देखकर भीखम पंडित दुबारा बेहोश होकर गिर पड़ा।

तभी गाड़ी चल पड़ी। साहब लपक कर अपने कम्पार्टमेंट में चढ़ गए।

उन्होंने बाहर झांककर देखा- ज्यादातर बेहोशों के हाथ 'टाटा' की मुद्रा में हिल रहे थे।

5-ई-9 'संवाद'
डुप्लै

कैलास चन्द्र

खरबूजे का रंग

कहावत है खरबूजा खरबूजे को देखकर रंग बदल लेता है। मैंने देखा तो नहीं पर विश्वास किए लेता हूं कि इस रंग बदलती दुनिया में जरूर बदल लेता होगा। दोनों एक ही नस्ल के जो हैं। अपनों को देख कर कौन नहीं बदल जाता। फिर ये तो फल है। जब जैसा मौका होता है लोग उसी के अनुरूप अपने को रंग लेते हैं।

रंग बदलना एक कला है। हर एक को यह कला नहीं सधती। जो साध लेते हैं वे मनस्वी होते हैं। नेता जब भाषण देता है उसके सामने गरीब जनता बैठी होती है। उस क्षण उसके भीतर मसीहाई जाग उठती है। उसका रंग उस समय बदल जाता है। उसे गरीबी सूझने लगती है, गरीब याद आ जाता है, विकास दिखने लगता है, शिक्षा और रोजगार दिखने लगता है, किसान की दुर्दशा याद आने लगती है। आम आदमी का रंग नेता पर चढ़ा होता है। वह जानता है कि यह वक्त गरीबों पर बोलने का है। लौटकर जब राजधानी जाता है, वह रंग बदल लेता है। क्योंकि अब उसके सामने माहौल बदल गया है। वह सैक्स में तल्लीन हो जाता है, घपले उसे लुभाने लगते हैं, अपनों को लाभ पहुंचाना याद आ जाता है, क्षेत्रीयता उस पर हावी हो जाती है। नेता वही बस उसकी फितरत के तरबूज रंग बदल लेते हैं।

आप कभी यूनीवर्सिटी गये हैं। बाहरी दीवारें चाहे सफेद रंग में पुती हों पर वहां घुसते ही आपको जात-पात के रंगारंग कार्यक्रम दिखने लगते हैं। आप जाकर किसी विभाग के विभागाध्यक्ष नामक प्राणी की जात का पता करें। आप पायेंगे कि उस विभाग में अधिकांश उसकी ही जात के भरे हैं। उनमें से कुछ जो बेमेल जाति के हैं, वे पहले वाले विभागाध्यक्ष के द्वारा अपनी जात के भरे हुये हैं। चपरासी भी विभागाध्यक्ष की जात का मिल जायेगा। जैसे फिजिक्स फैकल्टी में सब कायस्थ भरे हुए मिलेंगे। क्योंकि विभाग का प्रमुख भटनागर कायस्थ था और देश के सभी भटनागरों को विभाग में नौकरी देना चाहता था। उस वक्त थोक में उतने मिले नहीं। मजबूरी में तब माथुर, सक्सेना और खरे लोगों को लेना पड़ा। इसी तरह दर्शन शास्त्र में विभागाध्यक्ष तिवारी जी थे और वहां बांभनों का परचम लहराये हुए थे। उन्होंने तो प्रतिज्ञा कर रखी थी कि शोध भी वे बांभनों के अलावा किसी दीगर जात वाले को नहीं करायेंगे। वे जब तक स्वर्गवासी नहीं हुए अपने इस अभियान को सफल बनाते रहे। अब उस जगह एक कुरमी आ गया है और उसे आते ही अपनी जात वालों की भरती की तलब लग आई है। विभागों के भीतर सफेदी कभी भी अपना आसन नहीं जमा पाई।

चुनाव में तो जात का रंग इतना उभर कर आता है कि आंखें चुंधिया जाती हैं। जिस जात का उम्मीदवार होगा उसका रंग उसकी बिरादरी वाले टोलों में छपाक से गिरता है और तत्काल उस रंग में एक बड़े धब्बे में तब्दील हो जाता है। मंत्री बनाने के लिए जात के रंग की धौंस दिखाई जाती है। प्रतिनिधित्व की लड़ाई इसी के बूते पर लड़ी जाती है। उम्मीदवार भी जात के रंग के आधार पर खड़े किए जाते हैं। इस जात के रंग की इस क्षेत्र में बहुलता है इसलिए उसी जात वाले सोहन जी को टिकट देना ठीक रहेगा। वोटर का रंग उम्मीदवार की जात को देखकर रंग बदल लेता है। जब कभी मंत्री के विभाग में नियुक्तियां होंगी तो उसी की जात का रंग बरसेगा। उसी जात वाले के अवसर हैं अब आगे बढ़ने के। अब जितना भी लाभ है घंघोर कर उसे ही पिलाया जायेगा।

जब दो धर्मगुरू मिले तो पहले तो दोनों एक दूसरे को देखकर गुर्राये। एक दूसरे को पोंगा और अज्ञानी कहा, पहले ने दूसरे को ढोंगी कहा तो दूसरे ने पलट वार करते पहले को पाखण्डी कह दिया। फिर उनकी समझ में जल्दी आ गया कि उनके उद्देश्य तो एक ही हैं अर्थात धर्मप्राण जनता को मूर्ख बनाये रखना। एक का रंग दूसरे के रंग में बदल गया। उन्होंने रास्ता बदल दिया, तुम अपनी दुकान चलाओ, हम अपनी चलाते हैं। तुम चमत्कार दिखाओ हम भी दिखाते हैं। तुम चेले बनाओ हम भी बनाये लेते हैं। झगड़ा किस बात का? हमारा सिंहासन इधर तुम्हारा उधर। बीच में जनता की बफर स्टेट। तुम अपना ब्राण्ड चलाओ हम अपना चलाते हैं। हैं दोनों पहुंचे हुए आध्यात्मिक गुरू। रंग से रंग बदल गया।

दंगे जब होते हैं तो घर और दुकान विधर्मी की जलाई जाती है, छूरा दूसरे कौम वाले के पेट में घौंपा जाता है। इज्जत अपने वालों की नहीं उनकी लूटी जाती है। सम्पत्ति उनकी हड़पी जाती है। कौम को देखकर रंग बदल जाता है।

जो सबल होता है निर्बल उसके रंग में जबरन रंग जाता है। स्वार्थ के रंग भी इसी तरह बदलते हैं। इराक के मामले में अमरीका के रंग को देखकर ब्रिटेन और फ्रांस ने अपना रंग बदल लिया। अमरीका के रंग के सामने अन्य देशों के रंग फीके पड़ जाते हैं। इसलिये वे अमरीका के अनुरूप रंग बदल लेते हैं। अमरीका पर दादागिरी का रंग चढ़ा है। इसलिए सब उसकी दादागिरी मानते हैं उसके रंग के अनुरूप न चलें तो वह अपना रंग जमाने के लिए किसी भी देश पर आक्रमण कर देगा। आरोप लगायेगा कि उस देश ने जैविक हथियार बना कर छुपा रखे हैं, उसके यहां बमों का बहुत बड़ा जखीरा रखा है। उस देश में मानवाधिकारों का हनन हो रहा है, वहां कत्लेआम किया गया है, आदि।

अमेरिका पर पूंजी का रंग चढ़ा है जो काला होता है। यह कालिमा अमेरिका दूसरे देशों पर मलना चाहता है। कम्युनिस्टों का

रंग लाल है। लाल रंग काले रंग के सामने नहीं दबता। अमेरिका में कम्युनिस्ट बहुत बड़े दुश्मन हैं। यही वजह है कि अमेरिका क्रांति की, आजादी और शांति का मुखालफत करता रहता है। उसके प्रजातंत्र का रंग तानाशाही के रंग में घुलकर चेहरा बदल देता है। वह तानाशाही को बल देने लगता है और वहां प्रजातंत्र की भावना को कुचलने में मुख्य भूमिका अदा करता है।

साहित्य में भी रंग बदलने का खेल जारी है। रचना, लेखक और समिति जब एक रंग के हो जाते हैं आप तब पुरस्कार का चटख रंग देख सकते हैं। लेखक और सम्पादक के एक रंग के हो जाने पर रचना बेरंग होते हुये भी छपकर यश की भागी बन जाती है। मैंने इधर बहुत से ऐसे साहित्यकार देखे हैं जो रचना की दृष्टि से नितांत फीके होते हुए भी ऐसे रंगीन मिजाज कि एकदम मटुकनाथ लगते हैं। कुछ की प्रगतिशीलता का रंग पुरस्कार, जुगाड़, नियुक्ति के अलग-अलग रंगों में घालमेल कर जाता है। सर्वहारा की संवेदना को वे अपनी अय्याशी की चाशनी में डुबकी देते हैं और मजा ये कि फिर भी क्रांतिकारी बने रहते हैं। मजदूरों के लिए गुहार और बड़े नेता की अटैची की लदान एक साथ करते वे जरा भी नहीं शरमाते। वे अपना रंग बदल लेते हैं। रंग बदलना अगर कला है तो वे इस कला के सबसे बड़े कलाकार हैं। रंगों के ऐसे खिलाड़ी जिन्हें रंगहीन बनते भी देर नहीं लगती। उन्हें आप लाभ का पद दिला दो वे कीचड़ पोतने में संकोच नहीं करेंगे। कीचड़ को वे सर्वहारा का लेप कह देंगे और आप उनका कुछ नहीं बिगाड़ पायेंगे। साहित्य के अंगना में वे अपने स्वार्थों की रंगोली सजाये बैठे हैं आपकी रंगों की होली चाहे कितनी असरदार हो उनके कीचड़ पर भारी नहीं पड़ सकती।

तो मित्रो! रंग बदलो, बदलना सीख लो, यही गुण आपको जीवन भर रंग देगा।

वाणसागर रोड, फूलमती मंदिर के पास
तहसील-हुजूर, जिला रीवा, म.प्र.

राजकुमार आत्रेय

बिस्लेरी हैं न!

नेता जी को उस रात कई दिन बाद पूरे परिवार के साथ भोजन करने का अवसर मिला था। दिन रात दौरों पर रहना पड़ता था उन्हें। इसलिए साथ भोजन करने का समय ही नहीं मिल पाता था। उनके बाईं ओर बैठी थी उनकी धर्मपत्नी और ठीक सामने बैठे थे बेटा-बेटी। बेटा गर्मी की छुट्टियों में घर आया हुआ था। वह पहाड़ों में स्थित किसी महंगे पब्लिक स्कूल में पढ़ता था।

नेता जी हमेशा बोतल-बंद पानी पीते थे। स्वास्थ्य का तो ध्यान रखना ही पड़ता है न। वरना अस्वस्थ होते कितनी देर लगती है। जब भोजन के बीच में पानी पीने लगे तो अचानक कोई बात उन्हें याद आ गई और हाथ में थमा गिलास मेज पर रखते हुए बोले- 'मर गए!'

पत्नी चौंकी। तुरंत पूछा, 'क्या हुआ? कौन मर गया?'

बेटा-बेटी भी उत्सुकतावश पिता के मुंह की ओर ताकने लगे थे।

'और तो कौन मरेगा, मुझे ही मरना होगा।' नेता जी ने उदास होते हुए कहा।

'शुभ-शुभ बोलो जी। मरें तुम्हारे दुश्मन। बताओ तो सही, क्या हुआ?' चिंतित हो उठी थी पत्नी।

'चुनाव सिर पर आ गए हैं और मैं अब तक भी अपने चुनाव क्षेत्र में पीने के पानी का उचित प्रबंध नहीं करवा पाया हूं। वोट मांगते समय मैंने पक्का वायदा किया था। पर ऐसी भूल लगी कि पूछो मत . . .अब की बार तो निश्चित रूप से चुनाव हार जाऊंगा।'

'पापा! इस प्रॉब्लम को तो मिनटों में हल किया जा सकता है।' बेटे ने चुटकी बजाते हुए कहा। उस का स्वर उत्साह से छलछला रहा था।

'वह कैसे?' तुरंत पूछा नेता जी ने।

'बिस्लेरी है न, पापा! चुनाव से ठीक पहले हम हर वोटर के पास बिस्लेरी की एक-एक बोतल पहुंचा देंगे। कहिए, कैसी रही?' खिलखिलाते हुए कहा था नेता-पुत्र ने।

864-ए/12 आजाद नगर
कुरुक्षेत्र-136119

के.पी. सक्सेना 'दूसरे'

लायसेंस

शहर की व्यस्त सड़क पर आगे जा रहे ठेले ने अचानक दाहिनी ओर अपना ठेला मोड़ लिया। पीछे आ रहे राजेश की गाड़ी ठेले से टकराते-टकराते बची। उसे गुस्सा आ गया और वह ठेले वाले को रोक कर चीखा, 'तुम्हें ठेला चलाने की तमीज नहीं है? मोड़ने के पहिले हाथ क्यों नहीं दिखाया? मैं टकराते-टकराते बचा।'

'साहब, ड्राइविंग लायसेस तो आपने लिया है, ढंग से वाहन चलाने की जुम्मेदारी आपकी है ना कि मेरी।'?

शांतिनगर टाटीबंध
रायपुर (छ.ग.) 492099

यू एस एम पत्रिका
रजत जयंती
विशेषांक
हरिसिंह पाल, बद्रीनारायण तिवारी
देवशंकर नवीन, शंभुनाथ
श्यामसिंह शशि, सुधेश
सतीश श्रोत्रिय
आदि
संपादक : उमाशंकर मिश्र

संपर्क
695 न्यू कोट गांव
(तेजाब मिल) गाजियाबाद

आशा रावत

हंसो, हंसो मगर. . .

एक बार मैं अपने मित्र के साथ कहीं जा रहा था। साथ में हम दोनों की पत्नियां तो थी ही, मेरी सास भी थीं। दुर्भाग्य से हम स्टेशन दो घंटे पहले पहुंच गए थे, अतः महिलाओं को सादर सीट पर बिठा कर हम दोनों यह कहते हुए बाहर निकले कि पौने नौ की ट्रेन है और अभी पौने सात हो रहे हैं तो हम थोड़ा टहलकर एक घंटे मैं आते हैं। पत्नी ने मेरी कलाई में बंधी घड़ी की ओर संकेत कर समय का ध्यान रखने की हिदायत दी तो में आश्वासन की मुद्रा में मुंडी हिला कर अपने दोस्त के साथ नीचे उतर गया। हम दोनों अपने प्लेटफार्म से निकलकर एक नबंर के प्लेटफार्म पर आ गए और घूमते, बतियाते, मूंगफली टुनकते हुए मार्निंग वॉक करने लगे। थोड़ी देर बाद मित्र ने पूछा, 'कितना समय हुआ है?' मैंने घड़ी देखकर कहा, 'अभी तो पौने आठ ही हुए हैं। पूरा एक घंटा शेष है।' हमने तय किया कि उन महिलाओं की कच-कच सुनने से तो अच्छा है कि इस शेष समय को यहीं बिता लिया जाए। अब हम टहलते हुए एक बुक स्टाल पर जा पहुंचे और बारीकी से किताबें टटोलने पढ़ने लगे। कुछ मनपसंद पुस्तकें ले भी लीं। थोड़ी देर बार पुनः मित्र ने घड़ी देखने की याद दिलाई। मैंने देखा तो पाया कि अभी भी उसमें पौने आठ ही बज रहे हैं। कम्बख्त जाने कब से बंद थी। किसी से पूछने पर पता चला कि पौने नौ बज चुके हैं। बस जी, फिर क्या था! हम पैरों पर पंख लगाकर भागे। भागते-भागते पसीना छूट गया पर गाड़ी हमारे पसीने से पहले छूट गई थी।' 'अरे. . .' सबने एक साथ कहा और जोर-जोर से हंसने लगे।

'फिर क्या हुआ?' किसी ने पूछा।

'अजी, फिर क्या होना था। कहां वह आरामदायक रिजर्व ए.सी. सीट और कहां हम बाद में दूसरी ट्रेन के जनरल डिब्बे में तुड़-मुड़ कर गये।'

उनके सुनने का ढंग ऐसा था और बोलते हुए उनके चेहरे पर ऐसे दैन्य भाव आते थे कि सुनने वाले हंस-हंसकर दुहरे हो जाते।

वे आगे बोले, 'यों हमारी तीनों मैडमें सुविधाजनक सफर से ठीक-ठाक घर पहुंच गईं। मेरी पत्नी ने तो खूब खरी-खरी सुनाई पर सास बेचारी कुछ बोल भी नहीं सकती थीं, फिर भी अपने मन में यह तो, कहती ही होंगी कि कैसे आदमी को अपनी बेटी दे दी।

हंसी की लहर एक बार फिर उठी और जोर-शोर से उमगने के बाद धीरे-धीरे थमी।

मैंने कौतुक से उस व्यक्ति की ओर देखा। अच्छा-खासा खाते-पीते घर का लग रहा था उसका स्वास्थ्य। उम्र उसकी चालीस के आसपास होगी, फिर भी प्रौढ़ोचित गरिमा की अपेक्षा स्वयं को केंद्र में रखकर चुटकुले सुनाने की आसक्ति. . .। आश्चर्य! फिर मैंने उसके किस्सों पर बेतहाशा हंसते सहयात्रियों को देखा। कोई मंद-मंद मुस्कुरा रहा था तो कोई ठहाका लगाकर। कोई थोड़े से दांत निपोर कर हंस रहा था तो कोई पूरा जबड़ा खोलकर। वाकई, हंसने की कला कोई मेरे देशवासियों से सीखे। मैंने नोट किया, सभी अपनी-अपनी अदा से हंस रहे थे। बस, मैं ही उनमें अपवाद थी और क्यों न होती। मैं थोड़ी इन सब आम व्यक्तियों की तरह हल्की और सतही हूं. . .।

सच है, जिनके जीवन का कोई लक्ष्य न हो, जिन्हें देश, समाज, संस्कृति की कोई चिंता न हो, वे ही इस तरह हंस सकते हैं। ऐसे ही लोगों की बहुतायत को देख कर संत कबीर ने कहा होगा, 'सुखिया सब संसार है खाये और सोये।'

'आप इतनी चुप क्यों हैं बहिन जी! हंसा करिये। हंसना स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है।'

सहसा उस व्यक्ति ने मुझे लक्ष्य कर कहा तो मुझे महसूस हुआ कि वह अपनी बातों पर सबका समर्थन चाहता है और इसीलिए सबके चेहरों पर अपनी हंसी की मोहर लगाने को प्रतिबद्ध है। पर मुझे इससे क्या! मैं जानती हूं कि हंसना स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है, किंतु कैसा स्वास्थ्य। शारीरिक या मानसिक। फिर अपनी चिंता उसे होती है, जो सिर्फ अपने लिए जीता है। मेरी चिंता व्यक्तिगत न होकर सार्वजनिक है इसलिए मैं ऐसी छिछोरी बातों पर नहीं हंस सकती।

पर मैंने उस व्यक्ति से कहा कुछ नहीं। अपनी एक कृपादृष्टि उधर फेंककर मैंने गोद में रखी पत्रिका उठा ली और तत्क्षण उसी में डूब गई। यद्यपि कई जोड़ी आंखों को मैंने स्वयं पर महसूस किया कि वे अलग-अलग ऐंगिल से मुझे देख रही हैं, किंतु मैंने परवाह नहीं की।

मेरा स्टेशन आ गया और मैं सुकून की सांस लेते हुए नीचे उतर गई। लगा, मक्खियों से भिनभिनाने प्रदूषित डिब्बे से बाहर आकर ताजा हवा में सांस ले रही हूं।

कुछ दिन बाद मैंने फिर वही नजारा देखा। व्यक्ति वही था। नौटंकी वही थी। बस, यात्री बदले हुए थे। किंतु एक बात समान थी। ये सब भी पिछले यात्रियों की तरह अपने-अपने तरीके से हंस रहे थे। तो क्या ये सब भी सुखी और निश्चिंत हैं। मैंने ईर्ष्याजनित क्षोभ से सोचा और व्यंग्य से मुस्कुरा उठी। ऐसे ही हैं सब के सब। कोई ठोस काम न धाम। बस, खाओ पियो मौज करो और हंस-हंसकर मजे में जिंदगी गुजारो। किसी विषय पर चिंतन मनन क्यों करना।

तभी सम्मिलित ठहाकों से मेरी विचारधारा रुक गई। वह आदमी एक किस्सा

सुना चुका था और अब दूसरा सुनाने को उद्यत था।

'एक बार मुझे शादी में लखनऊ जाना था। दस अप्रैल की ट्रेन थी। नियत समय पर मैं स्टेशन पहुंचा और इस बार दो घंटे का मार्जिन होते हुए भी स्टेशन में ही रहा। गाड़ी के आने पर मैं अपनी सीट पर काबिज हो गया। अभी अपना सामान लगाकर आराम से लेटा ही था कि देखता क्या हूं, एक सज्जनी मेरी सीट को अपनी बताकर मुझसे उठने की जिद कर रही हैं। मैंने उनसे हाथ जोड़कर विनती की कि बहिन जी. . . आपको जरूर कोई गलतफहमी हुई है। मैं बहुत देखभाल कर इस सीट पर बैठा हूं। यह मेरी ही है। वे अपना टिकट मुझे दिखाते हुए बोलीं, 'भाई साहब. . .मैं भी इस सीट पर देखभाल कर ही आई हूं। यह देखिए। मैंने उनका टिकट देखा। अरे. . .वही गाड़ी, वही कोच, वही नंबर। ऐसा कैसे हो सकता है। फिर जवाब में मैंने भी मुस्तैदी से अपना टिकट निकालकर उन्हें दिखाया और कहा, 'यह देखिए बहिन जी. . .! मेरी टिकट पर भी वही सब अंकित है, जो आपकी।' उन्होंने दोनों टिकट हाथ में लेकर देखे और फिर जोर-जोर से हंसने लगीं। मेरी समझ में नहीं आया कि इस बेवक्त की हंसी का औचित्य क्या है। किंतु जब राज खुला तो हंसी का पात्र मैं स्वयं बन गया। सचमुच दोनों टिकटों में सब कुछ समान था सिवाय तारीख के। मेरी टिकट पर अप्रैल की जगह मई की तिथि अंकित थी। पूछिये मत साहब . . .मेरी कितनी भद्द पिटी। आसपास बैठे यात्रियों ने हंसते हुए कहा, भाईसाहब आपकी ट्रेन तो एक महीने बाद आयेगी तभी जाइयेगा।'

लोगों का हंसते-हंसते बुरा हाल था। सबको जैसे किसी छूत की बीमारी ने जकड़ लिया हो।

किसी ने पूछा, 'फिर क्या आप एक महीने के बाद ही गए?'

'न न' वे बोले, 'शादी में तो निर्धारित तिथि पर ही जाना था। लिहाजा, गए अगली गाड़ी के जनरल डिब्बे में बैठकर। लगता है, भगवान ने मुझे जनरल डिब्बे में बैठकर सफर करने के लिए ही पैदा किया है वरना ऐसा क्यों होता कि हर बार मैं टिकट खरीदता हूं आरक्षित ए.सी. का और मिलता है मुझे जनरल डिब्बा. . .।

सब पुनः हंसने लगे। कइयों को तो हंसते-हंसते पेट पकड़ने आंखें पोंछने की नौबत आ गई। मेरे भीतर भी कोई हंसने को आगे बढ़ा, किन्तु क्षण भर में अदृश्य हो गया।

हास्य की नहीं मुझे व्यंग्य की चिंता थी। साहित्य ही नहीं जीवन में भी। देश में, समाज में, संसार में इतनी विसंगतियां हैं। यदि हम उनसे मुंह फेर कर थोड़ी हंसियां हंसने में तल्लीन रहेंगे तो यह विश्व किधर जायेगा? फिर यह विश्व कहीं जाये न जाये, मेरे व्यंग्य बाण जरूर ऐसे छिछले हास्य के आगे भोंथरे हो जायेंगे, मुझे इसकी पूरी आशंका है। नहीं नहीं। मुझे व्यंग्य को बचाना है। अपने तरकश में सहेजे हुए तीरों को बचाना है। उन्हें समय-समय पर बाहर निकाल-निकाल कर नोकीला करना है और अगर ऐसा करना है तो हास्य की बुरी संगति से बचना होगा।

इस बीच उस व्यक्ति ने उड़ती हुई दृष्टि से मेरी ओर देखा पर मैंने उसकी दृष्टि को बीच में ही थाम कर लौटा दिया। मैं जानती थी, वह क्या कहना चाहता है, लेकिन मैं कुछ सुनना नहीं चाहती थी।

वह फिर लोगों की ओर अग्रसर हुआ, यदि आप लोग अच्छुक हो तो मैं एक किस्सा सुनाऊं, यद्यपि आपसे कइयों ने उसे सुना होगा।

कोई बात नहीं। हम फिर भी सुनेंगे। समवेत स्वर उठा। हे भगवान! तमाशाइयों से भरा यह देश! जी तो चाहा, उठकर दूसरे कम्पार्टमेंट में चली जाऊं पर मन ने कहा, सुन ही लो इसका इडियट किस्सा. . .।

'मैं चाहे वहां पर उपस्थित नहीं था, किंतु इस घटना को मैं प्रत्यक्षदर्शी बल्कि सूत्रधार की तरह सुनाऊंगा। एक बार ट्रेन के एक डिब्बे में दो व्यक्ति अगल-बगल बैठे थे। पहले ने दूसरे से पूछा, 'तुम कहां रहते हो?' उसने जवाब दिया 'भारत में।' इस पर पहले ने कहा, 'यह तो मैं भी जानता हूं। मेरा मतलब राज्य से है।' उसने बताया, 'उत्तर प्रदेश'। पहले ने आश्चर्य प्रकट किया, उत्तर प्रदेश? अरे मैं भी तो वहीं रहता हूं। अच्छा, जिला कौन-सा है तुम्हारा? दूसरे ने जवाब दिया, 'रामपुर'। पहला चौंक गया, 'अरे मैं भी रामपुर रहता हूं। तुम कहां रहते हो।? पुराने शहर में या सिविल लाइन्स? 'पुराने शहर में' उसने बताया। 'पुराने शहर में? यह लो, मैं भी तो वहीं रहता हूं।' अच्छा, तुम्हारे मुहल्ले का क्या नाम है? पहले ने पूछा तो दूसरे ने बताया, 'काशीगंज'। पहले ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा, 'तुम्हारे मकान का नंबर क्या है?' 'चौबीस' उसने बताया 'और पिता का नाम? 'श्री श्यामलाल. . .? इतना कहना था कि पहले ने उछल कर कहा, अरे. . .श्यामलाल तो मैं हूं। बेटा, तुमने मुझे पहचाना नहीं?' दूसरे ने उठकर पिता के चरण स्पर्श किए, 'प्रणाम पिताजी।'

लोग हंसते-हंसते पागल हो रहे थे।

'मैं इस नौटंकी को देखकर हैरान था। ऐसा कैसे हो सकता है कि पिता-पुत्र एक घर में रहते हुए भी पहली बार मिल रहे हों। वह भी सफर में।

मुझसे रहा न गया और उनसे पूछा, 'क्या सचमुच आप लोग आज पहली बार मिल रहे हैं?'

पहले वाले ने जवाब दिया, 'अरे नहीं भई. . .। दरअसल जब हम घर से चले तो इसकी मां ने कहा कि रास्ते में बातें करते हुए जाना वरना तुम लोग सोते रह जाओगे और अपना स्टेशन छूट जाएगा।'

सारे लोग बीच-बीच में तो हंस ही रहे थे। अब किस्सा खत्म होने पर तो खुल कर हंसने लगे। कइयों ने यह किस्सा सुना हुआ था फिर भी वे इस तरह हंस रहे थे जैसे पहली बार सुन रहे हों। उफ् . . .मुझे असह्य अपच हो आई ऐसे छिछले बचकाने चुटकुले सुनकर और उन पर बेतहाशा हंसते सहयात्रियों को देखकर।

इधर ढाई महीने के अंदर मुझे पांच यात्राएं करनी पड़ीं, जिनमें दो में से यह सिरफिरा किस्सागो मिल गया और मेरी सारी प्लानिंग चौपट हो गई। वहां तीव्र गति से दौड़ती गाड़ी के साथ नये-नये सूक्ष्म विचार मेरे मस्तिष्क में प्रवेश करते रहते हैं और कहां ये स्थूल अवरोध. . .! अफसोस!

तभी मुझे चौंकाते हुए मेरे करीब बैठी सहयात्रिन ने मुग्ध दृष्टि से उस आदमी को देखते हुए पूछा, 'भाईसाहब. . .!' आपके सारे किस्से यात्रा पर ही क्यों होते हैं?'

उसने मुस्कुराकर कहा, 'बहिन! यह

जीवन भी तो एक यात्रा है। इस यात्रा में कितनी चीजें मिलती और छूटती है। एक पड़ाव को छोड़े बिना दूसरे पर नहीं पहुंचा जा सकता।'

'वाह. . .! क्या बात कही भाईसाहब आपने. . .!' यह स्त्री तो उस आदमी की मुरीद हुई जा रही है।

अब वह व्यक्ति उठकर उतरने की तैयारी कर रहा है। मेरे समीप पहुंचकर उसने धीरे से कहा, 'बहिन जी. . .! आप इतनी चुप क्यों रहती हैं? आप भी हंसा करिये।'

उसकी इस धृष्टता पर मुझे एक अच्छा-खासा लेक्चर पिलाने की इच्छा हुई पर शायद इतना समय नहीं था। अत: रूखे स्वर में इतना ही कहा, 'मुझे ऐसे ही अच्छा लगता है।'

'यह नहीं हो सकता। किसी को भी उदास रहना अच्छा नहीं लगता।'

'उदास नहीं गंभीर और गरिमामय।' कहकर मैंने वक्र मुस्कान से भरे गर्व से देखा। वह खिसियाकर तीव्रता से आगे बढ़ा।

थैंक गॉड. . .। ईश्वर न करे फिर इस शख्स से किसी सफर में मुलाकात हो। भेजा चाट जाता है. . . सा. . .।

मैं तनावमुक्ति की अनुभूति में निश्चिंत हो उठी। अभी दो ढाई घंटे का सफर शेष है। अब कोई चिंता नहीं। कहीं कोई व्यवधान नहीं। आराम से अपने तरकश के तीरों की काट-छांट करूंगी। पत्रिका रखकर मैंने डायरी निकाल ली।

अभी कलम उठी ही थी कि पड़ोसन बोल उठी, 'ये भाईसाहब बहुत अच्छे हैं। ये जहां भी होते हैं, साथ वालों को हंसाते रहते हैं। कहते हैं, दुनिया में कोई सुखी नहीं। हर आंख नम है यहां तो थोड़ी देर के लिए ही सही, हंसते समय लोग अपने संताप अपने अभावों को एक किनारे तो रखते हैं।'

मुझे लगा, मेरे तीर भोंथरे हो-होकर तरकश में वापस जा रहे हैं। समझ नहीं पा रही, उन्हें पैना करूं या ऐसे ही रहने दूं।

अंतर में एक टीस अलग उठ रही है कि अपने व्यंग्य बाण का गलत जगह इस्तेमाल क्यों किया।

91/28, मोहिनी रोड
डालनवाला, देहरादून

सीताराम गुप्ता

रिपोर्टिंग

शहर में दंगे हो रहे थे। चारों तरफ अफरा-तफरी का माहौल था। बेकाबू भीड़ को नियंत्रित करना असंभव-सा होता जा रहा था। भीड़ थी कि बढ़ती ही जा रही थी। कोई पत्थर फेंक रहा था तो कोई चुपके से कहीं आग लगाकर भीड़ में घुस जाता था। पत्थरबाज़ी और आगज़नी की घटनाएं बढ़ती ही जा रही थीं कि अचानक गोलीबारी भी शुरू हो गई। लोग घायल हो-होकर कटे वृक्षों की भांति गिरने लगे। चारों तरफ खून ही खून बिखरा दिखाई देने लगा। घायलों को अस्पताल पहुंचाया जाने लगा। न जाने कितने घायल मृतकों में तब्दील हो चुके थे। चारों ओर कोहराम मच गया। टीवी चैनलों के रिपोर्टर जो अब तक फ़र्ज अदायगी के मूड में सुस्त से खड़े थे सक्रिय हो गए। घायलों और मृतकों के परिजनों से साक्षात्कार का सिलसिला तेज़ हो गया। इतने में सनसनाती हुई एक गोली आई और एक टीवी रिपोर्टर से बातचीत कर रहे एक मृतक के रिश्तेदार की बांह में घुस गई। ऐसे मौके दुर्लभ होते हैं जब कोई सनसनीखेज़ घटना खुद-ब-खुद कैमरे में क़ैद हो जाए। पूरी टीम गोली लगकर गिरते हुए व्यक्ति को कवर करने के लिए अत्यंत सक्रिय हो उठी। लेकिन ये क्या? रिपोर्टर ने अपने हाथ में पकड़ा हुआ माइक अपने सहायक की ओर फेंक दिया और लपककर गोली लगकर गिरते हुए व्यक्ति को थाम लिया। रिपोर्टर उस व्यक्ति को सहारा देकर पास खड़ी एक कार तक ले गया और कार के पास खड़े व्यक्ति से जल्दी अस्पताल ले जाने की मिन्नतें करने लगा। टीवी चैनल की टीम के लोग ख़फ़ा होकर रिपोर्टर से कहने लगे कि तुमने ये क्या किया? इतनी अच्छी कवरेज़ का सत्यानाश कर डाला और साथ ही अपने कैरियर का भी।

'अगर गोली लगने वाले व्यक्ति को समय पर चिकित्सा सुविधा मिल गई तो संभव है इसकी जान बच जाए और एक परिवार बिखरने से बच जाए और ये भी कम अच्छी स्टोरी नहीं रहेगी', रिपोर्टर ने कहा। रिपोर्टर घायल व्यक्ति को लेकर फौरन रवाना हो गया लेकिन घायल व्यक्ति को ले जाते हुए इस रिपोर्टर को किसी टीवी चैनल ने कवर नहीं किया। टीवी चैनलों की टीमें किसी अच्छी स्टोरी को कवर करने की तलाश में जुट गईं।

ए.डी.-106-सी, पीतमपुरा, दिल्ली-34

'व्यंग्य यात्रा' के निम्नलिखित शुभचिंतकों से आप 'व्यंग्य यात्रा' अंकों के लिए संपर्क कर सकते हैं

श्री अशोक आनंद
103/2-1 गुरु रोड, देहरादून
दूरभाष : 9410394466 (मोबाइल)

श्री गिरीश पंकज
जी-31, नया पंचशील नगर
रायपुर (म.प्र.)
दूरभाष : 9425212720

श्री तरसेम गुजराल
46 हरबंस नगर, जालधंर (पंजाब)

श्री अरविंद विद्रोही
बिरसानगर रोड नं.-2 पूर्व, जोन-2
गुप्ता गैस गोदाम के पीछे
जमशेदपुर (बिहार)

रामबहादुर चौधरी चंदन
फुलकिया, बरियारपुर
मुंगेर-811211 (बिहार)

श्री अतुल चतुर्वेदी
380 शास्त्री नगर
दादाबाड़ी, कोटा (राजस्थान)
दूरभाष : 9414178745

प्रेम विज, 1284 सैक्टर 37 बी
चंडीगढ़ 7110036
दूरभाष : 2688139

परिदृश्य प्रकाशन
दादी संतुल लेन, धोबी तालाब
मरीन लाईन, मुंबई
दूरभाष : 20192689

श्री विदित कुन्द्रा
2डी-802, एन जी सिटी फेज़-2
कांदिवली (पूर्व) मुंबई
दूरभाष : 9820059601

श्री अनंत श्रीमाली
4/64 'गीतांजली' समता नगर
कांदिवली (पूर्व) मुंबई
दूरभाष : 9819051310

पंजाब बुक सेंटर
एस सी ओ न 1126
सैक्टर 22 बी, चंडीगढ़

श्री शिवानंद सहयोगी
ए-233 गंगानगर, मवाना रोड, मेरठ
दूरभाष : 9412212255

श्री फारूक आफरीदी
ई-750, गांधीनगर, न्यायपथ
जयपुर-302015
दूरभाष : 9414335772

मनोहर पुरी

हुजूर मैं अंग बेचता हूं. . .

मैं संसद के केन्द्रीय कक्ष में दाखिल ही हुआ था कि कनछेदी सामने से आता हुआ दिखाई दिया। उसका पीला चेहरा तोते की नाक सरीखा लाल हो कर तमतमा रहा था। वह धीरे-धीरे कुछ बुड़बुडा़ रहा था। ज्यों ही वह मेरे समीप आया मैंने पूछा, 'कनछेदी क्यों तमतमा रहे हो, किस पर इतना गुस्सा दिखा रहे हो।' 'अरे किसी पर नहीं अपने आपको ही कोस रहा हूं। कैसा देश है मेरा यह सोच रहा हूं। मैं अपनी मर्जी से अपनी चीज बेच नहीं सकता। किसी को देना चाहूं तो दे भी नहीं सकता। आप हरदम कहते रहते हैं कि यह लोकतंत्र है, यहां का नागरिक सब कुछ करने को स्वतंत्र है।' 'ऐसा तुम क्या बेचना चाहते हो, अथवा क्या किसी को सहेजना चाहते हो। और कौन उसमें तुम्हें टोक रहा है, अपनी ही चीज किसी दूसरे को देने से रोक रहा है।' 'वही आपका कानून। बहुत दिन से कई लोग मेरे पीछे लगे थे कि मैं देह-दान कर दूं। अब मैंने सोचा कि दान की बजाय इसे बेचा क्यों न जाए, ताकि मेरे मरने के बाद कोई मेरा रिश्तेदार होने के कारण न पछताए। आप जानते ही हैं कि हमारे यहां दाह संस्कार और फिर क्रियाकर्म जैसे कर्मकांडों पर कितना धन व्यय होता है। मरने वाला तो मर जाता है, पीछे वाला उसके लिए बेकार की रस्मों का भार ढोता है।' कनछेदी ने रूआंसा-सा होते हुए कहा। 'मतलब तुम देह-दान करने की बजाय उसे बेचना चाहते हो। पर यह तो घोर पाप है। इसीलिए तो दुनिया के किसी देश का कानून आत्महत्या की आज्ञा नहीं देता।' मैंने समझाने का प्रयास किया। 'आत्महत्या की बात कौन कर रहा है। मैं उन अंगों की बात कर रहा हूं जो दान किए जा सकते हैं। जिनके बिना आदमी पूरी तरह से स्वस्थ रहता है। आखिर वे मेरे अपने अंग हैं। उदाहरण के रूप में यदि मैं अपनी एक आंख किसी दूसरे को दे दूं तो वह भी ठीक से देख सकेगा और मेरे देखने की शक्ति में भी कोई कमी नहीं आयेगी। ठीक यही मामला गुर्दे का भी है। जब मैं मरने के बाद किसी चीज को दान कर सकता हूं तो उसे बेच क्यों नहीं सकता यही बात तो मेरी समझ में नहीं आ रही।' कनछेदी ने मुझे समझाने का प्रयास किया। 'देश अपने किसी नागरिक को इसके लिए प्रोत्साहित नहीं कर सकता। आखिकार हम एक कल्याणकारी राज्य में रहते हैं।' 'आपका कानून मुझे एड़ी रगड़ रगड़ कर मरते तो देख सकता है। मरने के बाद मेरी लाश कूड़े की ढेरी पर घसीट सकता है। उसे मिट्‌टी का तेल डालकर जलते हुए तो देख सकता है। जिन्दा हूं तो रोटी के अभाव में मरने भी देगा परन्तु मैं अपनी रोजी-रोटी का मरने से पहले जुगाड़ कर लूं यह वह करने नहीं देगा। क्यों भाई उसे क्यों एतराज होना चाहिए।' कनछेदी ने अपना तर्क दिया। 'रोटी-रोजी का प्रबंध करने में किसी को आपत्ति नहीं। आपत्ति है अपने अंग बेच कर ऐसा करने में। तुम्हारी देह पर इस समाज और देश का भी तो हक है फिर तुम कैसे अपने शरीर को अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए बेच सकते हो। आखिर मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।' मैंने कहा, 'चलो ठीक है आपकी बात मानता हूं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज के लिए जीवित रहता है, तो समाज के लिए मर क्यों नहीं सकता। और यदि मेरे शरीर पर समाज और देश का हक है तो इसे ठीक से जीवित रखना भी तो उसी का दायित्व है।' कनछेदी हार मानता हुआ दिखाई नहीं दे रहा था। 'मैं तुम्हारी बात ठीक से समझा नहीं।

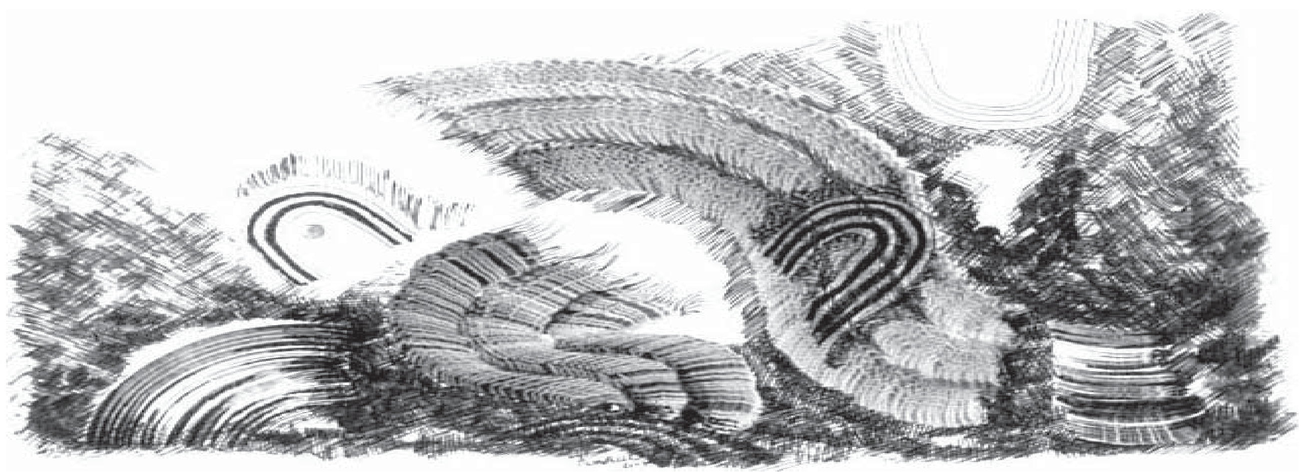

जरा विस्तार से समझाओ और थोड़ा शान्त हो जाओ। हां कम से कम तमतमाओ।' मैंने उसके गुस्से पर ठंडे पानी के छींटे डालने का प्रयास करते हुए कहा– 'मैं कहां तमतमा रहा हूं। मरने के बाद अपने क्रियाकर्म का कर रहा हूं प्रबंध। इसमें किसी दूसरे का क्या है संबंध।' 'मैं अभी भी तुम्हारी बात पूरी तरह से नहीं समझा।' मैंने अपनी उलझन को स्पष्ट करते हुए कहा– 'तो ठीक है, मैं समझाता हूं। आप जानते हैं कि मेरी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि मेरे परिवार वाले मेरे मरने के बाद मेरे सारे संस्कार भली–भांति कर सकें। मेरा शरीर देख रहे हो। मेरे लिए लकड़ी खरीदने में ही उनका खुद का मरना हो जायेगा। फिर कौन इस भारी लाश को उठायेगा। मान लो आज मैं अपना एक गुर्दा बेच दूं तो दूसरे के सहारे आराम से जीवन व्यतीत कर सकता हूं। गुर्दा बेचने से मिलने वाले लाखों रुपए से कोई काम धंधा कर सकता हूं। अपने परिवार का पेट पाल सकता हूं और उनके लिए कुछ धन दौलत छोड़ कर भी जा सकता हूं। अब यदि इतना बढ़िया सौदा हो रहा है तो आप रोकने वाले कौन हैं। अरे भाई जिसे चाहिए वह खरीद रहा है। जिसके पास फालतू है वह बेच रहा है। आप बेकार ही दाल भात में मूसलचंद बन रहे हैं।' कनछेदी ने अपनी बात को विस्तार देते हुए मुझे समझाया। मैंने उत्तर दिया, 'हमारी सरकार ने गुर्दा बेचने और खरीदने पर रोक लगा रखी है। आप चाहें तो भी अपना गुर्दा बेच नहीं सकते हां, किसी रक्त संबंधी को जरूरत हो तो उसे दान कर सकते हैं।' 'यही तो। यही तो मेरा एतराज है। जो रक्त संबंधी मुझे भूखा मरता हुआ देखता है और मेरे परिवार के लिए दो रोटी का प्रबंध भी नहीं करना चाहता उसे मैं यूं ही लाखों रुपए का गुर्दा दे दूं। और जो आदमी मुझे इसका पूरा–पूरा मूल्य चुकाना चाहता है उसे मैं बेच नहीं सकता। यह कहां का न्याय है।' कनछेदी बोला– 'यही तो नियम है।' मैंने उसे समझाने का प्रयास किया। 'तो बदल डालो अपने इस घटिया नियम को। मान लो मैं आज मर जाऊं, तो कौन मेरे परिवार की देखभाल करेगा और मेरे इन सारे कीमती अंगों का क्या होगा। मैं हिन्दू हूं इसलिए शरीर को जला दिया जायेगा। मेरे लाखों रुपयों मूल्य के अंगो के साथ। जो कोई मुसलमान होगा तो उसे मिट्टी में दबा दिया जायेगा ताकि उसके अंगों को कीड़े खा जायें। भाई इससे किसी को, समाज अथवा देश को क्या लाभ होने वाला है। कुछ नहीं न।' 'तो अब तुम मुर्दे में भी लाभ की बात देख रहे हो। अपने राजनेताओं की तरह से मौत में भी राजनीति कर रहे हो। जानते हो यह बात हमारे धर्म के भी खिलाफ है।' मैंने अपना रोष व्यक्त किया। 'एक ओर तो आप कहते हैं कि हम धर्मनिरपेक्ष हैं। धर्म का देश के साथ कुछ लेना–देना नहीं है। दूसरी ओर आप मुझे मरने के बाद भी धर्म से मुक्त नहीं होने देना चाहते। यह कहां का इंसाफ है। आखिर यह मेरा शरीर है और इसका एक एक अंग मेरा है, मैं बेचूं या रखूं आप कौन लगते हैं। इन्हें चोरी से लगाने के लिए डॉक्टर हमें ही तो ठगते हैं। तब कोई कुछ नहीं बोलता। हमारे अंग निकल जाते हैं और हम जानते तक नहीं, कहां जा कर लग गए पहचानते भी नहीं। जब से जिन्दा आदमियों को अपने अंगों के बाजार भाव पता लगे हैं वे सावधान हो गए हैं, अंग चोर इससे जरूर परेशान हो गए हैं। इसी कारण अब चोरों की नजर जिन्दा शरीर की बजाय मुर्दा शरीर पर गड़ गई है। वे जान गए हैं कि जिन्दा आदमी इतना मूर्ख होता है कि वह अपने किसी भी अंग को किसी भी मूल्य पर बेचना नहीं चाहता। अपने सड़ गल जाने वाले अंगों को लेकर भी हमेशा इतराता रहता है। कितना भी गरीब हो, चाहे भूख से मरने की नौबत आ जाए पर अंग नहीं बेचेगा। यह भी नहीं जानना चाहता कि मर गया तो ये अंग किस के लिए सहेजेगा। वह यह भी नहीं सोचता कि उसके सब अंग मरने के बाद बेकार ही जला दिए जायेगें अथवा दबा दिए जाएंगे। मुर्दा शरीर का कोई अंग निकालो और उसे बेचो। मृत शरीर को कोई अपत्ति नहीं होगी। जिन्दा आदमी द्वारा अपने अंग बेच देने पर आप अपत्ति क्यों करते हैं। आखिर मेरी चीज है तभी तो मैं दान कर सकता हूं तो फिर बेच क्यों नहीं सकता। भाई आंख दान होती है तो ही तो वह दूसरे को लगती है। इसी प्रकार यदि एक आंख बेच दी जायेगी तो उससे एक और व्यक्ति देख सकेगा। इसमें किसी को क्या एतराज है, आखिर अपने अंगों का आदमी खुद ही तो मुख्तार है।' कनछेदी बोला। अब कनछेदी का गुस्सा बढ़ता जा रहा था। मैंने कहा, 'कनछेदी गुस्सा मत दिखाओ। यदि तुम्हारी बात मान लें तो गरीब लोग अंग बेचने की होड़ में शामिल हो जायेगें। पता लगा कि हर हस्पताल के बाहर अंग बेचने वालों की लाइनें लगीं हैं।' 'तो उसमें किसी का क्या बिगड़ने वाला है। आज क्या राशन के डिपो के बाहर अथवा ईलाज करवाने के लिए हस्पतालों में लाइनें नहीं लगती। अरे अपने देश में तो लघुशंका जाने के लिए लाइन लगानी पड़ती है। साठ साल में आप लोगों की गरीबी दूर नहीं कर सके। यदि लोग स्वयं अपनी गरीबी दूर करने का समाधान निकाल रहे हैं तो भी आपको समस्या है। जानते हो कुछ चतुर लोग हर रोज देह–दान की बात करके मुफ्त में ही मानव देह को हथियाना चाहते हैं। डॉक्टर भी मुर्दा जिस्मों के पैसे दिलवाना नही चाहता। यदि व्यक्ति को अपनी देह–दान करने का अधिकार है तो बेचने का भी होना चाहिए। जिसकी गर्ज हो वह खरीदे इससे हजारों लोंगो की रोटी रोजी का प्रबंध हो जायेगा और हजारों बीमारों को भी जीवन दान मिलेगा।' 'दुर्भाग्यवश हमारे देश का कानून इसकी आज्ञा नहीं देता। हां व्यक्तिगत रूप में मैं मानता हूं कि यदि व्यक्ति को अपनी देह दान करने का अधिकार है तो बेचने का भी होना ही चाहिए। आखिर आप उसी वस्तु का दान कर सकते हैं जो आपकी है, और जो वस्तु आपकी है उसे बेच क्यों नहीं सकते।' मैंने कनछेदी के तर्कों के सामने हथियार डालते हुए कहा। 'अरे यही तो मैं कह रहा हूं। आज परिवार वाले मरने के बाद अपने मृतक की आंखें दान कर सकते हैं। कुछ कर भी देते हैं। देश में फिर भी असंख्य अंधे हैं। मेरा दावा है कि यदि परिवार वालों को मृतक की आंखें बेचने का अधिकार दे दिया जाए तो देश तो क्या पूरे विश्व में एक भी अंधा नहीं बचेगा। यदि व्यक्ति को अपने जीवन काल में अथवा मरने के बाद उसे अथवा उसके परिवार वालों को अंग बेचने का अधिकार दे दिया

जाए तो मृतक के अन्तिम संस्कार पर होने वाले भारी भरकम व्यय को लेकर उसके सगे संबंधी आपस में झगड़ना बंद कर देंगे। फिर यह कहावत बेमानी हो जायेगी 'सांझा बाप न रोये कोय' क्योंकि अंग बेचने से होने वाली आय के हिस्से बांटने के लिए इतने अधिक वारिस अचानक पैदा हो जायेंगे कि रोने वालों की लाइन लग जायेगी। आंसुओं की बाढ़ आ जायेगी।'

'रोने वालों की नहीं बंटवारा करने के लिए झगड़ने वालों की, हमने कहा। तब लाश के वारिस शरीर पर कब्जा करने के लिए कुत्तों की तरह से लड़ेंगे, कनछेदी इतना जान लो। लाश पर कब्जे को लेकर अदालतों में मुकदमों की लाइनें लग जायेंगी।' 'भले ही इस समय मैं बात तो दान की कर रहा हूं पर वास्तव में चाहता हूं कि मानव अंगों का क्रय विक्रय मण्डी में किया जाये। ताकि लोगों को अपने अथवा अपने परिवार वालों की देह का पूरा-पूरा मूल्य मिल सके। उनका शोषण भी न हो। पर उसके लिए कोई तैयार ही नहीं होता। क्या नजारा होगा जब मण्डी में आड़तिए मानव अंगों की बोली लगायेंगे और अपने अपने संभावित स्टॉक के स्वास्थ्य अंगों की मेडिकल रिपोर्ट दिखायेंगे। इस समय मैं दान की बात इसलिए कर रहा हूं क्योंकि अपने देश में दान-पुण्य करने की बात लोगों को जल्दी हजम हो जाती है। दान को भारत में आज भी आदर की दृष्टि से देखा जाता है। हमारे देश में दान को पुण्य का कार्य माना जाता है। पुण्य होता है स्वर्ग का द्वार खोलने की चाबी। इसलिए हर कोई उस चाबी को प्राप्त करना चाहता है। क्योंकि लालच मानव का शाश्वत गुण है इसलिए वह मरने के बाद भी स्वर्ग के लालच से फंसा रहता है। कुछ लोग मानव की इसी कमजोरी का लाभ उठाते हैं। कुछ संस्थाओं द्वारा समय-समय पर बड़े-बड़े आयोजन करके लोगों को यह बताया जाता है कि मरने के बाद उनका शरीर किसी काम का नहीं रहता। यह एक ऐसा सत्य है जिसे कोई झुठला नहीं सकता। शरीर के अंगों को जला कर अथवा दबा कर और भी बेकार कर दिया जाता है। वह राख हो जाता है अथवा मिट्टी हो जाता है। इतनी मूल्यवान वस्तुओं को राख अथवा मिट्टी बना देना कहां की बुद्धिमानी है। इससे शरीर की पूरी उपयोगिता ही समाप्त हो जाती है।' कनछेदी एक ही सांस में कह गया। फिर बोला, 'यदि तुरन्त बेचने की अनुमति न मिले तो कम से कम शरीर को मरने के बाद दान कर देना चाहिए। क्योंकि देश के सैंकड़ों मेडीकल कॉलेजों में हजारों छात्रों को इनकी बहुत आवश्यकता पड़ती है। मुर्दा शरीरों के अभाव में हमारे हजारों छात्र चिकित्सा के क्षेत्र में कई प्रकार के प्रयोग करने से वंचित रह जाते हैं। ऐसे शरीरों के अभाव में वे मानव के शरीर की बारीकियों को समझ भी नहीं पाते। यदि हमारे छात्र मानव शरीर की ऐसी बातों का अध्ययन ठीक से कर पायें तो नई नई औषधियों की खोज की जा सकती है। उन दवाइयों के प्रयोग से हजारों लोगों के प्राणों की रक्षा करने में सफलता मिल सकती है।' कनछेदी ने उत्साहित हो कर कहा। 'पर तुम तो बात खरीदने बेचने की कर रहे थे। इसी बात पर सारा झगड़ा है।' 'चलो मैं आपकी बात मानता हूं। आप बताएं कि आज देश में कितने मरीज ऐसे हैं जिन्हें किसी न किसी अंग के अभाव में जिन्दा रहना पड़ रहा है। कितने ही लोग ऐसे हैं जिनका जीवन सभी सही सलामत अंगों के साथ भी एक मुर्दे का सा ही है। उन्हें हम जिन्दा लाशें भी कह सकते हैं। इस प्रकार दोनों को एक दूसरे की आवश्यकता है। आप जानते हैं कि मानव के कुछ अंग ऐसे हैं जिन्हें किसी दूसरे को दिया जा सकता है। तो फिर क्यों न एक दूसरे की सहायता की जाए। जिसके पास धन है वह धन दे और जिसके पास अतिरिक्त अंग है वह अंग दे। बस साफ सुथरा लेन देन का मामला है। सरकार को इसमें टांग अड़ाने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।' 'तो तुम्हारा यह मानना है कि मरने के बाद मनुष्य के शरीर का विधिवत क्रियाकर्म न करके उसे दान कर दिया जाए।' 'बिल्कुल। शरीर को जलाकर बेकार करने से तो अच्छा है इसे छात्रें के अध्ययन के लिए दान में दे दिया जाए अथवा बाजार में बेच दिया जाए। इससे जहां हजारों छात्रों को उनकी पढ़ाई में लाभ होगा वहीं मरने वाले के परिवार को अनेक प्रकार की उलझनों से छुटकारा मिल जायेगा। क्रियाकर्म जैसे बेकार के कामों पर हमारे गरीब देश में प्रतिदिन करोड़ों रुपए स्वाहा कर दिए जाते हैं। लोग मृत्यु भोज और श्राद्ध

कर्मों के लिए बनिए अथवा साहूकार से उधार ले कर जिन्दगी भर गुलामी की चक्की में पिसते रहते हैं। मरने वाला तो मर जाता है उसके जिन्दा बचे परिवार वालों की गाढ़े पसीने की कमाई निठल्ले पंडे हलवा पूड़ी के रूप में डकार जाते हैं। इस काम के लिए प्रतिदिन लाखोंमन लकड़ी जला दी जाती है। जिस देश में ईंधन का अकाल हो वहां इस प्रकार से ऊर्जा के स्रोत को नष्ट करना कहां की समझदारी है। बल्कि मैं तो कहूंगा कि यह एक प्रकार का अपराध ही है। इतना ही नहीं इस बेकार के काम के लिए हम प्रतिदिन हरे भरे जंगल काट कर पर्यावरण का संतुलन बिगाड़ रहे हैं।' कनछेदी ने जोश में भरकर कहा। फिर वह एक अर्थशास्त्री की भांति बोला, 'इतना ही नहीं इस प्रकार से शवों को नष्ट कर देने की और भी बहुत सी हानियां हैं। एक-एक शव यात्रा में सम्मिलित होने के लिए कितने ही मानव श्रम घंटों की बर्बादी की जाती है। यदि उतने मानव श्रम घंटों का उपयोग सृजनात्मक आर्थिक गतिविधियों में किया जाए तो हमारा देश कुछ ही समय में दुनिया का सबसे अमीर देश बन सकता है। शवों को ढोने के चक्कर में हम अपने देश की गरीबी को ढो रहे हैं। एक देह को बेचने की अनुमति देने से देश का, समाज का और स्वयं हमारा अपना कितना लाभ हो सकता है इस पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए।' 'पर हमारा समाज एक धर्मपरायण समाज है। फिर हमारी धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं का क्या होगा।' मैंने फिर से मर्म को छू जाने वाला प्रश्न किया। 'पहले ही इसका उत्तर दे चुका हूं। होगा क्या। नई मान्यताएं बनेंगीं। क्या हमारे ऋषि मुनियों ने हमारा मार्ग दर्शन इस विषय में नहीं किया। क्या दधीची ने देहदान करके अपनी अस्थियां देवताओं को नहीं दीं जिससे इन्द्र ने व्रज नामक अस्त्र बनाया और दानवों का संहार किया। हमारे देश में भी पारसी समाज है जो इस तरह अपने मुर्दों की उपयोगिता को प्रयोग में लाता है। बेचता नहीं तो कम से कम चील कौओं को तो खिलाता है।' कनछेदी ने अपनी बात सामने रखी। 'इसके लिए तुम क्या करना चाहते हो कनछेदी। और सरकार से क्या चाहते हो इस मामले में।' 'मैं तो चाहता हूं कि हर एक को अपने अंग बेचने का अधिकार हो। वह इस बात की वसीयत कर जाये कि उसके मरने के बाद उसके अंग कौन लेगा। जो अंग उसके जीवित रहते ही बिक सकें उसमें तो कोई समस्या ही नहीं। समाज के हित में भी मेरी सरकार से मांग है कि कम से कम दुर्घटना में मरने वाले व्यक्ति की लाश हस्पतालों की सम्पति मान ली जाए। यदि इतना करना भी संभव न हो तो लावारिस लाश पर तो हस्पतालों का हक स्वीकार कर ही लिया जाए। वैसे भी सरकार के लिए उसे ठिकाने लगाना ही एक समस्या है। इस प्रकार इतनी बड़ी समस्या का सहज समाधान भी हो जायेगा।' कनछेदी ने सुझाया। 'तो सरकार का इस बारे में क्या कहना है। तुम तो इस बारे में कई नेताओं और मंत्रियों से मिल चुके हो। सरकार को तो किसी प्रकार की अपत्ति होनी ही नहीं चाहिए। मैंने सुना है कि इसके लिए सरकार के पास धन ही नहीं है। जितने पैसे सरकार ईंधन के लिए देती है उतने से लाश जलाई नहीं जा सकती। मिट्टी का तेल डाल कर किसी तरह से लाशों को निपटाया जाता है।' 'यही तो इस देश का दुर्भाग्य है। कभी धर्म आड़े आ जाता है तो कभी कमबख्त समाज। इन दोनों से छुटकारा मिले तो कोई न कोई कानूनी अड़चन सामने आ खड़ी होती है। कमबख्त लाशों पर भी इस तरह से कुंड़ली मार कर बैठ जाते हैं जैसे सांप गड़े हुए धन पर। भाई इससे किसी को लाभ होता है तो होने दो तुम्हारे बाप का क्या जाता है। व्यापार का कोई नया रास्ता खुलता है तो खुलने दो। इतने पर भी मन न भरे तो टैक्स लगा लो। सरकार को तो टैक्स लगा कर जनता का खून ही चूसने से मतलब है न। कोई मरे अथवा जीवित रहे उसे क्या। वैसे भी ऐसी कौन सी चीज है जिस पर आपने टैक्स नहीं लगा रखा है? इस पर भी लगा ले क्या फर्क पड़ता है इस देश की जनता को। उसे तो आदत है सरकार रूपी जौंक से खून चूसवाने की।' कनछेदी आक्रोश में भर कर बोला। इस बीच कुछ अन्य सांसद एवं पत्रकार भी कनछेदी के आस पास घिर आए। कुछ देर सांस लेकर कनछेदी ने उत्साहित होते हुए कहा, 'वैसे भी मृतक के परिवार को कदम कदम पर इस मामले में कुछ न कुछ खर्च करना ही पड़ता है। इसके विपरीत यदि उसे लाश बेच कर कुछ धन मिलने लगेगा तो यह व्यापार जल्दी ही उद्योग की श्रेणी में आ जायेगा इसमें मुझे कोई संदेह नहीं। आखिर चीन हर क्षेत्र में हम से आगे क्यों निकल रहा है क्योंकि वहां के लोगों को अपने अंग बेचने का अधिकार है। इसके लिए वहां विज्ञापन दिए जाते हैं। देश विदेश में इसका प्रचार किया जाता है। भारत सहित विश्व के कोने कोने से लोग अंग-प्रत्यारोपण के लिए चीन जाते हैं और बहुमूल्य विदेशी मुद्रा वहां पर खर्च करते हैं। इससे वहां की अर्थव्यवस्था को कितना बल मिलता होगा इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। हमारी सरकार है कि कुछ समझती ही नहीं। या यूं कह लें कि समझना ही नहीं चाहती। हर प्रगतिशील मार्ग की तरफ से आंखें ही बंद कर लेती है। मैं तो कहता हूं कि पूरी-की-पूरी सरकार अंधों की सरकार है।' अब कनछेदी ने आस पास खड़े लोगों को संबोधित करते हुए कहा।

'पर अंग प्रत्यारोपण तो भारत में भी होता है,' एक पत्रकार ने कहा। 'मद्रास का एक क्षेत्र इस काम में बहुत प्रगति कर चुका है। उस जिले को किड़नी जिले के नाम से पुकारा जाता है।' 'हो सब कुछ रहा है। सब छिपे मुंदे ढंग से, चोरी छिपे होता है। परन्तु यह सब गैर कानूनी ही है। सरकार स्वयं गैर कानूनी काम करने के लिए लोगों को प्रोत्साहित कर रही है। यदि सरकार अंग बेचने की आज्ञा दे दे तो कितने ही लोगों का जीवन गरीबी की रेखा को एक ही रात में छलांग लगा कर पार कर लेगा। फिर बीस सूत्री और गरीबी हटाओ जैसे फिजूल के कार्यक्रमों की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। आखिर भगवान ने कुछ अतिरिक्त पूर्जे मानव के शरीर में इसीलिए तो बनाए हैं कि वक्त जरूरत काम आ सकें। यदि शरीर के अंगों के बाजार भावों की ताजा जानकारी लोगों को मिलती रहेगी तो बिचौलिये गरीबों का शोषण नहीं कर पायेंगे। पर यह सरकार तो है ही शोषकों का पोषण करने वाली।' कनछेदी ने सरकार की पोल खोल कर रख दी हो

जैसे। 'भई वाह! यहां भी शोषण, कमाल है शोषण के इस नए रूप के बारे में पहले तो कभी नहीं सुना था।' एक अन्य पत्रकार ने चुटकी ली। 'हां शोषण कहां नहीं हो रहा। उदाहरण के रूप में गत दिनों एक विदेशी ने मद्रास के एक निर्धन व्यक्ति से किडनी खरीदी। क्या आप लोग अनुमान लगा सकते हैं कि उसे इसके बदले में कितना धन मिला। नहीं न। मैं बताता हूं केवल 400 ब्रिटिश पौंड। और क्या आप लोग जानना नहीं चाहेंगे कि जिस ने किडनी खरीदी उसने कितना धन दिया। बीस हजार पौंड़। अब सरकार की गलत नीतियों के कारण कितनी बड़ी राशि बिचौलिए खा गए। यह राशि काले धन में परिवर्तित हो कर हमारी अर्थव्यवस्था को खोखला करने में सहायता कर रही होगी। यदि यही राशि उस व्यक्ति को अथवा उसके परिवार को सीधी मिलती तो इस आय पर सरकार को कितना टैक्स मिलता। यदि वह इस राशि से कोई काम धंधा प्रारम्भ कर लेता तो न केवल उसकी गरीबी दूर हो जाती वह निरन्तर सरकारी खजाने में कर के रूप में कुछ न कुछ बढ़ोतरी ही करता रहता।' कनछेदी ने कहा– 'पर मानव के अंगों की कोई कीमत कैसे आंकी जा सकती है।' उस पत्रकार ने जिज्ञासा की। 'सही सही न भी आंकी जा सके तो क्या। अनुमान तो लगाया ही जा सकता है। चीन ने इस मामले में पहल की है। चीन में मनुष्य के कोर्निया का मूल्य तीस हजार अमरीकी डालर माना गया है। फेफडों की कीमत एक लाख पचास हजार से एक लाख सत्तर हजार डालर, किड़नी की बासठ हजार, लीवर की एक लाख से एक लाख तीस हजार, किडनी पैनक्रिया की डेढ़ लाख डालर और दिल की एक लाख तीस हजार से एक लाख साठ हजार डालर तक मानी जाती है। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि हम अरबों रुपए मूल्य के मानव अंग बेकार ही जला डालते हैं अथवा दबा कर उन्हें कीड़ों का भोजन बना देते हैं। यह मानव अंगों के वर्त्तमान बाजार भाव हैं। मैं यह भाव अपनी किसी कल्पना से नहीं बता रहा। इसका बकायदा समाचार पत्रों में प्रकाशन होता है। इसके अतिरिक्त माल की कीमत तो मांग और आपूर्ति के नियम से संतुलित होती है। वहां पर भी होती होगी। इसकी पूरी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।' कनछेदी ने सारा अर्थशास्त्र समझाते हुए कहा– 'तो क्या यह नैतिक होगा। लोग अपनी जरा-जरा सी जरूरतों को पूरा करने के लिए मेहनत करने की बजाय शरीर के अंग बेचने लगेंगे तो भी आप उनका समर्थन करेंगे।' किसी ने जिज्ञासा की। 'पहली बात तो इस मामले को नैतिकता के साथ जोड़ना ही सरासर गलत है। जिस देश में लोग रोज अपना रक्त बेचते हों। गरीब अपनी सन्तान तक को बेच देते हों। महिलाएं अपनी आबरू बेच रही हों। वहां की सरकार अथवा समाज को नैतिकता की बात करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। भले ही कोई व्यक्ति धन प्राप्त करने के लिए यह काम करे तो भी उसे रोका जाना गलत है। न जाने हम कब तक ऐसी दकियानुसी बातों में उलझ कर पिछड़े रहेंगे।' 'इस प्रकार तो आप बात को कहीं से कहीं ले जा सकते हैं। समाज को चलाने के लिए कुछ न कुछ नैतिकता अनैतिकता में अन्तर करना ही पड़ेगा।' 'इस बात को नैतिकता के साथ क्यों जोड़ें। हर बात के कई पहलू होते हैं। बात केवल इतनी ही नहीं है। हम अरबों रुपया परिवार नियोजन के नाम पर गांव गांव गली गली बांटते फिर रहे हैं। हो क्या रहा है आबादी बढ़ती ही जा रही है। क्योंकि जनसंख्या हमारी नीतियों के विरुद्ध बढ़ रही है इसलिए हम नई आने वाली आबादी का स्वागत नहीं करते। यदि भारत के लोगों को मानव अंगों का विश्वव्यापी व्यापार करने की आज्ञा दी जाए तो क्या हमें इतना पैसा बेकार ही नालियों में बहाने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। नहीं न। उल्टे हमें अधिक संख्या में लोगों के जन्म लेने अथवा मरने पर अफसोस भी नहीं होगा। हर मरने वाला देश के खजाने में कुछ न कुछ जमा करवा कर ही मरेगा। हर नया पैदा होने वाला कुछ न कुछ आशा का संचार करेगा। उसे कच्चे माल की तरह मान कर तैयार माल में परिवर्तित करना कौन नहीं चाहेगा। वैसे भी 'एडेड वेल्यू' का जमाना है। इस पर 'वैट' तो सरकार को मिलेगा ही। आज हस्पतालों के रख रखाव पर कितना धन बेकार ही व्यय हो रहा है। कितने डाक्टरों को दिन रात तैयार करना पड़ रहा है ताकि किसी तरह मरते हुए आदमी को बचा लिया जाए। क्यों भाई! इसका कोई उत्तर नहीं देता। भाई यदि किसी के मरने से देश और समाज को लाभ होता हो तो सफेद हाथी जैसे हस्पतालों को अपने वर्त्तमान स्वरूप में विकसित करने से क्या लाभ? आज तो आवश्यकता इस बात की है कि हस्पतालों को नया रूप दिया जाए। डाक्टरों को इस प्रकार से तैयार किया जाये कि वे बिना किसी समस्या के अधिक से अधिक अंगों का प्रत्यारोपण कर सकें। मरे हुए व्यक्ति के अंगों को अधिक समय तक सुरक्षित रख सकें। नए अंगों की पैदावार के लिए अधिक बच्चे कैसे पैदा हों इस पर शोध कर सकें। क्या जरूरी है कि मानव का बच्चा नौ माह बाद ही पैदा हो अथवा एक समय में एक ही हो। इस बात पर शोध किया जाना चाहिए कि किस प्रकार गंधारी ने सौ बच्चे पैदा किए और कुन्ती में इच्छा मात्र करने से मां बनने की क्षमता कैसे विकसित हुई।' कनछेदी ने समस्या के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए कहा। फिर बोला, 'वास्तविकता तो यह है कि देश की लाखों एकड़ धरती श्मशान और कब्रिस्तान के रूप में बेकार पड़ी हुई है। लोग एक एक इंच धरती के लिए एक दूसरे का गला काट रहे हैं। एक-एक वर्ग मीटर भूमि के मूल्य लाखों करोड़ का आंकड़ा छूने जा रहे हैं। यदि सरकार को अक्ल आ जाये तो यह बहुमूल्य भूमि आगे आने वाली आबादी के काम आ सकेगी और निरन्तर प्रगति कर रहे भवन निर्माण उद्योग को पंख लग जायेंगे। मेरे विचार में तो इस विषय में बड़े-बड़े भवन निर्मात्ताओं को सामने आ कर मोर्चा लेना चाहिए। खैर यह मामला मैं भवन निर्मात्ताओं की बुद्धि पर छोड़ता हूं। मैंने उन्हें भूमि हथियाने का एक नया क्षेत्र सुझा दिया है। आगे वे जानें और देश का भावी भवन निर्माण उद्योग।' कनछेदी ने बात समाप्त करते हुए कहा।

82 साक्षर अपार्टमेंट्स
ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली

हरमन चौहान

एक अनुबंध पुस्तक छपवाने का

मेरे व्यंग्य लेखों की एक पाण्डुलिपि पिछले तीन वर्षों से कहीं लापता थी। मुझे आशंका थी कि हो न हो श्रीमती ने कहीं रद्दी में किसी कबाड़ी को बेच दी होगी, इसलिए मैं उस पाण्डुलिपि को एक तरह से भूल ही गया था। मुझे याद भी नहीं रहा कि मैंने व्यंग्य की कोई हस्तलिखित पाण्डुलिपि कभी अलमारी में रखी थी। एक दिन श्रीमती ने मेरी अलमारी से कचरा साफ करने की ठानी। उसने मुझे बुलाकर पूछा– 'इसमें आपके जो काम के कागज हों, उन्हें अलग से छांट लो। मैं अलमारी की सफाई कर रही हूं। फिर मत कहना कि मैंने आपके साहित्य को कचरे में डाल दिया है या कबाड़ी को बेच दिया है।

श्रीमती की बात सुनकर पहले मैं चौंका और फिर अलमारी की स्थिति को देखकर बोला– 'इसमें रखा ही क्या है? यह सब कचरा ही तो है, अगर नहीं है तो देर-सबेर कचरा हो ही जाना है।

'होने दो, मुझे इससे क्या लेना-देना। मुझे तो रद्दी ढूंढनी है, महीने का अंतिम सप्ताह चल रहा है। कबाड़ी आने ही वाला है। कुछ नहीं तो सब्जी-वब्जी के पैसों का ही जुगाड़ कर लूं?' और श्रीमती ने अपनी बात खत्म करके कागजों की छंटनी शुरू कर दी। थोड़ी ही देर बाद उसने मेरे व्यंग्य लेखों की हस्तलिपि ढूंढ निकाली और मेरे सामने पटकती हुई बोली– 'यही है ना वो पाण्डुलिपि जिसके लिए कई बार आपने घर में बवाल खड़ा किया?' मैं पाण्डुलिपि देखकर उछल पड़ा, जिसे तीन साल से खोज रहा था। मैंने ही इस पाण्डुलिपि को अलमारी में रखा था और रखकर भूल गया। मैंने अपनी याददाश्त के प्रति माथा पीटा। अब श्रीमती मुझ पर हावी होकर मुझे लथेड़ने लगी कि 'आप जैसे लापरवाह व्यक्ति विरले ही मिलेंगे? आप इसे किसी प्रकाशक को देकर छपवा क्यों नहीं देते?'

मुझे श्रीमती का सुझाव पसंद आया। मैं उस पाण्डुलिपि को बगल में दबाये एक प्रकाशक से दूसरे प्रकाशक के पास घूमता रहा, लेकिन कोई छापने के लिए तैयार ही नहीं हो रहा था। अंततः एक छुटभइया प्रकाशक उसे छापने के लिए तैयार हो गया। वह भी इसलिए कि उसने उस पाण्डुलिपि का जर्जर हुलिया देखकर उसे कोई ऐतिहासिक पाण्डुलिपि समझ बैठा। मैंने उसके चमकते चेहरे पर नजर दौड़ायी तो मुझे उसका चेहरा ही व्यंग्य प्रधान लगा। मैंने फिर उसके दफ्तर, उसकी प्रेस और वहां काम करने वाले कंपोजिटरों पर नजर दौड़ायी तो सभी व्यंग्य की स्थितियां उत्पन्न कर रहे थे। उसकी बातों से मुझे ऐसा लगा कि वह पहले कहीं सरकारी प्रेस में अधिकारी पद पर रह चुका है। रिटायर होने के बाद उसने अपना यह निजी प्रेस खोल लिया। पूरे छापाखाने को देखने से उसके कलपुर्जे और अन्य सामान समय-समय पर सरकारी प्रेस से आयतित लग रहे थे। ऐसे आयातित किए हुए सामान का और सदुपयोग क्या हो सकता था? उसके पास अनुभव था और अनुभव के साथ कुछ फंड के पैसे भी थे। पैसों के साथ घर का मकान भी था, जिसके नीचे प्रेस खोल रखा था। उसने मेरी पाण्डुलिपि रख ली। बाद में उसके यहां मैं बराबर चक्कर लगाता रहा और वह बराबर मुझे चाय पिलाकर प्रेम से रवाना करता रहा। सरकारी अफसर के गुण उसमें कूट-कूटकर भरे हुए थे तो वह इतनी आसानी से मेरी पुस्तक कैसे छाप सकता था? सालभर तक वह यही बताता रहा कि मेरी पाण्डुलिपि संपादक मण्डल को सौंप रखी है, उसकी राय आ जाने दो, फिर पुस्तक छापने में बिलकुल देरी नहीं होगी। रात-दिन एक करके किताब फटाफट छाप ही देंगे।' वह मुझे चाय पिलाकर आश्वासन देता और मैं उसके यहां छपने वाले निमंत्रण-कार्ड या शादी के कार्डो के प्रूफ देखता रहता। उसे मुफ्त में काम करने वाला आदमी चाहिए था, सो मैं मिल गया था। बहुत दिनों के बाद मुझे पता चला कि मेरी तरह मुफ्त में वहां काम करने वाले कंपोजीटर भी हैं, जिन्हें यह उम्मीद थी कि एक-न-एक दिन उन्हें गुप्ताजी, सरकारी प्रेस में नौकरी दिलवा कर ही दम लेंगे। तब तक उन्हें निष्ठापूर्वक इसी प्रेस में काम करते रहना है। साल-डेढ़ साल से वे तंग हुए जा रहे थे ओर उनका धैर्य टूट रहा था। सालभर मुझे भी होने को आया था और उनके धैर्य को देखकर मेरा धैर्य भी टूटने लगा। एक दिन मैंने उनसे साफ-साफ शब्दों में अनुरोध कर ही दिया कि 'अगर आप मेरी किताब नहीं छापना चाहते हैं तो मेरी पाण्डुलिपि मुझे लौटा दीजिए?'

गुप्ता जी मेरी बात सुनकर हंस पड़े और बोले, 'तुम्हें यह किसने कह दिया कि मैं तुम्हारी किताब नहीं छापना चाहता हूं? मैं तो आज तुम्हें बताने वाला था कि संपादक-मण्डल ने तुम्हारी किताब छापने कि सिफारिश कर दी है और मैं आज तुम्हें इस बात की बधाई भी देने वाला था। यह रही तुम्हारी पाण्डुलिपि, इसमें संपादक-मण्डल ने कुछ आवश्यक संशोधन करने की सलाह दी है। सो, तुम एकाध सप्ताह में संशोधन करके मुझे दे दो, ताकि छापने का क्रम शुरू करें। हां, इसके साथ ही मूल लेखक का स्वीकृति-पत्र और कापीराइट का प्रमाण-पत्र भी संलग्न करना न भूलें।' इसके बाद मुझे गुप्ता जी ने एक अनुबंध-पत्र यह कहते हुए दिया कि इसे जल्दी से भरकर देना न भूलें, ताकि प्रकाशक और लेखक के बीच कोई विवाद न उठे। अनुबंध-पत्र जो मुझे गुप्ताजी ने सौंपा था, वह शायद उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजों के शासनकाल का रहा होगा? उस सरकारी अनुबंध में कुछ आवश्यक संशोधन करके शायद उनकी अपनी प्रेस में ही अनेक अशुद्धियों के साथ मुद्रित किया गया था। उस प्रेस में निमंत्रण और शादी आदि के कार्ड भी अनेक अशुद्धियों के साथ मुद्रित होते थे, उससे मुझे अनुमान हो गया कि मेरी

किताब भी इसी तरह अशुद्धियों के साथ छापी जाएगी। मेरा माथा ठनका। इस अनुबंध के कुछ अंशों का आप भी मुलाहिजा फरमाइए, मगर अशुद्धियों के सही शब्द का आशय, कृपया ब्रेकिट में पढ़ें :

'यह करार एक पक्षकार के रूप में श्री . . . . . जिसे आगे इस अनुबंध में लेखक कहा गया है। (यहां कहने का तात्पर्य है कि मैं कथित लेखक हूं।) इसके अंतर्गत वह वारिस, निष्पादक और विधिक प्रतिनिधि भी है और दूसरे पक्षकार के रूप में पोथी प्रकाशन प्रेस के मालिक श्री . . . . के बीच, जिन्हें आगे प्रकाशक कहा गया है, के बीच आज तारीख . . . . को किये गये करार का मूल स्थापन है।' लेखक ने हिंदी भाषा में . . . . (व्यंग्य) पुस्तक लिखने का वचनभंग (वचनबद्ध) किया है और जिसे आगे धनुवंत (अनुबंध) कहा गया है। वह इस धनुवंत (अनुबंध) को बंधनों (निबंधनों) और गर्तों (शर्तों) पर और स्वेच्छा से अपने खर्च से (मेरा माथा ठनका) प्रकाशक से प्रकाशित करवाना चाहता है।

अत: दोनों भक्षकारों (पक्षकारों) द्वारा और उनके बीच निम्नलिखित दरार (करार) किया जाता है :

1. लेखक इसमें आगे तय पाए गए निबंधों (निबंधनों) और गर्तों (शर्तों) पर लेखन कार्य करेगा और उसे समय पर पूरा करेगा। (हुजूर, अब मैं उस प्रकाशक महोदय को कैसे समझाता कि जिस पुस्तक का आगे या पीछे उल्लेख किया जा रहा है, उसे मैं तीन वर्ष पूर्व ही लिखकर उन्हें दे, चुका था। हां, सरकारी प्रेसों में करार पहले होता है और पुस्तक बाद में कहीं से सामग्री उड़ाकर लिखी जाती है)
   आगे के अंशों की बानगी देखिए:
2. उक्त पुस्तक की भाषा अ-स्वाभाविक (!) और गरल (सरल) हो तथा उसकी सहेली (शैली) प्यारी और विषय के कुरूप (अनुरूप) हो। उसमें कटु या नीके (तीखे भाव अथवा एक शब्द में अनेकार्थ मिलन) (शामिल न) हो। पियारी (बिहारी) के शब्दों की तरह देखने में नाटे होकर भी गंभीर छांव (घाव) करें, ऐसे शब्द न हों। किसी मंशा (संस्था) या व्यक्ति विशेष पर व्यंग्य न किया गया हो। (अब तक मुझे यह अनुबंध व्यंग्य-प्रधान लगने लगा था)।
3. लेखक उक्त पुस्तक में प्रकाशक की उपेक्षानुसार (अपेक्षानुसार) उसमें तस्वीरें, नक्शे, ग्राफ और अन्य चित्र देकर पुस्तक को सचित्र बनवाएगा, उसे रेगिस्तान की तरह नहीं दर्शाएगा। यह काम वह प्रकाशक द्वारा थोपित (स्वीकृत) या अनुमोदित चित्रकारों की सहायता से पूरा करेगा। लेखक पाण्डुलिपि के साथ जहां से अंश या उद्धरण नकल किये हुए या उड़ाये हुए लिये गये हों, उनका प्रलेख (उल्लेख) अवश्य करेगा। (अब व्यंग्य लेखों में तस्वीरों, ग्राफ्स, नक्शों और चित्रों की कहां आवश्यकता पड़ती है? नकल या उड़ाये गये उनके करार के कुछ अंश केवल इसी व्यंग्य में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूं।
4. गाण्डुलिपि (पाण्डुलिपि) का प्रथम सूप (प्रारूप) तैयार होते ही लेखक उसकी तीन परतियां प्रकाशक को भेजेगा। प्रकाशक का विनिश्चय अंतिम और लेखक पर आबद्धकर होगा तथा प्रकाशक के रूष्ट (स्पष्ट) सुझावों को पुस्तक में तुरंत परिणत करेगा। उक्त पुस्तक बाद में प्रकाशक को मुद्रण के लिए दस दिन के भीतर प्रस्तुत करेगा।
5. प्रकाशक उक्त पुस्तक के प्रूफ कागजों, गेलियों को लेखक को देगा और लेखक अगले दस महीनों में उनका परीक्षण (पुनरीक्षण) सूप (प्रूफ) देखकर लौटा देगा। इस काम के लिए लेखक को कोई अतिरिक्त भारी-श्रमिक (पारिश्रमिक) नहीं दिया जाएगा। लेखक प्रेस के रोज तीन चक्कर लगाएगा और आने-जाने का किराया अपनी गांठ से लगाएगा। (अब तक मैं वही तो करता आ रहा था। ऐसे प्रकाशकों की देश में कमी कहां हैं?
6. उक्त पुस्तक जब कभी किन्हीं प्राकृतिक आफ्ताओं (आपदाओं) को तोड़कर (छोड़कर) प्रकाशित होती है तो लेखक को उसकी अधिक से अधिक दस प्रतियों का मूल्य चुका कर ही प्राप्त करने का हक होगा। (मियां की जूती मियां के ही सिर?)
7. प्रकाशक से लेखक भारीश्रमिक (पारिश्रमिक) और लायल्टी (रायल्टी) का कभी न तो हक जताएगा, न ही तकाजा करेगा।
8. खाण्डुलिपि (पाण्डुलिपि) के मुखपृष्ठ को छोड़कर बाकी के पुट्ठों (पृष्ठों) की घिसाई (छपाई) व कागज का खर्च लेखक स्वयं वहन करेगा। (बाकी रहा ही क्या?)
9. लेखक की एक भी पुस्तक नहीं बिकने पर या लंबे अरसे तक प्रकाशक की अलमारी में प्रतियां के सड़ने पर प्रकाशक को आटा (घाटा) पूर्ति करेगा और नुकसान लेखक वहन करेगा। किसी तरह लेखक आटा (घाटा) देने में असमर्थ रहता है तो इस मवाद (विवाद) को प्रेस में बैठकर ही निपटाया जाएगा और समस्त मामलों का जिम्मेदार, लेखक ही माना जाएगा और वह कर्ज चुकने तक प्रेस में बंधुआ मजदूर की तरह काम करेगा।
10. लेखक को उक्त पुस्तक की समस्त सामग्री टंकण करवा कर तीन प्रतियों में देनी होगी और उसका समस्त खर्च लेखक ही वहन करेगा।
11. लेखक को पुस्तक का कापीराइट का अधिकार नहीं होगा। लेखक प्रकाशक को यह वारंटी या गारंटी देता है कि उक्त पुस्तक में असलील (अश्लील) या सम्मान (अपमान) जनक लेखीय सामग्री नहीं है और किसी धर्म या समुदायविशेष से जुड़ी हुई नहीं है।

और अंत में लिखा हुआ था- 'मुझे उपर्युक्त सभी निबंधन और शर्तें स्वीकार्य हैं।' आगे हस्ताक्षर के लिए जगह खाली थी। नीचे दो गवाहों के लिए एक तरफ हस्ताक्षर की जगह थी और नीचे प्रकाशक के हस्ताक्षर की जगह थी। मैं अपनी उक्त पाण्डुलिपि और करार उनसे क्रोधवश छीनकर अपने साथ ले आया।

ऐसे छुटभइये प्रकाशक आपके शहर में भी होंगे, जो न केवल भाषा का, बल्कि मुद्रण कार्य से जाने वाले ग्राहकों तथा मुझ जैसे लेखकों का भी खिलवाड़ व शोषण करते हैं। पाठकगण ऐसी प्रेसों से सावधान रहिए। मुझे जो भोगना था, वह आपको ऊपर बता ही चुका हूं। आप लेखक हैं तो मेरे अनुभवों से प्रेरणा लीजिए। छुटभइए प्रकाशकों

शेष पृष्ठ 64 पर. . .

राजीव नामदेव राना लिधौरी

भूत का मोबाइल नंबर

हुआ यूं कि एक दिन एक लोकप्रिय टी.वी. चैनल पर एक खबर दिखाई जा रही थी और उसमें बार-बार यह कहकर कि भूत का मोबाइल नंबर यह है 9088882007 आप भी यह नंबर लगातार भूत से बात कीजिए, स्क्रीन पर दिखाया जा रहा था। मैं यह देखकर एवं सोचकर हैरान रह गया कि क्या, हमारे साथ-साथ भूत भी आज 21वीं सदी में आधुनिक युग में जीने लगे हैं। क्या वे भी मोबाइल रखने लगे? फिर तो वे कम्प्यूटर भी रखते होंगे। फिर मैंने सोचा, चलो एक बार हम भी भूत से मोबाइल पर बात करने का मजा ले ही लें, खैर मैंने जैसे ही उस नंबर को लगाया, उधर से जवाब आया, 'इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं, कृपया थोड़ी देर बाद डायल कीजिए।

मेरे बार-बार लगाने पर भी यह नंबर नहीं लगा। मैंने सोचा लगता है आज भूत साहब का मोबाइल व्यस्त है मेरे जैसे सैंकड़ों मूर्ख लोग यही नंबर लगा रहे होंगे। खैर मुझे भी उस रात नींद नहीं आयी। कहां चैन पड़ने वाला था, सोचते-सोचते रात के बारह बजने वाले थे कि अचानक दिमाग में विचार आया कि चलो एक बार और कोशिश करके देख लूं, वैसे भी तो इस समय सब लोग सो जाते हैं और अब कोई उन्हें फोन नहीं कर रहा होगा, मेरा नंबर लग सकता है, फिर मैंने रात के ठीक बारह बजे वह नंबर लगाया, इत्तेफाक से वह नंबर लग गया, रिंग जाने लगी, मैं खुशी से उछल पड़ा। उधर से आवाज आयी- हैलो, कौन?

मैंने कहा, आप कौन साहब बोले रहे हैं? मैंने सोचा कि पहले यह कनफर्म तो कर लूं कि सही नंबर लगा है कि नहीं, कहीं कोई रॉंग नंबर तो नहीं लग गया। मेरा मतलब है कि आप कहां से बोल रहे हैं। मतलब कौन से कब्रिस्तान से, पीपल या इमली के पेड़ से या किसी पुराने मकान से या फिर किसी पुलिया से, उधर से जवाब आया- हम भूत नहीं अभूतपूर्व हैं, हम यमराज बोल रहे हैं, हम कोई भूत-बूत नहीं हैं, हम तो स्वयं लोगों को भूत बनाते हैं, और उनकी हैसियत के अनुसार ही उन्हें जगह देते हैं। कहिए, मुझे कैसे याद किया, क्या आपकी एडवांस बुकिंग कर दूं। सतपुड़ा के घने जंगलों में, किसी बड़े से पीपल या इमली के पेड़ पर, या असम के जंगल में किसी पुराने चंदन के पेड़ पर, या फिर आप किसी बड़े शहर में रहना चाहते हैं, तो एक फाइव स्टार होटल के किसी कमरे में तुम्हारा मर्डर करवाकर सदा के लिए वह कमरा तुम्हारे लिए बुक करवा दूं, उसका कोई किराया भी नहीं देना पड़ेगा, बिलकुल मुफ्त में।

यमराज बोले तू अभी से ही अपनी बुकिंग करा ले, वर्ना भारत की जनसंख्या इसी तरह बढ़ती रहेगी तो फिर कहीं भी मरने के बाद तुझे चैन से सोने के लिए जगह नहीं मिलेगी। फिर तू रात-दिन यूं ही भटकते रहेगा जैसे आज लोग अधिक से अधिक पैसा कमाने के लिए भागते फिरते हैं। गरीब अमीर बनने के लिए लखपति, करोड़पति बनने के लिए, करोड़पति अरबपति-खरबपति बनने के लिए चौबीसों घंटे भटकते फिर रहे हैं। रात में चैन से सो भी नहीं पाते।

तू अपनी लाइफ लोंग इन कमिंग फ्री बुकिंग कर लें और लोकल में मारपीट करने पर तुझे कोई चार्ज (पाप) नहीं लगेगा, मतलब बिलकुल फ्री। अभी भी वक्त है तू शीघ्र लाभ उठा ले, यह सुविधा कुछ चुने हुए भाग्यशाली कस्टमरों को ही दी जा रही है जो कि कष्टों को लेकर न मरे, आराम से बिना तकलीफ के मरे और मरने का भी आनंद उठाएं। साथ में आपको मिलेगा दुश्मनों की गालियां देने (भेजने) वाले एस.एम.एस. के लिए 100 एस.एम.एस. बिलकुल फ्री और रात के बारह बजे भूत एवं चुड़ैलों की लेटेस्ट रिंगटोन बिलकुल फ्री डाउनलोड कीजिए अथवा सीखिए। इस सुविधा की अधिक जानकारी के लिए कृपया अपने नजदीक के कब्रिस्तान के टावर (ऑफिस) से संपर्क करें।

मैंने कहा- यमराज जी मुझे माफ करें, मुझसे रांग नंबर लग गया, मैं तो कहीं और लगा रहा था। अभी तो मैं मात्र 35 साल का हूं, अभी मैंने देखा ही क्या, शतक नहीं तो, कम से कम मेरा अर्धशतक तो हो ही जाने दीजिए। मैंने तुरंत मोबाइल काटा। मैंने सोचा कि पहले यह देखूं कि आखिर यह मोबाइल नंबर किस कंपनी का है, मैंने नंबर पर ध्यान दिया तो पाया कि इस नंबर की तो कोई मोबाइल कंपनी ही नहीं है अर्थात यह नंबर धरती की किसी भी कंपनी का नहीं है। लगता है यमराज जी सही बोल रहे थे, सही में मेरा यह नंबर यमलोक में यमराज जी के घर लग गया था। देखा कि सुबह होने को थी, चैन की सांस ली, सोचा चलो जान बची तो लाखों पाये लौट के बुद्धू वापस आये।

संपादक 'आकांक्षा' पत्रिका
अध्यक्ष 'म.प्र. लेखक संघ'
शिवनगर कालौ

. . . पृष्ठ 63 का शेष

से एक निमंत्रण कार्ड भी शुद्ध छपवाना बड़ा मुश्किल है तो किताब छपवाना क्या आसान है? वैसे भी आजकल किसी अकादमी के प्रकाशन सहयोग से भी पाण्डुलिपि छपवाना तो और भी टेढ़ी खीर है। इसलिए मैं सोच रहा हूं किसी टीवी चैनल पर उसे धारावाहिक प्रसारण के लिए दे दूं, ताकि और नए अनुभव ले सकूं। आपकी क्या राय है?

शिव मंदिर समक्ष, सै
अम्बे कॉलोनी, गोरधन विलास
उदयपुर (राजस्थान) 313001

छगन लाल सोनी

मरना भी तो सन्डे को

इन दिनों सबसे अलग चलने का फैशन चल पड़ा है। सबसे अलग गाड़ी, सबसे अलग साड़ी, सबसे अलग चैनल और चैनलों में सबसे अलग विज्ञापन। सबसे अलग पार्टी, सबसे अलग मुद्दा, मसलन सबसे अलग लालू चरित्र। सड़क पर सबसे अलग ट्रैफिक पुलिस और दिखने में सबसे अलग दलालों के अंदाज, सबसे अलग लिखने और दिखने के लिए सबसे अलग सोचना पड़ता है। ऐसे ही एक दिन अखबार में सबसे अलग खबर पर नजर पड़ी, जिसमें यूरोपीय देशों में इच्छा मृत्यु पर विधेयक लाये जाने की चर्चा थी। दूसरे शब्दों में सशक्त जनों द्वारा निशक्त जनों के नाम मौत का यह संवैधानिक फरमान था। देर सबेर वहां के बाद यहां भी यह प्रस्ताव आ ही जाएगा। इच्छा मृत्यु पर यूरोपीय समाज की तुलना में हमारे पास अपने तोड़ हैं यह बात पश्चिम के चर्चा जगत को नहीं मालूम कि भारत के महाभारत में गंगापुत्र भीष्म को इच्छा मृत्यु का वरदान मिला था, वे बाणों की शय्या पर कुरुक्षेत्र से युद्ध का सीधा प्रसारण देखने वाले प्रथम सेनापति थे। बेबी टेस्ट ट्यूब और क्लोन प्रक्रिया के जनक यूरोप के विज्ञान जगत को भी यह ज्ञात नहीं है कि भारतीय पुराण कथा के इतिहास में कई-कई संतान नियोग प्रक्रिया में जन्मे जो बड़े विद्वान और पराक्रमी भी हुए।

आशा-निराशा और जीवन-मृत्यु के प्रसंग पर ऐसे ही एक दिन अखबार से पता चला कि एक युवक चूहामार दवाई खाकर मर गया। खबर से हैरानी हई कि जिस दवाई से हमारे घर का चूहा नहीं मरा उसी दवाई से नौजवान चल बसा। कभी-कभी वाकये ऐसे हो जाते हैं कि जिंदगी पे रोना और मौत पे हंसी आती है। अब हंसे की रोयें इसी मनन में हम लीन थे तभी सुमित्र आ पहुंचे। संडे का दिन, नाश्ते का समय सामने मित्र थे और हाथ में अखबार। सोचा, चलो अच्छा है टाइम पास हो जाएगा, किंतु यह मौका भी हाथ से जाता रहा, जब मित्र ने बताया कि उनके मित्र के मित्र अमर नहीं रहे। अमर कान होना अचरज की बात थी, इससे भी बड़ी विडंबना कि वे ज्योतिष के प्रकांड विद्वान थे, उनके दरवाजे पर दरवाजे से बड़ा बोर्ड लगा था, 'भविष्य जानिये'। सन्डे था, छुट्टी थी इसे मित्र का आग्रह कहिये या कि हमारा अचरज योग कि हमें ज्योतिषाचार्य अमर शास्त्री जी की अंत्येष्टि में जाना पड़ा। ज्योतिष को मानें या न मानें पर ज्योतिषाचार्य को मानना पड़ेगा, कि उन्होंने अपने लिए संडे जैसे अच्छे दिन मुहुरत का चयन किया था, ताकि सारे जजमान फुरसत में दर्शन लाभ ले सकें। किसी के न होने का गम तो करना ही था। संडे या छुट्टी थी इसलिए मिट्टी पर जाना ही नैतिक और शास्त्रीय जिम्मेदारी थी। जैसे तैसे श्वेत परिधान (कपड़े) की खोज हुई, लोग सफेद कपड़े शायद इन्हीं दिनों के लिए जतन के साथ रखते हैं। शहर के नामी भविष्यवक्ता नहीं रहे, तो शहर का क्या होगा। इस विषय पर मनन करते हम श्मशान यानि मुक्तिधाम तक पहुंच गये।

श्मशान शांति के लिए विख्यात रहा है किंतु यहां भी सबसे अलग माहौल था। लोग अपने हिसाब से चार-चार छः-छः के समूह में बैठ गये। जितना मुंह उतनी बातें। इतना बड़ा शहर है आठ दस लोग तो मर ही जाते हैं सबको यहीं आना है शहर का एकमात्र मुक्तिधाम जो है। कभी यह श्मशान शहर के आखिरी में हुआ करता था, अब यह शहर के बीचों-बीच है यानि मुक्ति का सुलभ और सस्ता साधन शहर के बीचों-बीच उपलब्ध है। कभी यह स्थान निर्जन हुआ करता था तब लोग भूतों के डर से आने-जाने में घबराते थे आज यह जनसंपन्न है फिर भी लोग कब्जाधारियों के डर से दिन में घबराते हैं। कुछ बुजुर्ग क्रिया की प्रक्रिया को अंजाम देने में लगे थे। चूंकि नाले के किनारे लोग जमा थे कुछ लोग लोटा लेकर इधर-उधर योगलीन हो गये। एक समूह में गहन चुप्पी थी लगा कि वे लोग मृतक के ज्यादा करीब होंगे, पूछने पर पता चला कि वहां क्रिकेट के स्कोर में सचिन तेन्दुलकर मात्र तेरह रन बनाकर बोल्ड हो गये थे। हमारे परम मित्र हमें तन्हा छोड़कर मुक्ति धर्म निभा रहे थे, हम चुपचाप देख रहे थे दरअसल हमें मुक्ति प्रक्रिया का ज्ञान नहीं था, लोगों को यह बताना यानि मरने की संस्कृति से विमुख होना था। अतः चुप्पी में ही समझदारी थी। एक हम ही थे जिसे पूरे श्मशान में अनुशासन का ध्यान था, पर कुछ लोगों को यह बात हजम नहीं हुई वे हमारे समीप खिसक आये, इससे पहले कि बक-बक गोष्ठी की करुण रस में पूछा- 'यार इन्हें क्या हुआ ये तो अच्छे खासे तंदुरूस्त थे', एक ने बताया कि वे किसी कवि की हस्तरेखा देख रहे थे कि उन्हें अटैक आ गया जो कि तीसरा अटैक था। पहला अटैक तब हुआ जब इनके प्रत्याशी इनसे हाथ दिखाकर चुनाव हार गये, दूसरा तब हुआ जब पत्नी से तलाक हुआ। लोगों ने बताया कि शास्त्री जी के दोनों पड़ोसी अनबन के बावजूद अंत्येष्टि में आये थे और लोगों को शास्त्री चरित समझा रहे थे कि बेचारे चवालीस साल में ही चल बसे। विरक्ति के ठाव में पड़ोसी के हृदय परिवर्तन ने हमारा मन मोह लिया। फिर भी हम मायूस थे, चुप थे। लोग हमारी चुप्पी पर बोलने लगे। चूंकि ऐसे अवसर पर बोलने वाले शब्दों का ज्ञान हमें नहीं था, माहौल से ज्ञात हुआ तो बोलने लगे- 'बिमारियों में हार्ट अटैक का जवाब नहीं, हंसते-हंसते मरो, मरते-मरते भी दुश्मनों को सरप्राइज दे जाओ। मरने में सहुलियत बताने में आसानी और सुनने में आठवां आश्चर्य हार्ट अटैक।' हाल ये गम के इस आलम में जीवन का तो कोई क्रेज नहीं रहा कम से कम मरने का

तो क्रज हो। मुक्तिमाध के ही दूसरे समूह में एक मृतक ऐसा भी था जो रात के नशे में खड़ी ट्रक को पीछे से दे मारा, लोग ट्रक वाले को कोस रहे थे और मृतक की प्रशंसा में कई-कई संस्मरण प्रशस्तियों में सुनाये जा रहे थे किंतु मृतक का पुत्र इससे संतुष्ट नहीं हुआ वह भी नशे में चिल्ला रहा था- देखो बाप हो तो ऐसा साला मेरे हिस्से की दारू पीकर मर गया और अपने हिस्से का करजा मेरे हिस्से में छोड़ गया बाप हो के मेरा नाम बदनाम कर गया।

मुक्तिधाम में मरने वालों के प्रति जीवित लोगों की श्रद्धा देखकर मृत्यु लोभ और जीवन से विरक्ति का अहसास हुआ, इसे मनोविकार कहें या आत्मसम्मान की उत्कंठा कि मन में मरने के सहजभाव यानि आत्मबोध हुआ कि सैद्धांतिक रूप से जैसे-तैसे जी तो लिये सोचा कि अब मरके भी लोगों का व्यावहारिक रूप देखा जाये। सोचा कि मरा जाये, पर कब कैसे? प्रश्नोत्तरी के क्रम में फिर सोचा कि अभी उम्र ही क्या है? दिवंगत महापुरुषों के अध्ययन से पता चला कि बड़े-बड़े महापुरुष तो कम उम्र में ही लोकप्रियता के रिकार्ड अपने नाम कर गये। कम उम्र में आदि शंकराचार्य परलोक सिधारे, स्वामी विवेकानंद, गुरूदत्त और दुष्यंत कुमार जैसे लोग अपने-अपने क्षेत्र में चमत्कार करते गये तो क्यों न प्रतिभा निखार के लिए मरने का यत्न किया जाए, सोचा जीवन कर्म के बहाने न सही मुक्ति कर्म के बहाने ऐतिहासिक हो जायें।

एक दिन संडे प्लान में सोचा कि कुछ किया जाये, उसी संडे को इच्छा मृत्यु पर गोष्ठी थी, हमारे कथ्य व तथ्य को बल मिला। मुक्तिधाम में मृतकों के प्रति सहानुभूति से हमारा भी हृदय मुक्ति-प्रसंग में परिवर्तित हो चुका था, लगा कि भारतीय सेना में मरणोपरान्त दिये जाने वाले सम्मान चक्रों के पीछे भी शायद यही धारणा हो कि मरने के बाद ही सम्मान दिया जाये। कहते हैं कि दमित इच्छाओं का अवतरण सपनों में होता है, ऐसे ही एक दिन संडे को सोये हुए थे कि सपनों के शिकार हो गये। सपने में हमने देखा कि हम सचमुच मर गये थे, किंतु लोगों को अपनी पड़ी थी, सारे रिश्तेदार हमसे हुज्जत कर रहे थे। सबसे पहले पत्नी बोली ऐसे कैसे मरोगे बेटी की शादी हो जाने दो फिर मर जाना। बेटा बोला नौकरी-वौकरी लग जाने दो फिर मरना, बेटी बोली घर की मरम्मत तो हो जाये। मित्र कहने लगे एकाध संकलन तो छप जाने दो। अब हम क्या कहते, क्या करते, हम तो मर गये थे, कुछ कह देते या उठ बैठते तो जाने क्या हो जाता, वर्तमान में ही भूत बन जाते। लेटे-लेटे इंतजार करते रहे कि श्मशान ले जाने की तैयारी हो किंतु किसी ने उठाया तक नहीं। कुछ देर इंतजार के बाद हम स्वयं ही उठकर चलने लगे यानि देर हुआ तो आंखे खुल गई। उनींन्दे सपने अधूरे ही टूट गये। इसे मुक्ति का मोह कहिये या जीवन से विरक्ति का दिग्भ्रम कि दिल दिमाग से मरने का जुनून कम नहीं हुआ। बीते सपने का खौफ मन में जरूर रहा कि हो न हो मरने के बाद यह स्थिति निर्मित हो जाये कि लोग पूछने लग जायें कि हम क्यों मरे। फटेहाल जीते रहे तब कोई नहीं पूछा कि कैसे हो। मरे कि पूछे वह भी कानाफूसी में कि हम क्यों मरे, कहीं कर्जे तो नहीं ले रखे थे, या परेम-वरेम का चक्कर तो नहीं रहा। कुछ न कुछ तो है वरना आदमी मरने के लायक तो दिखता नहीं था। मरने के लिए आवश्यक योग्यता मनहूसियत भरा चेहरा या कि चेहरा बनाने की कला में निपुण होना चाहिए ताकि पहले से ही सहानुभूति मिले जैसे- धनंजय चटर्जी को मिला। जैसे कि सम्पत्ति वाले दादा-दादी या नाना-नानी के साथ होता है। सारे हिस्सेदार-रिश्तेदार चाहते हैं कि पुण्यात्मा की अर्थी उनके ही देहरी से निकले। महीने दो महीने पहले गंगाजल मंगाकर रख लिया जाता है। मरने वाला खाना पीना छोड़ चुका होता है फिर भी आगन्तुक हितैषी साथ में सेब मुसंबी अंगूर लाना नहीं भूलते, दो चार घंटे बैठ गये तो खुद ही खाकर चले जाते हैं यही लोक व्यवहार है।

हमारी धारणा तो थी कि सबकी सहूलियत के लिए संडे को मरना हितकर होगा किंतु विडंबना यह थी कि संडे को वैदिक कर्मकाण्डों में अहमियत नहीं दी जाती। संडे को मर गये तो मृत्यु को धार्मिक मान्यता नहीं मिलेगी, मुक्ति व्यवधान अलग। वैसे भी संडे का दिन मौज-मस्ती का दिन होता है, गोष्ठी, पार्टी, पिकनिक यानि पूरा का पूरा ऐश करने का दिन है, यदि धोखे से कोई इस दिन मर जाये तो उसकी आत्मा गार्डन, थियेटर, बार या पिकनिक स्पॉट में भी भटकती रहेगी। आत्मा को क्यों अपने जैसा निठल्ला बनायें। जिंदगीभर जीवन के बारे में सोचते रहे, मौत के आकर्षण का ध्यान ही नहीं रहा। मुक्तिधाम में मुक्तियोग का चमत्कार तन, मन और मस्तिष्क को रोमांचित करता रहा। इस बीच सोचने का मौका मिला तो सोचा कि अब मरना ही है तो मरने का मुहूर्त भी देख लिया जाये। जीवन से मुक्ति का प्रश्न मौत के बाद भी यथावत रहे तो मरने से क्या फायदा। जीवन के असफलताओं का ग्रास कहीं मौत भी न बन जायें। अत: सगुन मृत्यु की तलाश में ज्योतिष कके पास गये तो वहां पता चला कि ज्योतिष महोदय मंत्री जी के बुलावे पर मंत्रालय गये हुये थे। मरना तो सुनिश्चित हो गया किंतु 'मुक्तिवार' तय करने में काफी अड़चने थी। सोमवार से शनिवार तक किसी न किसी देव का वार होता है, देवों के वार में मर गये तो देव के कुपित होने का डर, सोमवार या गुरूवार को मर गये तो पत्नी कोसेगी कि उपवास के दिन मर गया चैन से खाने भी नहीं दिया। मंगलवार हमारे मित्र बजरंगी का दिन है यदि इस दिन मर गये तो लोगों को हमारे बारे में जानकारी उपलब्ध कौन कराता, यह तो बजरंगी के मौन व्रत का दिन है। इसी आपाधापी में दो तीन कप चाय पी गयें, तब मुक्ति का आत्मबोध हुआ कि संडे से बेहतर दिन न जीने के लिए हो सकता है और न ही मरने के लिए। किताबें खरीदना, अखबार चाटना, दिमाग चाटना, उधारी मांगने से लेकर देश सेवा की बड़ी-बड़ी बातें करने का दिन है- संडे। तो क्यों न मुक्ति के लिए भी इसी दिन का चयन किया जाये, यानि संडे जिंदाबाद। बांस को छुट्टी के दिन अर्जी भी देने की जरूरत नहीं है। सौ बात की एक बात वह भी अकाट्य प्रमाण के साथ कि शवयात्रा में भीड़ का कीर्तिमान बनाना हो तो संडे के दिन ही मरना चाहिए।

सुभाष चौ
जिला-दुर्ग (छत्तीसगढ़)

कुमार विनोद

मुशायरा हिट करवाने के अचूक नुस्खे

कई छोटे-बड़े मुशायरों में शिरकत कर चुके इस खाकसार शायर की तरफ से पेश हैं किसी भी मुशायरे को हिट करवाने के चंद अचूक नुस्खे :

नुस्खा नंबर एक : देश की संसद में भले ही महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण अभी तक न दिया गया हो लेकिन मुशायरे के 'सक्सेस रेट' को 100 प्रतिशत तक ले जाने के इच्छुक आयोजकों को चाहिए कि वे इसमें भाग लेने वाली महिलाओं का 33 प्रतिशत कोटा तुरंत प्रभाव से 'फिक्स' कर दें बशर्ते कि वे इसके लिए तयशुदा कुछ अनिवार्य एवं ऐच्छिक शर्तों को पूरा करती हों। अनिवार्य शर्तें यानी आकर्षक देहयष्टि, सुरीली आवाज़, दिलकश अदाएं आदि-आदि और ऐच्छिक शर्तें यानी कलाम अच्छा होना, (हो सके तो) खुद का लिखा होना आदि-आदि। योग्य उम्मीदवार न मिलने की स्थिति में ऐच्छिक शर्तों में ढील दी जा सकती है लेकिन अनिवार्य शर्तें एकदम अनिवार्य हैं जिन पर किस भी हालत में समझौता नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा न करने वाले आयोजक मंच पर श्रोताओं की ओर से आने वाले सड़े गले टमाटरों, अण्डों, जूतों, चप्पलों आदि के लिए स्वयं उत्तरदायी होंगे।

नुस्खा नंबर दो : गंभीर किस्म के कवियों, शायरों आदि से यथासंभव परहेज किया जाए। हास्य कवियों अथवा हास्य के नाम पर चुटकुले परोसने वालों, बीच-बीच में द्विअर्थी जुमलों का प्रयोग कर जनता की नब्ज़ टटोलने वालों को तरजीह दी जाए। बतौर 'आइटम नंबर' वीर रस के एकाध कवि को भी शामिल किया जा सकता है। आयोजकों को चाहिए कि वे मंच संचालन की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी किसी उच्च कोटि के मसखरे किस्म के कवि को दें जो कि मुशायरे में अपवादस्वरूप उपस्थित किसी भी संजीदा किस्म के कवि के अलावा देशभक्ति का वही पुराना, बेसुरा, अनरियलिस्टिक राग अलापने वाले (संभवत: मरियल से) कवि आदि को बिना किसी भूमिका के शुरू में ही निपटा दे या यूं कहें कि टपका दे।

नुस्खा नंबर तीन : किसी भी मुशायरे की सफलता का आकलन उसमें बजने

वाली श्रोताओं की तालियों से किया जाता है। जितनी ज्यादा तालियां बजती हैं मुशायरे को उतना ही हिट करार दिया जाता है। अत: आयोजकों को चाहिए कि वे मुशायरे में भाग ले रहे शायरों का पेमेंट उनके हिस्से में आई तालियों के मुताबिक करना शुरू कर दें। इससे तालियां बजवाने की पूरी जिम्मेदारी शायरों की हो जाएगी। शायर चाहें तो कुछ टोटके आजमा सकते हैं– मसलन एक शायर मंच से झूठ-मूठ की घोषणा कर दे कि सुनने में आया है कि जो श्रोता मुशायरे में आकर भी ताली नहीं बजाता भगवान उससे नाराज हो जाते हैं और अगले जन्म में उसे घर-घर जाकर ताली बजाने वाला बना देते हैं। कोई सुंदर-सी शायरा अपनी सुरीली आवाज़ में श्रोताओं से मुखातिब होकर कह सकती है– मेरी ये पंक्तियां आपका ढेर सारा प्यार चाहती हैं जो आप तालियां बजाकर मुझ तक पहुंचा सकते हैं। बस फिर देखिए 'बिन मांगे मोती मिले, मांगे मिले न भीख' वाली कहावत एकदम गलत साबित हो जाएगी और पूरा पंडाल तालियों की आवाज़ से गूंज उठेगा। जिस किसी शायर को अपने कलाम पर तालियां बजने की जरा भी उम्मीद न हो वह खुद को होने वाली पेमेंट का कुछ प्रतिशत मंच संचालक को देने का वादा कर उससे मदद की गुहार लगा सकता है। ऐसे शायर को चाहिए कि वह अपने साथ किराए के कम से कम चार-पांच श्रोता जरूर लाए जो कि श्रोताओं की भीड़ में अलग-अलग जगहों पर बैठ जाएं। अब मंच संचालक को शायर की ओर से मिलने वाले कमीशन के बदले सिर्फ इतना करना है कि वह हर पंक्ति के बाद वाह-वाह, भई बहुत खूब, क्या बात है- कहते हुए, श्रोताओं को दिखाते हुए, अपने दोनों हाथों को हवा में ऊपर उठाकर ताली बजाए जिसका अनुसरण भीड़ में शामिल वही किराए के चार-पांच श्रोता करेंगे और फिर भेड़चाल में माहिर आम जनता करेगी। नतीजा. . .मुशायरा सुपर, डुपर हिट!

रीडर, गणित विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरुक्षेत्र-136119 (हरियाणा)

प्रमोद कुमार दुबे

अनोखेलाल हेड

हेड की कुर्सी पर बैठने के बाद प्रोफेसर अनोखेलाल विभाग के रीडरों-लेक्चररों को अक्सर अपने दुख-दर्द की कहानी सुनाया करते कि वे कितने सताए गए, दुखाए गए। विभाग के सदस्य उनके कहने का मतलब यह नहीं समझ पाते कि वे भी सताएंगे-दुखाएंगे, अपनी दुखती रगों पर मरहम लगाएंगे। सिलसिला शुरू हुआ, हेड के चैम्बर में जब कोई बुलाया जाता, वह चहकता हुआ भीतर जाता और मुरझाया हुआ बाहर निकलता। जब विभाग का प्रत्येक सदस्य हेड के डंक के अनुभव से गुजर गया तो एक समान विपत्ति के कारण स्वाभाविक रूप से उनमें एकता उभरने लगी। अंग्रेजों की सड़ी हुई अक्ल 'फूट डालो और राज करो' का पूरा अनुसरण करने के बावजूद अनोखेलाल फेल होने लगे। उनके राज में एक गीत का मुखड़ा 'बिछुए ने डंक मारा हाय! हाय!' सबकी जुबान पर चढ़ गया। अब होता यह कि जब कोई व्यक्ति हेड के चैम्बर से मुंह लटकाए बाहर निकलता उसके दूसरे-तीसरे साथी गुनगुनाने लगते– 'बिछुए ने डंक मारा. . .' और हंसी के फव्वारे में दर्द की ऐसी-तेसी हो जाती। दीवारों के कान से होकर यह खबर हेड तक पहुंचती।

हेड ने विभागीय सदस्यों की मीटिंग बुलाई। मीटिंग के बड़े टेबल के चारों ओर विभागीय सदस्य बैठे और एक और अनोखेलाल हेड। उन्होंने कहा– 'मुझे कितना सताया गया, दुखाया गया आप लोग नहीं जानते। मैं चाहता हूं किसी को भी मुझसे कोई कष्ट ना हो। मुझसे किसी को कोई कष्ट हो तो बतावे।' चुप्पी छाई रही। चाय की चुस्कियां चलने लगीं। हेड तल्ख होकर बोल पड़े, 'वे जानते हैं कि आजकल उन्हें बिच्छू कहा जा रहा है, वे एक-एक को देख लेंगे।' चायखोरी के बाद बेमुंह मीटिंग समाप्त हुई। न उन्होंने अपना काम छोड़ा, न लोगों ने उस गीत का मुखड़ा।

विभाग को ठीक करने का अत्याधुनिक उपाय अनोखे ने निकाला। उन्होंने स्टाफ रूम में छुपा हुआ कैमरा लगवाया। वीडियो रिकॉर्डिंग करवाई। सी.डी. तैयार हो गई। विभाग के सदस्यों के दिमाग में भी एक तरकीब का मेंढक उछला, यह कि हेड के चैम्बर में

जिसका बुलावा आए और हेड उसे उत्पीड़ित करने लगे वह व्यक्ति ठीक उसी समय अपने मोबाइल फोन पर निर्धारित नंबर डायल करेगा, उसके मोबाइल फोन की आवाज टेप कर ली जाएगी। दोनों ओर रिकॉर्डिंग हुई।

हेड ने सबको मजा चखाने के लिए विभाग की मीटिंग बुलाई और कम्प्यूटर में सी.डी. डलवाई। कम्प्यूटर स्क्रीन पर एक-एक चेहरे साफ दिखने लगे। कौन-कौन गाना गा रहा है, कौन-कौन ठहाके लगा रहा है और कौन यह भाषण दे रहा है कि बिछुआ डंक मारने से पहले प्यार से करीब खींचता है। सारे वारदात सप्रमाण दिखाने के बाद अनोखे ने अपनी घूमने वाली कुर्सी बैठे-बैठे मीटिंग टेबल की ओर घुमाई और विभागीय सदस्यों की ओर हिकारत से देखने लगे। इसके पहले कि वे मुंह खोलते टेपरिकार्डर की आवाज खुल गई। अनोखे भी सन्न रह गए। दोनों ओर चुप्पी छाई रही। चाय की प्यालियां सबके आगे पड़ी-पड़ी प्रतीक्षा कर रही थीं कि कोई तो चुस्की लेगा। हेड उठे तो मीटिंग उठी। कुर्सी से उठने के बाद रुआंसा होकर हेड ने पूछा, 'बिच्छू कौन है? क्या मैं हूं?' सबने कहा, 'आप तो बिलकुल नहीं हैं सर!' 'फिर कौन है?' 'वही हो सकता है सर! जिसने आपको भी डंक मारा और आप भी डंक मारने पर उतारू हो गए। उसे भी किसी ने डंक मारा होगा। तभी वह डंक मारना शुरु किया होगा।' लगता है, हमें असली बिच्छू तक जाने के लिए इतिहास के गहन शोध में उतरना होगा और आदिम बिच्छू-वंश का पता लगाना होगा। हेड दोबारा मीटिंग के लिए बैठे तो विभागीय सदस्य भी बैठ गए। सदस्यों में से किसी ने कहा, 'आप के बाद में हममें से जो भी हेड की कुर्सी पर बैठेगा, पूरी संभावना है कि वह भी बिच्छू की तरह डंक मारने लगेगा। फिलहाल कोई बिच्छू हमारे सामने है तो वह है– वह है– वह है. . .सबकी नजर हेड की खाली कुर्सी पर जा टिकी। अनोखे भी विभागीय सदस्यों के साथ मीटिंग टेबल पर दोनों हाथ रख उस कुर्सी को देखने लगे, जिस पर बैठने के बाद उनमें हेड होने का गरूर चढ़ जाता है। अनोखेलाल हेड ने कहा, 'छोड़िए जाने दीजिए, आप लोग चाय पीजिए।'

वरिष्ठ प्रवक्ता, भाषा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली–110016

अतुल कनक

दो कौड़ी का आदमी

मैं सोचता हूं कि आत्मकथा लिख ही मारूं। इस देश में अधिकांश पुस्तकें जब लिख ली जाती हैं तो वो 'लाइब्रेरीज़' में खपाने के लालच में पाठकों के सिर पर मार दी जाती हैं। अव्वल तो कोई ऐसी किताबों को पढ़ता ही नहीं और ग़लती से यदि पढ़ लेता है तो फिर बहुत सारे दिन इसी असमंजस में बिताता है कि इस पुस्तक को पढ़ने के पाप के प्रायश्चितस्वरूप वह खुद को मारे या लेखक को?

जहां तक मेरी जानकारी है, यह असमंजस अगली पुस्तक पढ़ने तक बना रहता है। पाठक जब कई पुस्तकें पढ़ लेता है, तब उसे यह दिव्यज्ञान होता है कि 'एक ही उल्लू काफी था बर्बाद गुलिस्तां करने को / हर शाख पे उल्लू बैठा है- अंजामे गुलिस्तां क्या होगा?' फिर पाठक को एक पुराना कवि याद आता है- जिसने कहा था कि 'साधु ऐसा चाहिये जैसा सूप सुभाय / सार-सार को गहि रहे, थोथा देइ उड़ाय।' कोई ग्वालन अपने छाछ को खट्टा नहीं बताती। ठीक इसी तरह आदमी शैतान होते हुए भी साधु दिखना चाहता है। खुद को साधु स्वभाव का साबित करने के प्रयास में वह पचास रुपये लागत वाली दोयम दर्जे की किताब भी ढाई सौ रुपये में तब तक खरीदता रहता है, जब तक सचमुच साधु अर्थात बाबाजी अर्थात ठन-ठन-पाल नहीं हो जाता। मुझे लगता है कि हिंदी की किताबों के पाठक कम होने की चिंता ऐसे ही किसी सत्य से साक्षात् के बाद प्रबल हुई होगी।

बहरहाल, बावजूद इस चिंता के कि लोग खरीदकर किताबें नहीं पढ़ते, लिखने वाले दनादन लिख रहे हैं और छापने वाले धड़ाधड़ छाप रहे हैं। लोकतंत्र में सब खप जाता है। आपको खपाना आना चाहिये। आपको यदि अर्थशास्त्र की मामूली जानकारी भी है तो आप समझ सकते हैं कि बुरी मुद्रा अच्छी मुद्रा को चलन से बाहर कर देती है। यह ग्रेशम नामक अर्थशास्त्री द्वारा प्रतिपादित एक प्रसिद्ध नियम है। यह नियम सही साबित कैसे होता है, इसके लिये आपको भौतिक विज्ञान की जानकारी होना आवश्यक है। भौतिकी के मेरे जैसे चलताऊ विद्यार्थियों के एक बड़े सिरदर्द ने बताया था कि प्रकाश किरण जब एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रवेश करती है तो सीमांत पर अपने पथ से विचलित हो जाती है।

इस विचलन को आप अपनी सुविधानुसार भ्रष्टाचार या कमीशनखोरी भी कह सकते हैं। पुस्तकें चूंकि प्रकाशित होती हैं, इसलिए वो प्रकाश किरणों की तरह ही होती हैं और अक्सर उन्हें एक माध्यम से दूसरे माध्यम में भेजने के लिए विचलन का सहारा लेना पड़ता है। लोकतंत्र राजनीति-शास्त्र का विषय है। लेकिन इसे सफल बनाने के लिए अर्थशास्त्र और भौतिकशास्त्र जैसे विषयों की जानकारी भी आवश्यक है। प्राचीनकाल में हमारे यहां इसीलिए विद्यार्थियों को सभी विषयों का ज्ञान दिया जाता था। आजकल पब्लिक स्कूलों में (मैं 'स्कूल्स' शब्द का इस्तेमाल भी कर सकता था, लेकिन स्कूल शब्द पर 'ओ' की मात्रा लगाने से यह संतुष्टि मिलती है कि अंग्रेजी हम पर नहीं, हम ही अंग्रेजी पर सवार हैं। इस प्रकार राष्ट्रभक्ति का एक बड़ा दायित्व पूर्ण होता है।) मोटी फीस लेकर और बच्चों को कमीशन के माध्यम से सलेबस में आई किताबें पढ़ाकर ज्ञान नहीं दिया जाता। जानकारी दी जाती है। सरकारी स्कूलों में तो इतना भी हो जाए तो बहुत है। जहां तक विश्वविद्यालयों का सवाल है तो उनकी प्रतिष्ठा ज्ञान बांटने की बजाय फर्जी डिग्रियां बांटने के मामले में अधिक है।

मैं शायद मूल विषय से भटक रहा हूं। यह भटकाव ही लोकतंत्र की दुविधा है। कोई भी अपना काम ईमानदारी से नहीं करना चाहता है। आरोप केवल सरकारी कर्मचारियों पर लगता है लेकिन हर तरफ एक अजीब किस्म की कामचोरी व्याप्त है। अपनी-अपनी जिम्मेदारियों से बचने के लिए अपराधी राजनीति में और राजनेता अपराध जगत में घुसपैठ कर रहे हैं। सब कुछ गड्ड-मड्ड हो गया है। जिन्हें जेल में होना था, वो शपथग्रहण करके इतरा रहे हैं और जिन्होंने देश की आजादी के लिए संघर्ष किया था, वो यदि अभी तक जिंदा हैं तो किसी अंधेरे कोने में उपेक्षा की जिंदगी बिता रहे हैं।

खैर, मेरी इच्छा है कि आत्मकथा लिखी जाए। इसे लोग 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की श्रेणी में तो रखेंगे नहीं। अलबत्ता, इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि इसे पढ़कर लोग कृश्नचंदर की चर्चित कृति 'एक गधे की आत्मकथा' का भी उल्लेख करें। मुझे कृश्नचंदर की कृति के नायक से तुलना पर आपत्ति भी नहीं है। लगभग दस साल की नौकरी और पौने नौ साल के वैवाहिक जीवन के बाद मैं समझ चुका हूं कि हम मध्यवर्गीय मुखियाओं की स्थिति किसी गधे से कम नहीं होती। दफ्तर में काम से और गृहस्थी में जिम्मेदारियों से इतनी बुरी तरह लदे होते हैं कि फुर्सत से ज़मीन पर लौटने की इच्छा मन में ही दबी रह जाती है और समूचा बैसाख खीसें निपोरते हुए गुज़र जाता है।

मेरे श्वसुर जी, जो उनके और मेरे-दोनों के दुर्भाग्य से उस ही विभाग के अधिकारी पद से सेवानिवृत्त हुए हैं, जिस विभाग के भ्रष्टाचार को मेरी ईमानदारी की सनक कुंठित कर रही है- बरसों तक मुझे दो कौड़ी का आदमी समझते रहे। दरअसल, मैंने उनकी लाड़ली से प्रेमविवाह किया है और प्रेम-विवाह संहिता की धारा-6 की उपधारा एक के तहत उन्हें इस विवाह के लिए कोई दहेज नहीं देना पड़ा। आवश्यकता हुई तो इस संहिता की शेष धाराओं /

शेष पृष्ठ 72 पर. . .

अरविंद तिवारी

चिड़िया घर में पहला दिन

शिक्षा विभाग का गेस्टहाउस बाहर से सर्किट हाउस जैसा था अंदर पहुंचने पर लगता था जैसे शेरशाह सूरी के जमाने में बनवाई गई किसी धर्मशाला में आ गए हैं। पंखे थे मगर चलते नहीं थे। बल्ब भी थे मगर जलते नहीं थे। मैंने अपने पैसों से खरीद कर एक बल्ब लगवा दिया जो जलने लगा था। इस कुर्बानी के पीछे दस-पन्द्रह दिन गेस्ट हाउस में डेरा डाले हुए थे। ठहरने की अधिकतम अवधि समाप्त होने से पहले ये पंछी दौरे पर उड़ जाते थे।

इस गेस्ट हाउस की समस्त व्यवस्थाएं कार्यालयी भ्रष्टाचार से प्रेम विवाह कर चुकी थीं। अत: गेस्टहाउस के कैम्पस में भ्रष्टाचार के बच्चे धमाचौकड़ी मचाते रहते। इस गैस्ट हाउस में आने वाली हर नई वस्तु क्रय तिथि के चंद हफ्तों के बाद ही बेकार हो जाती। गेस्ट हाउस में चलने वाली कैंटीन रोगियों के लिए खाना तैयार करती थी जिसे खाकर गेस्टहाउस में ठहरने वाला हर व्यक्ति मुतमईन हो सकता था कि वह बीमार नहीं होगा। सब्जी और दाल उबली हुई बनायी जाती थी। दाल को गाढ़ा बनाने के लिए उसमें बड़े करीने से चावलों का मांड मिलाया जाता था।

सुबह उठकर तुरंत नहाना पड़ता अन्यथा आठ बजते-बजते टंकियों का पानी खौलने लगता। बीकानेर का मौसम साहित्यकारों के मूड की तरह था, गर्मी पड़ती तो जमकर पड़ती और जब जाड़ा आता तो पानी को जमा देता। सुबह बर्फ पानी और दोपहर को गीजर जैसा।

गेस्टहाउस में जब मेरी चरण रज आई, तब अक्टूबर का महीना चल रहा था। रात को गुलाबी सरदी पड़ती मगर सुबह धूप निकलने के बाद बाथरूम के नल गुनगुना पानी देते। गुनगुने पानी से नहाने का जो अलग मजा होता है उसे मैंने पहले दिन ही महसूस किाय। पहले दिन कैंटीन का बेस्वाद भोजन करने के बाद मैं पौने दस बजे हेडऑफिस जा पहुंचा। दफ्तर सोया पड़ा था। सात सौ के करीब कर्मचारी और अधिकारियों वाले दफ्तर में पौने दस बजे कोई चहल-पहल नहीं थी। मुख्य द्वार के सामने अवस्थित नीमों का झुंड पार करने के बाद ही मुख्य बिल्डिंग दिखाई देती। सौ से अधिक नीम के पेड़ दूर से आने वाले शिक्षकों और कर्मचारियों को राहत प्रदान करते। जो शिक्षक और कर्मचारी गेस्टहाउस में ठहरना पसंद नहीं करते वे सुबह अंधेरे में हैड ऑफिस पहुंच जाते जो शहर से सिर्फ आठ किलोमीटर दूर था। हेडऑफिस में मुंह अंधेरे पहुंचे हुए व्यक्ति का सामना खूंखार कुत्तों से होता। कुत्तों का मूड होता तो वे आगंतुक को चारदीवारी में घुसने देते अन्यथा उन्हें वापिस बस स्टैण्ड के लिए दौड़ा देते। सुबह की सैर पर निकले लोग उस रोमांचकारी मैराथन दौड़ को देखकर शिक्षा विभाग के हेड ऑफिस और उसके कुत्तों को धन्यवाद दिए बिना नहीं रहते।

नीम के झुरमुट तले अधिकारी झुंड बनाकर खड़े थे, मैं उनके पास जाकर खड़ा हो गया। एक अधिकारी ने जो मुझे गेस्टहाउस में पहली बार मिला था मेरा परिचय दिया। 'ये हैं मिस्टर अम्बुज कुमार शिक्षा विभाग की मासिक शिक्षा पत्रिका के नए संपादक और प्रकाशन अनुभाग के नए सेक्शन आफीसर। सभी अधिकारी मुझे घूरने लगे। उनकी आंखों में मेरे लिए सहानुभूति थी, जो बलि हेतु खरीदकर लाए जाने वाले बकरे के प्रति उत्पन्न होने वाली सहानुभूति जैसी थी।

'आपका कत्ल कैसे हुआ?' मैं इस प्रश्न को सुनकर चौक गया। प्रश्नकर्ता संयुक्त निदेशक स्तर के अधिकारी थे जो अपने पद की गरिमा से खिलवाड़ करते हुए निचले स्तर के अधिकारियों के साथ नीम का शुद्ध वायु का सेवन कर रहे थे। अन्य अधिकारी उनके प्रश्न पर खुलकर हंसे। ऐसी उन्मुक्त हंसी कभी-कभार ही देखने को मिलती है। मुझे ताज्जुब हुआ हेडऑफिस के लोग कितने सुखी हैं।

एक अधिकारी ने कत्ल को परिभाषित किया। उन्होंने कहा संयुक्त निदेशक जी का कत्ल से आशय है आपको किसने फंसा दिया। यहां एक अधिकारी का अस्तित्व मरे हुए के समान है। मैंने सहज होने की कोशिश की मगर नहीं हो सका।

मैंने उन्हें बताया कि 'शिक्षा पत्रिका' के वरिष्ठ संपादक डॉ. प्रदीप मेरे पूर्व परिचित हैं जिनके आग्रह पर हेडऑफिस में आने के लिए मैंने प्रार्थना पत्र दिया और परिणामस्वरूप मैं आपके सामने उपस्थित हूं। अधिकारी सहानुभूति जताने लगे। डॉ. प्रदीप का नया नामकरण हुआ- कसाई।

एक अन्य अधिकारी ने मुझे सावधान किया, 'अम्बुजजी हेडऑफिस में आपका स्वागत है। खूब काम करो और मस्त रहो। यहां रहते हुए आपको सावधान रहना होगा। इस ऑफिस में गिरगिट बहुत हैं और गिरगिट धर्म तो आप समझते ही होंगे।' मैंने अटकते हुए कहा, हां जी. . .जी हां।

अचानक मेरी नजर पास में खड़े एक नीम की ओर चली गई। एक गिरगिट नीम के तने से चिपका हुआ तने के रंग में बदल रहा था।

मुझे असहज होता देख अधिकारियों के वार्तालाप का विषय बदल गया।

दस बज चुके थे। तकरीबन सभी अधिकारी आ चुके थे मगर बाबुओं की आमद बहुत कम थी। एक अधिकारी ने चुटकी लेते हुए उपनिदेशक, प्रशासन से कहा, 'रावत साहब आपके प्रशासन में दस बजे तक निन्यानवे प्रतिशत अधिकारी उपस्थित हो जाते हैं मगर बाबू बमुश्किल एक प्रतिशत ही उपस्थित हो पाते हैं।'

रावत साहब हेडऑफिस में पांच वर्षों से काबिज थे अत: आत्मविश्वास के साथ

बोले 'जी हां तभी मैं कहता हूं, हमारे कार्यालय में दस बजे तक शत-प्रतिशत अधिकारी-कर्मचारी उपस्थित हो जाते हैं। निन्यानवे प्रतिशत अधिकारी और एक प्रतिशत कर्मचारी मिलकर सौ प्रतिशत बनाते हैं।'

अधिकारियों के ठहाके से नीम के पेड़ों की पत्तियां हिल गईं। बातों ही बातों में सवा दस हो गए। एक सफेद एम्बेसडर कार मुख्य द्वार में घुसी। नीम के झुरमुट तले खड़े अधिकारी अपने-अपने अनुभागों की ओर कूच कर गए।

चलते-चलते उपनिदेशक प्रशासन ने मुझे समझाया। 'आप हैड ऑफिस में अभी-अभी आए हैं। याद रखना हेडऑफिस एक समुद्र है यहां बड़ी शार्क मछलियां भी पायी जाती हैं। समुद्र का पानी खारा होता है इसे पीने की कोशिश मत करना। घटना और दुर्घटना पर कभी द्रवित मत होना।'

नीम के पेड़ों के नीचे मैं अकेला खड़ा था। प्रकाशन अनुभाग के गेट पर ताला था। हमारे ग्रुप आफिसर और 'शिक्षा पत्रिका' के वरिष्ठ सम्पादक डॉ. प्रदीप कहीं नजर नहीं आए। फील्ड से आए हुए कुछ अध्यापक बड़े इतमिनान से नीम की दातून कर रहे थे, आज या तो उनके दांत नीम की दातौन के सौजन्य से टूट कर गिर जाने वाले थे या फिर एकदम दूधिया हो जाने वाले थे। ये अध्यापक अपने अपने काम से हेडऑफिस आए हुए थे। काम न हो सकने की स्थिति में ये अध्यापक कम से कम सफेद दांत लेकर अपने घर लौटने की तमन्ना रखते थे। ये अध्यापक जानते थे कि साढ़े ग्यारह से पहले कोई भी बाबू अपनी सीट पर नहीं मिलेगा। समय काटने के लिए दातून करना सर्वश्रेष्ठ उपाय साबित हो रहा है। हेडऑफिस में प्रवेश करने के बाद व्यक्ति उन चीजों की ओर ध्यान देने लगता है जिनकी ओर ध्यान देने का समय उन्हें पहले कभी नहीं मिला। दातून के अलावा नीम के पेड़ पर चढ़े गिरगिट, झुंड बनाकर घूमते कुत्ते हेडऑफिस के परिसर में रहने वाले साठ वर्षीय चौकीदार की चौबीस वर्षीय बीवी ऑफिस के दर्शनीय आइटम माने जाते थे।

अन्य आगंतुकों के साथ मुझे भी नीम के नीचे खड़े रहने के कारण कई तरह की अयाचित जानकारियां मिल गई थीं।

साढ़े ग्यारह बजे मैं प्रकाशन अनुभाग के सामने खड़ा पाया गया। हालांकि मैं वहां ग्यारह बजे से ही खड़ा था। मगर खड़ा पाया जाना तभी संभव होता है। जब दूसरा व्यक्ति आपको देखे। संयोग से ठीक साढ़े ग्यारह बजे प्रकाशन अनुभाग का ऑफिस सुपरिण्टेण्डेण्ट अपनी चौबीस साल पुरानी साइकिल से उसी तरह पहुंचा जैसे कोई पांच घंटे लेट होने वाली रेलगाड़ी किसी दिन सिर्फ तीन घंटे लेट होकर स्टेशन पर पहुंच जाती है।

ऑफिस सुपरिंटेण्डेण्ट जटिया साहब से जब मेरा परिचय हो गया तब उन्होंने मेरा पदस्थापन आदेश मांगा। मैंने उन्हें आदेश थमा दिया। जटिया साहब आदेश देखने लगे।

इस घटना ने मुझे 'शिक्षा पत्रिका' के बारे में नए सिरे से सोचने के लिए विवश कर दिया। जटिया साहब के नेत्रों और मेरे आदेश की प्रति के बीच देखने पर कोई फासला दिखाई नहीं दिया, मगर जब मैंने जटिया साहब के बिल्कुल नजदीक पहुंच कर उनके सिर से अपना सिर सटाया तो आधे सेंटीमीटर का फासला नजर आया। यह फासला इस तथ्य को प्रमाणित कर रहा था कि कागज से मुंह नहीं छुपाया जा रहा है बल्कि कागज को पढ़ा जा रहा है। जटिया साहब ने बताया कि उनके नेत्रों में लैंस प्रत्यारोपण होना है मगर वे जानबूझकर नहीं करवा रहे क्योंकि 'शिक्षा पत्रिका' के काम से तंग आ चुके हैं।

मैं अपने ग्रुप ऑफिसर और 'शिक्षा पत्रिका' के वरिष्ठ संपादक डॉ. प्रदीप की प्रतीक्षा करते हुए हेडऑफिस पर चिंतन करने लगा। किसी भी महकमे का हेडऑफिस किसी सियासीदल के हाईकमान के समान होता है। वह पूरे राज्य में रौब मारता है। हेडऑफिस का चपरासी जब फील्ड में टूर पर जाता है तो वह अपने आपको निदेशक का नुमाइंदा बताता है। फील्ड में बैठा हर छोटा बड़ा अधिकारी अपने आपको हेडऑफिस में पदस्थापित करवाने के लिए प्रयासरत रहता है और पदस्थापित हो जाने के बाद हेडआफिस ही वह लड्डू है जिसे खाने और न खाने वाला दोनों ही पश्चाताप करते हैं।

मेरे साहित्यकार मित्रों की राय थी कि हेडऑफिस में पहुंचकर आपको लेखन कार्य के लिए अतिरिक्त समय मिल जाएगा। मुझे यह दलील सही लगी और मैंने अपना स्थानान्तरण हेडऑफिस में करवा लिया। मेरे एक लेखक मित्र एक यूनिवर्सिटी में बाबू हैं। मित्र प्रातः दस बजे सही समय पर दफ्तर पहुंचते और उपस्थिति पंजिका में हस्ताक्षर करने के बाद लेख लिखने बैठ जाते। कहानी, कविता, व्यंग्य जैसा भी वे अपने लेखन को घोषित करते, उसे लिखने के बाद दफ्तर बंद होने से पहले डाक में डाल देते। कभी साहित्य सृजन के दौरान कोई फाइल आ जाती तो अपनी टिप्पणी लिखकर उसे आगे बढ़ा देते।

मुझे साहित्य सृजन का माहौल आज दस बजे से ही मिलने लगा था। डॉ. प्रदीप गर्मजोशी से मिले, मुझे अपने चैम्बर में आदर सहित ले गए। हम अभी दो मिनट ही बैठे होंगे कि एक चपरासी झाड़ू लेकर डॉ. प्रदीप के चैम्बर को साफ करने की नीयत से उपस्थित हुआ। हम दोनों बरामदे में आ गए। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि ठीक बारह बजे चपरासी वरिष्ठ संपादक के चैम्बर को साफ करने के लिए उपस्थित हो गया है। न एक मिनट इधर न उधर। समय की ऐसी पाबंदी भारतीय दफ्तरों में कम ही देखने को मिलती है। चैम्बर की सफाई के उपरांत भी यत्र-तत्र धूल बिखरी हुई थी मानो वह धूल न होकर भ्रष्टाचार हो।

डॉ. प्रदीप मुझे स्टाफ ऑफिसर के चैम्बर में ले गए और उनसे मेरा परिचय करवाया। स्टाफ ऑफिसर ने मुझे उसी निस्पृह भाव से देखा जिस निस्पृह भाव से कोई बड़ा डॉक्टर गंभीर रोगी को देखता है। उनके चेहरे पर आध्यात्मिक भाव था। डॉ. प्रदीप मुस्करा उठे। चूंकि डॉ. प्रदीप मेरे ग्रुप ऑफिसर थे अतः मुझे भी मुस्कराना पड़ा।

बाद में जब मैंने डॉ. प्रदीप से मुस्कुराने का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि यह हेडऑफिस है, यहां जब सामने वाले को गाली देने की इच्छा होती है तो लोग मुस्करा देते हैं। सामने वाला समझ जाता है कि मुझे गाली दी जा रही है। सामने वाला गंभीर हो जाता है। गाली सुनकर कौन गंभीर नहीं होगा।

मैं डॉक्टर प्रदीप को देखकर मुस्कुराने लगा। वे मेरी समझदारी पर मुस्कराने लगे।

प्रकाशन अनुभाग दो भागों में बटा था। दो सेक्शन ऑफिसर थे एक मैं और दूसरे

दिनेश राय। दिनेश राय बहुत संजीदा व्यक्ति थे। दफ्तर आकर दराज खोलते, दराज में से तौलिया निकालकर अपनी मेज और कुर्सी साफ करते।

मैं दफ्तर का जायजा लेने बाहर आ गया। मैं एक बाबू के नाम अपने मित्र की चिट्ठी लाया था। उस बाबू के सेक्शन में पहुंच गया और बाबू की सीट पर बैठे व्यक्ति से पूछा 'आप ही मिस्टर दीनबंधु हैं।' बाबू ने मुझे ऊपर से नीचे तक देखा फिर बोला, 'जी नहीं, वे तो आज छुट्टी पर हैं।' जवाब के साथ आपने प्रतिप्रश्न किया' क्या आप दीनबंधु को पहचानते हैं?'

मैंने कहा, 'जी नहीं, मैं तो उनके नाम, उनके मित्र की एक चिट्ठी लाया हूं।'

'मुझे दे जाइए' उसने हाथ बढ़ाया।

मैंने कहा 'नहीं मैं नहीं दूंगा। मुझे जल्दी नहीं है मैं कल फिर आऊंगा। मैं प्रकाशन अनुभाग का सैक्शन ऑफिसर हूं। आज ही कार्यभार ग्रहण किया है।'

दीनबंधु की सीट पर बैठा व्यक्ति खड़ा हो गया।

'सॉरी सर! मैं ही दीनबंधु हूं। दरअसल इस दफ्तर में रोज कई लोग किसी न किसी के नाम की सिफारिशी चिट्ठी लाते हैं। हम लोग तंग आ गए हैं इस तरह की चिट्ठियों से। अब आप इस निदेशालय के अधिकारी हो गए हैं तो आपसे क्या छुपाना। आज नहीं तो कल पता लग ही जाएगा। लाइए चिट्ठी मुझे दीजिए।'

मैंने दीनबंधु को गौर से देखा। यह पहला गिरगिट था जो रंग बदल रहा था। पहला गिरगिट मुझे कैंटीन ले गया। चाय पिलाते हुए उसने चिट्ठी पढ़ी। आवास व्यवस्था में सहयोग करने कह हिदायत चिट्ठी में दी गई थी। गिरगिट ने आश्वासन दिया, शीघ्र ही मेरे लिए वह आवास व्यवस्था कर देगा।

लंच के बाद मैं अपने अनुभाग में जा पहुंचा। लंच के बाद अनुभाग में बाबुओं से विधिवत परिचय हुआ। लंच के बाद अधिकांश बाबू दफ्तर में उपस्थित हो गए थे।

एक बाबू ने पूछा, 'सर! आपको कौन सी बीमारी है।'

मैंने झूठ बोला, 'मुझे कोई बीमारी नहीं है।' बाबू निराश हो गया। मुझे हाई ब्लडप्रेशर की बीमारी थी मगर मैं छुपा गया।

'सर आपसे पहले जो अधिकारी थे वे कैंसर के मरीज थे।'

'होंगे।' मैंने बेरुखी से उत्तर दिया।

'सर! वे सुहागिन स्त्री की तरह आप वाली सीट पर काबिज रहते हुए मरे। उनके बेटे को नौकरी मिल गई है।'

मुझे गुस्सा आ गया। मैंने उस बाबू से पूछा 'आखिर तुम्हारा क्या है।' वह बोला 'सर बुरा मत मानना। इस कुर्सी को श्राप लगा है। इस कुर्सी पर बैठने वाला मृत्यु को प्राप्त होता है। आप अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखिएगा। वैसे मेरा सुझाव है आप इसी दफ्तर में दूसरे अनुभाग में तबादला करवा लें।'

मैंने कहा, 'जो होगा वह हर जगह होगा। मुझे हाई ब्लड प्रेशर है। दांतों में पायरिया है। ये बीमारियां अन्यत्र भी परेशान करेंगी।'

बाबू खुश हो गया। उसने अनुभाग में कार्यरत सभी व्यक्तियों को तत्काल सूचित किया कि नए बॉस को हाईब्लड प्रेशर और पायरिया है। यह भी सीट पर ही सुहागिन स्त्री की तरह मरेंगे।'

(लेखक के शीघ्र प्रकाश्य व्यंग्य उपन्यास 'हैड उपन्यास के गिरगिट' का एक अंश)

उपप्रधानाचार्य, डाइट, धौ

. . . पृष्ठ 69 का शेष

उपधाराओं का विवेचन मैं बाद में करूंगा। महत्वपूर्ण बात यह थी कि मैं माननीय श्वसुर जी को मुफ्त में प्राप्त दामाद था। रेकी चिकित्सा पद्धति के नियमों में एक नियम यह भी है कि व्यक्ति चाहे कितना ही आत्मीय हो, उसे मुफ्त में रेकी नहीं दी जानी चाहिये। क्योंकि फोकट में मिली चीजों को व्यक्ति फालतू समझता है और उनकी कद्र नहीं करता है। स्वाभाविक है कि मेरे श्वसुर साहब भी मुझ जैसे फोकटिये दामाद की इज्जत नहीं कर सके।

जब मुझे पहली बार 'दो कौड़ी का आदमी' बताया गया तो मुझे गुस्सा आया। उस समय तक वो फिल्म नहीं बनी थी जो जीवन की हर समस्या को 'गांधीगिरी' के माध्यम से सुलझाने की राह दिखाए। इसलिए मैं उद्वेलित हो गया और मैंने कह दिया कि आदमी तो मैं लाखों का था लेकिन आपसे रिश्ता जुड़ने के बाद दो कौड़ी का हो गया हूं। इस कथन में आंशिक सच्चाई इसलिए थी कि मेरी शादी से पहले मेरे पास जिन माता-पिताओं ने अपनी लाड़ली का हाथ थामने का प्रस्ताव भेजा था, उन्होंने यह भी बताया था कि वो दहेज में कितने लाख रुपए देंगे। इस तरह साबित हुआ कि मैं कुंवारा रहने तक लाखों रुपए का आदमी था।

अपने इस निर्णय पर मुझे कोई पछतावा नहीं है कि मैंने बिना दहेज के विवाह किया लेकिन इस बात पर अवश्य पछतावा है कि ससुर जी द्वारा मुझे दो कौड़ी का आदमी कहे जाने पर मैंने गुस्सा किया। दरअसल, इस देश में हिंदी के आम लेखक को फूटी कौड़ी की इज्जत दी जाती है। ससुर जी ने तो मुझे 'दो कौड़ी का' कहा था। इस तरह उन्होंने मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। आज मैं उनका आभारी हूं। रवीन्द्रनाथ त्यागी के अनुसार- यह दौर आभार प्रदर्शन का नहीं, उभार प्रदर्शन का है। मगर मैं उन लोगों में नहीं हूं जो झूठी शान दिखाने के चक्कर में फाइनेंस से कार खरीद लेते हैं और फिर किश्तें चुकाने के लिए मित्रों से उधार लेकर उनसे संबंध तोड़ लेते हैं ताकि उधार की रकम चुकाने से कुछ दिन बचा जा सके। त्यागी जी की तमाम नसीहतों के बावजूद, मैं वही प्रदर्शित कर सकता हूं, जो मेरे पास है और इस अवसर का उपयोग मैं ससुर जी के प्रति आभार प्रदर्शित करने के लिए करना चाहता हूं।

बहरहाल, दो कौड़ी वाले एपीसोड के बाद ससुर जी पर करुणाभाव हावी हुआ या मेरा 'स्टेटस' बढ़ाने का जुनून, उन्होंने पिछले कुछ सालों में विभिन्न अवसरों पर टेपरिकॉर्डर, बड़ा रंगीन टीवी, डबल बेड, ड्रेसिंग टेबल, अलमारी सहित लगभग वह सभी सामान भेंट में दे दिया है, जो एक पिता अपनी बेटी की शादी के अवसर पर देता है। इस तरह उनकी करूणा भी द्रवित रूप में बाजार के माध्यम से मेरे घर तक पहुंच रही है और मैं भी इस ठसक को पूरे पाखण्ड के साथ जी रहा हूं कि मैंने बिना दहेज लिए शादी की है।

3ए30, महावीर नगर विस्तार
कोटा-324009 (राजस्थान)

आशीष सिसोदिया

एक साहित्यकार का शिष्य को पत्र

प्रिय ठाले राम,
सुभाशीष,

बहुत दिनों से तुम्हारा पत्र प्राप्त नहीं हुआ। मुझे चिंता होने लगी कि कहीं तुमने अपनी निष्ठाएं तो नहीं बदल लीं। मुझे मालूम हुआ कि तुमने पिछले सप्ताह ही अंधकार प्रकाशजी का सम्मान समारोह मनाया था। प्रिय ठाले, तुमने यह बहुत अच्छी परम्परा का शुभारंभ किया है। हमारी भारतीय सभ्यता भी तो विद्वानों, साहित्यकारों का सदा सम्मान करती आई है। प्रिय ठाले, साहित्यकार की सबसे बड़ी पूंजी तो उसका सम्मान ही होती है। अभी पिछले दिनों तुमने पढ़ा ही होगा कि 93 वर्षीय श्याम बाबू को जब 5वां अटेक आया और वे आई.सी.यू. में अपनी अंतिम घड़ियां गिन रहे थे, परिवार वाले भी सारी तैयारियां कर चुके थे कि अचानक विघ्न पड़ गया। चतुरबाबू ने उनके कान में फुसफुसाया कि अंतिम संस्कार समिति आपका सम्मान करना चाहती है। बस फिर क्या था, श्याम बाबू का हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा, पीले चेहरे पर गुलाबी रंग छा गया, होंट फड़फड़ाने लगे और वे तुरंत ही उठ बैठे। उन्होंने तुरंत चतुरबाबू की तरफ देखा और बोले, 'कब चलना है।' उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, 'आज शाम चार बजे।' 'चलो ठीक है मैं समय पर पहुंच जाऊंगा।' चतुरबाबू जी अपना धन्यभाग मनाते हुए प्रस्थान कर गए। अब उनके बेटों के मुख पीले पड़ चुके थे तथा बहुएं भी पैर पटकती हुई हॉस्पीटल से चली गईं। बिचारे परिवार वालों की सारी तैयारियां धरी की धरी रह गईं। घर में रोना-धोना शुरू हो गया। सब मिलकर चतुरबाबू को कोसने लगे।

हे प्रिय ठालेराम, तो मेरा आशय यह है कि एक सच्चे साहित्यकार की जीवन-मृत्यु उसके सम्मान पर टिकी होती है। जो साहित्यकार जितना सम्मान पाता है या अपने भक्तों से अपना सम्मान करवाता है वही जीवित रहता है या कहें कि सम्मान वह तोता है जिसमें किसी भी साहित्यकार की जान बसती है। यहां मुझे डार्विन का यह सिद्धांत 'सर्वाइवल ऑफ दी फिटेस्ट' याद आता है। इस युग में भी जो साहित्यकार ताकतवर है, सक्षम है, सम्मानों की होड़ में है, वही जीवित है अन्यथा वह जीवित होते हुए भी शव तुल्य है। प्रिय ठाले, यह जो सम्मान है वह भी किसी साहित्यकार को आसानी से नहीं मिल जाता। इसके लिए एक साहित्यकार को कितने जतन करने पड़ते हैं यह एक सच्चा साहित्यकार ही जान सकता है। अब देखो न हमारे मथुरा लाल जी ने क्या नहीं किया? वैसे तो वे थोड़ा बहुत लिख लेते हैं, किंतु उनका लिखा वे खुद भी समझ नहीं पाते हैं। फिर भी उन्होंने अपने प्रिय शिष्य से अपने गुरुत्व को भार डालकर अपने नाम से एक आलोचना की पुस्तक लिखवा कर छपवा ही दी। पर प्रिय ठाले सिर्फ पुस्तक छपवाने से ही तो कोई साहित्यकार सम्मान का भागीदार नहीं बन जाता। उसके लिए आवश्यकता होती है एक ऐसे आज्ञाकारी शिष्य की जो अपने गुरू के प्रकाशनों की भरपूर प्रशंसा करे और गुरु की रचनाओं पर आलोचनात्मक लेख लिखकर छपवा सके। उनके एक प्रिय शिष्य थे मिट्ठालाल। वे सरकार में अफसर थे और किसी साहित्यिक संस्था के मानद सदस्य भी थे। बस फिर क्या था। वे सीधे उसके कार्यालय पहुंचे। पहले तो शिष्य ने पहचाना ही नहीं। फिर जैसे-तैसे गुरुजी ने अपनी पहचान बताई कि 'हे मिट्ठा! तू ही तो मेरे लिए छाछ, सब्जी, घी आदि लाता था। तेरे बाऊजी से मैंने पांच सौ रुपए लिए थे जो आज तक मैंने नहीं लौटाए।' उन्होंने आगे कहा, 'याद है मिट्ठा, एक दिन परीक्षा में तू नकल कर रहा था, किंतु मुझे मालूम होते हुए भी मैंने तुम्हें छुआ तक नहीं और मिट्ठा तू वह बात भी नहीं भूला होगा कि एक दिन तूने प्यार से मेरे मुंह पर गोबर मल दिया था।' खैर! मीट्ठा को धीरे-धीरे सब याद आ गया। वह बोला, 'पधारिए गुरुजी, यहां कैसे आना हुआ?' मथुरा लाल अब अपने शिष्य को गुरु-शिष्य परंपरा समझाने लगे। फिर उन्होंने अपने शिष्य को गुरु दक्षिणा की याद दिलाई। मिट्ठा लाल ने कहा, 'गुरुजी मैं आपके लिए क्या कर सकता हूं?' गुरुजी ने बड़ी तत्परता से कहा, 'अभी हाल ही में मेरी एक आलोचना की पुस्तक प्रकाशित हुई है, उस पर तुम एक सेमिनार करवाओ तथा मेरा सम्मान कर तुम गुरु ऋण से उऋण होवो।' फिर क्या था, गुरुभक्त मिट्ठालाल का शिष्यत्व जाग गया। उसने एक सम्मान समारोह का आयोजन करवा डाला। सारा खर्चा शिष्य ने ही उठाया और रातों-रात मथुरा लाल साहित्यकारों की पंगत में जा बैठे।

प्रिय ठालेराम, आज कल ऐसे शिष्य मिलते ही कहां हैं, जो अपने गुरु की वेदना को समझे। तुम समझ रहे हो न मेरी वेदना! मेरा विश्वास आज भी तुम पर दृढ़ है। अब तो तुम जैसे शिष्यों पर ही हम जैसे साहित्यकारों का भविष्य निर्भर है। प्रिय ठाले, मेरी एक कविता की पुस्तक हाल ही में प्रकाशित हुई है, नाम है 'तुम मर क्यों नहीं जाते।' वैसे तो इस पुस्तक के बारे में कोई नहीं जानता पर मेरा विश्वास है कि तुम इस पुस्तक पर एक सेमिनार अवश्य करवाओगे। दैनिक समाचार पत्रों में उस सेमिनार की खबर देना मत भूलना। इस गोष्ठी की एक रिपोर्ट मुझे शीघ्र भेजना। मैं यहां के कुछ सम्पादकों को जानता हूं। वे मेरा कहा टालेंगे नहीं। बड़ी खबर बना कर वे छाप देंगे। प्रिय झले, यदि तुम मेरा सम्मान भी करना चाहते हो तो मुझे लिखना या फोन कर देना। मैं शीघ्र चला आऊंगा। मैं जानता हूं कि तुम्हारे पास अर्थ की कमी है, किंतु कोई बात नहीं।

तरसेम गुजराल

सद्‌भावना

अशक्त और बीमार बिल्ली ने चूहे से कहा, 'तुम्हें अब मुझसे डरने की कोई जरूरत नहीं है। आखिर तुम्हें भी इस घर में रहना है और मुझे भी। मेरा क्या है, मैं तो दूध और दही से भी काम चला लूंगी। तुम्हें आज से आजाद करती हूं। तुम्हें यकीन न हो तो लिखवाकर ले जाओ। मैं इस नीली स्याही की बोतल को गिराकर पंजा लगा दूंगी। आज से मेरे-तुम्हारे समता संबंध होंगे।

चूहा सौ मीटर की रफ्तार से भागा। फूली सांस के साथ सारा किस्सा मित्रों को सुनाया ओर मूंछों पर ताव दिया। चूहे ने मित्रों के साथ मिलकर चूहा-बिल्ली समझौता-पत्र तैयार किया।

समझौता-पत्र दिखाने वह बिल्ली के पास गया तो बिल्ली उसे खा गई। बहुत देर तक वापस न लौटत देख एक ओर चूहा उसकी तलाश में निकला।

बिल्ली ने स्वादिष्ट भोजन के बाद डकार ही ली थी कि नए चूहे को देखकर बोली, 'मैं गोरी हूं, तूं काला, लेकिन इससे क्या, हमारे सांस्कृतिक और व्यापारिक संबंध तो बने ही रह सकते हैं।'

चद्दर (शॉल), माला, स्मृति चिन्ह ये सब मैं लेता आऊंगा। बस तुम मुझे किसी विद्वान से शॉल उढ़वा देना, स्मृति चिन्ह तुम भेंट कर देना और माला किसी भी वरिष्ठ व्यक्ति से पहनवा देना। शीघ्र पत्र भेजना। तुम्हारे इस कृत्य से गुरु शिष्य परंपरा को एक नई दिशा मिलेगी और आने वाले साहित्यकारों के सम्मुख एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत होगा। इसी आशा और विश्वास के साथ।

तुम्हारा शुभचिंतक,
रामभरोसे
वरिष्ठ साहित्यकार, भारत राष्ट्र

'शिवम्', 114, गणेश नगर, पहाड़ा
विश्वविद्यालय मार्ग, उदयपुर (राजस्थान)

विशिष्टि पत्रिकाओं के विशिष्ट अंक

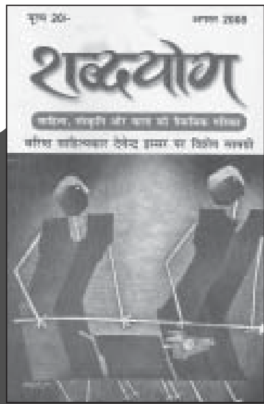

शब्दयोग

देवेंद्र इस्सर पर केंद्रित

कृष्णा सोबती, नंद किशोर विक्रम, साजिदा जैदी, राजी सेठ, पवन माथंर, शमीम हंफी, आर.के. पालीवाल।

संपादक
सुभाष पंत

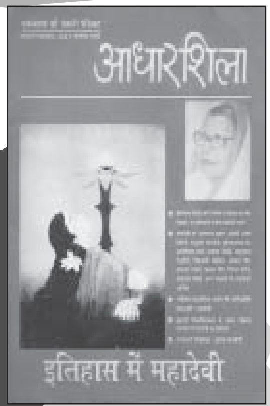

आधारशिला

इतिहास में महादेवी

रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी, सुमित्रानंदन पंत, रामविलास शर्मा, इलाचंद्र जोशी, नामवर सिंह, मैनेजर पांडेय, शंभुनाथ, अशोक वाजपेयी।

संपादक : दिवाकर भट्ट
अतिथि संपादक : बटरोही

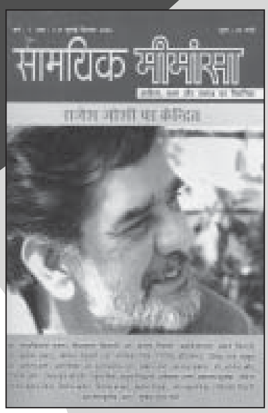

सामयिक मीमांसा

राजेश जोशी पर केंद्रित

नंदकिशोर नवल, विश्वनाथ त्रिपाठी, अजय तिवारी, अरविंदाक्षन, बसंत त्रिपाठी, कमला प्रसाद, नीलेश रघुवंशी, अर्चना वर्मा, अनामिका, राहुल सिंह, शशिप्रभा तिवारी, आनंद प्रकाश, उमाशंकर मिश्र आदि।

संपादक
विजय कुमार मिश्र

अतिथि संपादक
नीरज

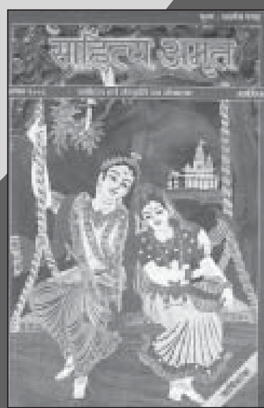

साहित्य अमृत

वार्षिकांक

रामधारी सिंह दिनकर, विष्णु प्रभाकर, गोविंद मिश्र, चंद्रकांता, विजयदान देथा, ममता कालिया, मृदुला सिन्हा, नरेंद्र कोहली, सीतेश आलोक, रामदेव शुक्ल, सूर्यबाला, प्रेम जनमेजय, महीप सिंह, मनु शर्मा, गोपाल चतुर्वेदी, अजित कुमार, श्रीकांत जोशी, कैलाश वाजपेयी, पुष्पा भारती, पद्मा सचदेव, विजय बहादुर सिंह, बलदेव वंशी, नरेंद्र मोहन, प्रकाश मनु।

संपादक : त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी
संयुक्त संपादक : ब्रजेंद्र त्रिपाठी

सुरेश वाहने

लघु व्यंग्य

कुत्ते का गर्व

पंडित शिवशंकर मिश्रा ने पंडितानी को पांच हजार रुपए की गड्डी देते हुए कहा, 'तीरथ साहू चुनाव लड़ रहा है। उसके लिए यज्ञ करना है। यह रुपया वह एडवांस के रूप में छोड़कर गया है।'

पंडितानी बोली, 'अच्छा, अब तेली-तमोरी भी चुनाव लड़ने लगे। ऐसे में हमारे ब्राह्मण समाज वालों का काम क्या पंडिताई ही रह जाएगा? मैं तो कहती हूं कि किसी तरह संविधान बदलकर नेता बनने का अधिकार केवल ब्राह्मणों के लिए आरक्षित कर देना चाहिए। लेकिन क्या करें, हमारी जनसंख्या ही दो प्रतिशत से अधिक नहीं है। एक जमाना था, जब हर चुनाव में हमारे लोग ही खड़े होते थे। पं. नेहरू के कार्यकाल में ५६ प्रतिशत मंत्री ब्राह्मण थे। कहीं आरक्षण था तो हमारे हां में हां मिलाने वाले आज्ञाकारी लोग होते थे। हमारे कहे बिना पत्ता भी नहीं डोलता था। खैर चलो चुनाव के बहाने हमारी कुछ तो कमाई होगी।'

पंडित फिर कहने लगे, 'क्या करें, कलयुग में शुद्र ही राज करेंगे। यह सब देखकर तुलसीदास की आत्मा रो रही होगी। उसने रामचरित मानस में ठीक ही लिखा था–

ढोल, गंवार, शुद्र, पशु, नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी।

पंडितानी इस चौपाई में नारी के उल्लेख को अपने लिए नहीं मानती थी। वह सोचती तुलसीदास ने शूद्र नारियों के लिए ही इसका प्रयोग किया होगा। अपने समाज का आदमी अपने नारियों के लिए ऐसी बात कैसे लिख सकता है, फिर तुलसीदास तो महान पंडित थे।

वहीं पर पंडित का पालतू कुत्ता यह सब सुन रहा था। चौपाई में पशु नाम सुनकर उसे आश्चर्य हुआ। पंडित के प्रति उसका श्रद्धाभाव जाता रहा। उसने पंडित को अपनी भाषा में एक भद्दी सी गाली दी। वह सोच रहा था कि कम से कम हम कुत्तों में ऐसे ऊंच-नीच का भेद तो नहीं है। वह अपने भाग्य को सराह रहा था कि इस जनम में वह कुत्ता बना, आदमी नहीं। आज उसे कुत्ता होने में गर्व महसूस हो रहा था।

भीखू का चन्द्र अभियान

धुआं उड़ाता चन्द्रयान देखते ही देखते अंतरिक्ष पहुंच गया। यान पर सवार दुबला-पतला भीखू अब देश के प्रधानमंत्री से बातें कर रहा था। प्रधानमंत्री ने उसे बधाई देते हुए पूछा– 'ऊपर से पृथ्वी कैसी दिख रही है।'

भीखू की आंखें छलछला गईं। उसने कहा– 'सर, मुझे पृथ्वी अधजली रोटी की तरह गोल और धब्बेदार दिखायी दे रही है।'

भीखू ने उत्तर दिया– 'सर, यहां सब कुछ अपने गांव-सा ही लग रहा है, गांव की तरह यहां भी पर्वतीय प्रदेश है, जहां सड़क नाम की कोई चीज नहीं है। रात में आसमान के तारों के सिवाय यहां रोशन करने वाली कोई व्यवस्था नहीं है। गांव के बंजर हो चुके खेत की तरह यहां की धरातल सूखी और ऊबड़-खाबड़ है। यहां सूखी घाटियां हैं, जो मुझे पृथ्वी की सूखी नदियों की याद दिला रही हैं।'

जिज्ञासु प्रधानमंत्री ने फिर पूछा– 'वहां तुम्हें कैसा महसूस हो रहा है?'

इस प्रश्न से वह उद्वेलित हो उठा, लेकिन संयत स्वर में उसने कहना शुरू किया– 'सर, यहां मैं अपने अभियान में जी-जान से जुटा हूं लेकिन मैं भूख से जूझ रहा हूं; क्योंकि अधिकारी मेरा टिफिन बॉक्स यान पर रखना भूल गए हैं। मैं जानता हूं, मेरा धरती पर जीवित लौट पाना संभव नहीं, लेकिन प्लीज सर, नियमानुसार यान में मेरे मरने के बाद बीमा कंपनी से प्राप्त रकम मेरे परिवार तक जरूर पहुंचवा दीजिएगा। घर पर पत्नी के अलावा दो छोटे-छोटे बच्चे हैं, जिनका मैं एकमात्र सहारा हूं जी।'

प्रधानमंत्री ने ढाढंस बंधाते हुए कहा, 'हां, मुझे खेद है कि अधिकारियों की लापरवाही से तुम्हें शहीद होना पड़ेगा। मैंने इस अभियान का नाम तुम्हारी स्मृति में तुम्हारे नाम पर रखने की घोषणा कर दी है। अब तुम और तुम्हारा गांव इतिहास में अमर हो जाएगा। तुम चिंता मत करो। मरणोपरांत बीमा की रकम तो मिलेगी ही, तुम्हारी पत्नी को दफ्तर में चपरासी की नौकरी भी दे दी जाएगी। वैसे इस लापरवाही की जांच के लिए मैंने एक उच्च स्तरीय समिति गठित करने का फैसला किया है।'

भीखू को चन्द्र अभियान पर जाने का

कोई शौक नहीं था। वह इसलिए चला गया था कि लौटने पर शायद कहीं अच्छी नौकरी मिल जाएगी। यदि कोलम्बिया शटल यान की तरह कोई दुर्घटना होती भी है, तो परिवार के लिए बीमा कंपनी से इतनी रकम मिलेगी; जितनी जिंदगी भर कमाकर भी जुटा नहीं सकता। उसे मरने का दुख नहीं था। उसे सुकून था कि अब उसका परिवार पैसे का मोहताज नहीं रहेगा।

चन्द्रयान धरती पर वापिस लौटा। भीखू के प्राण पखेरू उड़ चुके थे।

आज पांच साल हो गए। भीखू की विधवा भीख मांगकर गुजारा कर रही है। उसे बीमा कंपनी से कोई मुआवजा नहीं मिला। कंपनी का मानना था कि उसके पति भीखू की मौत भूख से हुई है, इसलिए यह आत्महत्या है, न कि दुर्घटना। इतने बड़े अरबों रुपयों के अभियान पर भोजन नहीं ले जाने के लिए उसके पति को ही कंपनी ने जिम्मेदार माना। उसे नौकरी भी नहीं मिली, क्योंकि उसके पास भीखू की पत्नी होने का सरकारी सर्टिफिकेट नहीं था।

भीखू की पत्नी अक्सर रो उठती– 'आखिर तुम चन्द्र अभियान पर गए क्यों?'

कोषाध्यक्ष, जनसंस्कृति मंच,
भिलाई-कुम्हारी इकाई
शिवनगर, मु.व पो.-कुम्हारी
जिला-दुर्ग (छत्तीसगढ़) पिन-490042

कानून व्यवस्था पर निबंध

यश गोयल

टीचर जी ने जब पुराने निबंध लिखने के लिए विषय सुझाए तो छात्राओं ने नाक-भौंह सिकोड़ी यह कहकर कि गाय-भैंस-शेर-बाघ, आर्थिक स्थिति मल्टीनेशनल्स पर निबंध लिखने से क्या लाभ होगा। समय बदल रहा है तेजी से। राजस्थान बीमारू श्रेणी से निकलकर विकसित / विकासशील राज्यों की श्रेणी में आ गया है। राज्य उदीयमान है। इन्वेस्टमेंट (पूंजी निवेश) बहुतायत से दहलीज पर खड़ा है।

टीचरजी ने छात्राओं से कहा कि वे अपनी मर्जी से किसी भी ताजा विषय पर लेख लिखें। उसे वे पुरस्कृत भी करेंगी। पुरस्कार में एक पेंसिल / चॉक भी मिल सकता है। सभी प्रसन्न कि उन्हें आजादी मिली जो शायद पिछले ६१ वर्षों में नहीं मिली थी। दस-पंद्रह मिनट का समय दिया गया।

एक छात्रा ने अपने संक्षिप्त निबंध में कुछ इस तरह लिखाः आरक्षण, गोलीकांड, डकैती, ब्लास्ट और राज्य में कानून व्यवस्था।

आरक्षण पर एक जाति वर्ग पिछले दो साल से आंदोलनरत। गोलीकांड ने लील ली ६० से अधिक जानें। श्रीगंगानगर के रावला में किसान पानी मांग रहे थे पुलिस ने गोली चलाई ६ लोग मरे। सोहेला में पानी मांग रहे किसानों पर गोली चली ५ मरे। घड़साना में चंदू राम भी पुलिस गोली का शिकार हुआ। ऋषभदेव मंदिर में एक आदिवासी की पुलिस की बंदूक से मौत। कोटड़ा में एक व्यक्ति पुलिस गोली का शिकार।

इसके अलावा गोलीकांड कई और भी हुए उनमें सैंकड़ों इंसान घायल होकर पहुंचे। उनमें प्रमुख हैं- मंड़ावा (झुंझुनूं) तबादले के विरोध में ग्रामीणों पर गोली चली। थाने के बाहर डग (झालावाड़) में गोली चली थी।

अश्रु गैस और रबड़ बुलैट का इस्तेमाल उतना ही हुआ जितनी बार आंदोलनकारियों पर लाठीचार्ज किया गया।

राज्य की राजधानी में ही नहीं कई जगह बैंक लुट गए। अजमेर की दरगाह और जयपुर सीरियल बम्ब ब्लास्ट में मरने वालों और घायलों की संख्या असीमित है। ६६ तो जयपुर में सरकारी तौर पर बम्ब धमाकों में शहीद हुए। सैंकड़ों अस्पताल में अभी भी इलाजरत हैं। अजमेर में सिर्फ तीन मरे थे। कोई अपराधी पकड़ में नहीं आया। क्योंकि जांच चल रही है।

जहरीली शराब पीकर दर्जनों लोग मर गए। यह सिलसिला इसलिए रुका कि गली-गली में दारू की दुकानें खुली थीं। शराब पीकर कइयों की

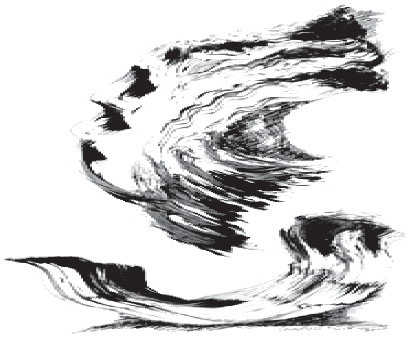

जीवन लीला अस्पताल में कई लीवर के कई रोगों से हुई।

सड़कों पर हो रही दुर्घटनाओं का जिक्र करते हुए छात्रा के आंसू निकल आए। आए दिन दसियों लोग सड़क हादसे में मर रहे हैं। बावजूद इसके कि सरकार राहत पैकेज घोषणाएं किए जा रही हैं। मरने वालों का नकद मुआवजा बढ़ा रही है। मृतकों के आश्रित को नौकरी दे रही है। अपराधियों के मुकदमे वापिस ले रही है। राजकाज तब भी मुस्करा रही है उन चीयस गर्ल्स की तरह जो क्रिकेट के मैदान में अंगप्रदर्शन से दर्शकों का मनोरंजन कर रही हैं।

जैसे ही टीचरजी ने निबंध पढ़ा उसके रौंगटे खड़े हो गए। छात्रा को डांटते हुए टीचरजी बोली, 'तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई यह लिखने की। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि राज्य में अपराध दर कम हो रही है। यह तथ्य गृहमंत्री कई बार विधानसभा में प्रस्तुत कर चुके हैं। गोली चलाना सरकार की मजबूरी होती है। आत्मरक्षा और जनता की सुरक्षा के लिए गोली चलानी पड़ती है। देखती नहीं पूरा राज्य किलेनुमा सुरक्षा में महफ़ूज़ है। चंद लोग हैं जो राजशाही से तंग आकर विद्रोह करते हैं। आम नागरिक कितना प्रसन्न है। चुनाव की प्रतीक्षा कर रहा है। तुमने ऐसा निबंध लिखकर राज्य सरकार की नाक कटवाने की सोच का परिचय दिया है। तुम खड़ी हो जाओ। दोनों हाथ आगे करो।'

छात्रा हिम्मत से खड़ी हुई। दोनों हथेलियां टीचरजी के आगे कर दी। तड़ाक-तड़ाक बेंत के निशान गोरे-मासूम हाथों की हथलियों पर छप गए। छात्रा के एक आंसू नहीं आया। क्योंकि मनुष्य की मौतों का जिक्र करते हुए वह पहले ही अंदर तक रो चुकी थी।

486, जादोन नगर, दुर्गापुरा, जयपुर-302018

जितेन्द्र जौहर

आत्मा की शांति

सड़क पर काफी भीड़ लगी थी। लोग एक-दूसरे पर झुके जा रहे थे। ऐसे में मेरी सहज जिज्ञासा मुझे उस भीड़ के नजदीक खींच ले गयी। भीड़ की परिधि के अंदर का दृश्य अत्यंत हृदय विदारक था। एक युवती का शव लहूलुहान अवस्था में पड़ा देखकर मेरा मन करुणा से भर उठा।

पास में खड़े कुछ लोग नगर के ऑटो-रिक्शा चालकों की अंधाधुंध ड्राइविंग पर अपना शब्दिक क्रोध प्रकट कर रहे थे, तो वहीं कुछ लोग शव की शिनाख्त के संदर्भ में तरह-तरह के कयास लगाने में मशगूल थे।

तभी सहसा दो सिपाही दुर्घटना-स्थल पर आ पहुंचे। पलक झपकते ही भीड़ का वृत्त विस्तीर्ण हो गया। सिपाहियों ने युवती के पास जाकर स्थिति का जायजा लिया। इसी दौरान उनकी 'काग दृष्टि' मृतका के कीमती वाहनों पर जाकर ठहर गयी। अब वहां एक और लालच-जनित भूख थी, तो दूसरी ओर तृप्ति-स्रोत बनने की प्रतिकारहीन लाचारगी और वहीं इर्द-गिर्द थीं– 'भूख' को उस 'स्रोत' तक पहुंचने से रोकती हुई शताधिक अवरोधक आंखें। ऐसे में, दोनों सिपाहियों की शातिर निगाहें परस्पर टकराईं। आपस में एक मौन संवाद स्थापित हो गया। बस, तब क्या था– एक सिपाही ने भीड़ की ओर लपकते हुए अपनी लाठी सड़क के चारों ओर पटकना शुरू कर दिया– 'चलिए . . .हटिए. . .भागिए यहां से!'

इतने में ही भीड़ का ध्यान युवती के शव से हटकर लाठी पटकते हुए सिपाही पर जाकर केन्द्रित हो गया। लोग तेजी से तितर-बितर होने लगे। इसी बीच, उधर 'वकोध्यानम्' की मुद्रा में तत्पर खड़े दूसरे सिपाही ने अपनी कारयित्री प्रतिभा का प्रमाण प्रस्तुत कर दिया; मंगलसूत्र सहित मृतका के सारे गहने उसकी क्षुधातुर जेब का ग्रास बन गये थे।

अब मेरी आंखों में उस सड़क पर एक के बजाय तीन लाशें दिखायी पड़ने लगीं। एक लाश तो शून्य में अपलक निहारती हई सी पूर्णतः निश्चेष्ट पड़ी थी, जबकि दो लाशें उस एक लाश के इर्द-गिर्द चलायमान थीं। एक लाश तो सड़क दुर्घटना का 'अनचाहा' परिणाम थी, जबकि दो लाशों का ज़मीर लालच के भारी वाहन के नीचे 'स्वेच्छा' के कुचलकर मर गया था। एक लाश की 'आत्मा की शांति' का मामला तो प्रभु की कृपा पर निर्भर था, जबकि दो लाशों ने अपनी आत्मिक शांति का 'अस्थाई मार्ग' निजी स्तर पर तलाश कर लिया था।

आई-आर-13, रेणुसागर, सोनभद्र-231218

राधेश्याम तिवारी

कविताएं

कुत्ते का बच्चा

आप इसे गाली न समझें
यह सचमुच कुत्ते का बच्चा है
साहब का लाड़ला, झक-झक उजला
बिलकुल मंत्री जी के कुर्ते जैसा
जब दो महीने का था
साहब ने तभी इसे खरीदा था
अपने 'पेरेन्ट्स' से दूर होकर भी
कभी अखरा नहीं था इसे
साहब ने अपने बच्चे की तरह इसे पाला
शुरू-शुरू में तो इसने कई-कई बार
साहब के बिस्तर तक गीले कर दिए
फिर भी साहब कभी नाराज नहीं हुआ
आखिर वह भी तो कभी
इसी की तरह बच्चा था
साहब ने इसके लिए कई नौकर रख दिए
इस बेरोजगारी के जमाने में
कुत्ते के बच्चे ने
कई नौकरों को रोजगार दे दिया
और उनका मालिक हो गया
साहब ने बड़े प्यार से
इसका नाम रखा 'डौली'
साहब जब भी कहीं जाता
डौली को कार में अपने साथ ले जाता
लाल बत्ती पर जब कोई बच्चा
कपड़े से कार के शीशे
साफ करता साहब उस वक्त भी
अपने डौली में मशगूल रहता
हरी बत्ती होते ही
हाथ फैलाये वह बच्चा
हांफते हुए कार के पीछे दौड़ता
साफ शीशे से साहब का मलिन मन
साफ-साफ दिखाई देता
अपने समाज से कटकर
साहब के साथ रहकर
कुत्ते का बच्चा भी साहब हो गया है
और साहब अपने डौली जैसा।

शहरोज भाई

आंखें गड़ाकर
क्या देख रहे हो
शहरोज भाई
जब आंखों की
सारी रोशनी
प्रूफ देखने में ही
खर्च कर दोगे
तब उन गलतियों को
कैसे ढूंढ पाओगे
जो मूल कॉपी में ही
रह गई है
जिसमें 'जेबकतरे' की जगह
'ईमानदार'
'हत्यारे' की जगह
'दयालु'
और 'उल्लू के पट्ठे' की जगह
'मालिक' लिखा है
तुम्हें अभी
यह भी देखना है
शहरोज भाई
कि कैसे
इस पांडुलिपि से है
करोड़ों की कमाई
जबकि तुम्हारे पास
न बच्चों की
फीस का पैसा है
न मकान का किराया है
न बीमार अब्बू के लिए है
दवाई
रोशनी नियामत है
शहरोज भाई
इसे सम्हाल कर खर्च करो
नहीं तो चश्मे का पावर
तुम्हारी उम्र की तरह ही
बढ़ता चला जाएगा।
बहुत झुक लिए मेज़ों पर
अब रीढ़ सीधी कर लो
और जाओ,
पहले इतमिनान से
ईफनि मियां की दुकान से
एक कप
कड़क चाय
पीकर आओ,
और हां,
हो सके तो
चेतन को भी
अपने साथ ले लेना
वे लौट ही आए होंगे
सीलमपुर से
और आंखें बचाकर
कहीं कोने में
सूट रहे होंगे बीड़ी
चेतन के साथ
चाय पीते हुए
यह जरूर सोचना
कि अब सोचने के लिए
तुम्हारे पास
कितना समय बचा है
आखिर कब तक तुम
दूसरों की गलतियां
ठीक करते रहोगे
थोड़ा हिम्मत जुटाकर जाओ
और कड़क आवाज में बोलो—
'कि बहुत हो गया
अब किवाड़ खोलो
क्योंकि हमें प्रूफ
ठीक करने से पहले
अभी बहुत कुछ
ठीक करना है'
तुम अकेले नहीं हो
शहरोज भाई
तुम्हारी दाढ़ी की कसम
हम सब तुम्हारे साथ हैं।

एफ-119/1, फेज-2, अंकुर एन्क्लेव
करावल नगर, दिल्ली-110094

शिवानंद सहयोगी

कैसी वैतरणी

यह कैसी वैतरणी
जिसकी कटान से
धीरे-धीरे
ढह रही है
मनुष्यता।

सिमटते रिश्ते
घरों में आंगन के आसपास
कमरों में
जीते घुट-घुट
घुटन भर मन में
एक मन दो मन
तोल-तोल
हिस्सा-बखरा के समानुपात।

निकलती नहीं मित्रता
चारदीवारी के बाहर
सामने की सड़क तक
कहने-सुनने
मन की व्यथा
ताकि हंसे न संबंध
ठठा-ठठा
रख हाथ मुंह पर
बेबसी पर

रोती-कराहती अहिंसा
सड़क पर
छटपटा-छटपटा
फूट-फूट
तड़प-तड़प
पटक-पटक हाथ-पैर
नहीं छोड़ती पीछा
बहसी, पगली, अंधी, निर्दयी
सुहागन हिंसा
देखती दया
आंख फाड़-फाड़
पसीजती नहीं
न दिखाती अहमियत
आतंक के भय से

कूदता साहस
किंतु सोच-सोच
हिम्मत जुटा-जुटा

कायरता तो करती
आत्महत्या
छत, पेड़, खंभा, टंकियों से कूद
बस के नीचे दब
रेल की पटरी पर कट
जहर खा
तंगी, भूखमरी, कर्ज की मार से

पेड़ धरती के आभूषण
घटाते प्रदूषण, देते आक्सीजन
सांस और स्वस्थता
कटते जड़ से
मुरगों और बकरों के समान
लगते खेतों में
खेतों की मेड़ पर
सड़कों के किनारे
यूकेलिप्टस और पापुलर
ताड़ से लम्बे
फलदार, छायादार
पेड़ों की जगह

उजड़ गई आंगन की
तुलसी की गांछ
चबूतरे पर लगी
ढह गया चबूतरा
टूट गया द्वार का
बरगद का पेड़
लगे गमलों में
आम, नीम, पाकड़, बरगद, पीपल आदि-आदि
अन्य सजावट के पौधों के साथ
बन बौने पेड़
मन की शांति के लिए

देखती टोपी
पिटता बेकसूर
घूमता अपराधी
ऐंठ-ऐंठ मूंछ
न्याय की आंखों पर पट्टी
सफेद पट
लेन-देन की मध्यस्थता
हारता सत्य
झूठ की गवाही से

मनुष्य पड़ा
मनुष्य के पीछे
धर्म की आड़ में
लगता कुछ इस तरह
चली गई मनुष्यता
बूट लादने

कट चुकी चोटियां
बालों के पहाड़ की
खुला-खुला सिर
बनावट और सजावट
कृत्रिम-कृत्रिम
नीचेवालों की देन
शिक्षा खड़ी
अड़ी पड़ी
विद्यालयों से दूर
अनुशिक्षक के घर
अनुशिक्षण पर
और उच्च शिक्षा
रखती नहीं हाथ
बिना दानपात्र भरे
पांच से छः अंकों के बीच
दक्षिणा

शिष्टता गई रसातल में
ले कुनबा
नाचती उधारी सभ्यता
खुलेआम निर्लज्ज।

ए-233, गंगानगर
मवाना मार्ग, मेरठ-250001 (उ.प्र.)

इंदुकांत अंगिरस

सर्कस

मुझे सर्कस देखना
बचपन से ही पसंद है
घुड़सवारों के करतब
हाथी का खेल, शेर का खेल
यहां सर्कस में
हज़ारों लोगों के बीच
जानवरों का सभ्य व्यवहार देखकर
मैं चकित हो जाता हूं
और सोचने लगता हूं
कि निरंतर प्रयास से रिंग मास्टर
कैसे इन जंगली जानवरों को
पालतू बना देता है
अनोखे करतब सिखा देता है

पर आदमी निरंतर पढ़ता है किताबें
धर्मग्रंथ, प्रेमग्रंथ
जाता है बरसों तक
पाठशाला, स्कूल
लेकिन फिर भी
रह जाता है निरा जानवर

सर्कस में जोकरों का खेल
मुझे सबसे अधिक प्रिय है
जब कुछ छोटे-बड़े जोकर
एक-दूसरे को मारते हैं
और हंसाते-हंसाते दुनिया को
खुद एकांत में रोते हैं
दिखाते हैं तरह-तरह के
जादुई करतब
मुझे उस जोकर का
वो जादुई करतब
आज तक नहीं भूलता
जिसने एक बंदूक की नली से
निकाला था
पहले एक सफ़ेद कबूतर
फिर नीला आसमान
हरियाली जमीन
लाल फूल
और रंग-बिरंगी चादर

जिसे उस बदरंग जोकर ने
खुद ओढ़ लिया या
देकर खुद को एक
भद्दी सी गाली,
दर्शक बजाते रहे थे देर तक ताली
जिंदगी के सर्कस का
यह अंतहीन खेल
फिर दोहराया जाएगा
किसी दूसरे शहर में
वहां दूसरे दर्शक बजाएंगे ताली
पर दुनिया
जाने कब समझ पाएगी
सर्कस के इन
खेलों का अर्थ?

बी-4/177, सफदरजंग एन्क्लेव
नई दिल्ली-110029

केवल गोस्वामी

मित्र-संवाद

बहुत दिनों बाद मिले हो
क्या हाल चाल है यार?
कुछ दुबले लग रहे हो
किस रोग से हो लाचार
बोल न यार
एक क्विंटल से-
कुछ कम हो गया है यार।
किस बात की चिंता है
यही न कि नहीं मिला कोई पुरस्कार
पर अब तो यह आम बात हो गई है
उस्ताद फन्ने खां
हमेशा अखाड़े की मिट्टी से लिथड़े रहे
छुए तक नहीं कभी कलम को जिंदगीभर
वह भी पा गए साहित्य मनीषी का पुरस्कार
शाल-प्रतीक चिह्न के साथ रुपए कई हजार
उनसे एक बार मिल तो लो क्या हर्ज है
शायद लग जाए तुम्हारी भी नैया पार
महज प्रतिभा का राग अलापने से
कुछ नहीं होता
कुछ दांव-पेंच सीखो उस्तादों से
टोना-टोटका जंत्र-मंत्र का करो जुगाड़
आजकल तो इनका बाजार गर्म है
हर चैनल पर तो होता है इनका प्रसार
देख लेना तुरत-फुरत उतर जाएगा बुखार
ईश्वर कहते हैं- हे अर्जुन! संधि न करो
मामा चाचा ताऊ का
सिर फोड़ने से नहीं डरो
इसी जीवन में मिलेगा तुम्हें पुरस्कार
दाता दयालु है
इसके घर में देर है अंधेर नहीं
कभी मत मानो हार,
कभी मत मानो हार
मिलेगा पुरस्कार, मिलेगा पुरस्कार
इसी मंत्र का एक सौ आठ बार करो जाप
छंट जाएंगे बादल, धुल जाएंगे पाप
माफ करना मैं कुछ ज्यादा ही बोल गया
अनाप-शनाप।

जे.के. सोनी

ग़ज़ल

(1)

डाकू के सर पे नेता का साया है।
बड़े मियां ने यही फरमाया है।

जगह-जगह खुदगरजी में।
गरीबों का खून बहाया है।।

देख-देख सरकारी हथकण्डे।
कीड़ा-मकौड़ा छटपटाया है।।

देखकर इसकी काली करतूतें।
जानवर तक भी शरमाया है।।

'सोनी' स्वाद-स्वाद में नेता ने।
कुत्ता-बिल्ली काटा खाया है।

(2)

मरे को मारे शाह मदार।
खड़े को मारे बुरे का यार।।

लूट-लूट जाए देश का नेता।
लूट-लूट खाये थान-ए-दार।।

डाकू से एस.पी. जान बचाए।
'सोनी' को फैंके यमुना-पार।

स्मगलरों की कुण्डली में।
पिए-पिलाए जिल-ए-दार।।

सेक्रेटरी के संग नेता जाए।
पिट-पिट जाए पल्लेदार।।

469 हरमिलाप नगर
सै
पंचकूला (हरियाणा)

अशोक अंजुम

व्यंग्य ग़ज़ल

कुछ तमंचे शेष चाकू हो गये।
यार मेरे सब हलाकू हो गये।

वे इलक्शन में हारे इस दफ़ा।
खीजकर चंबल के डाकू हो गये।

नग्न-चित्रों को पलटते थे मियां,
हम समझते थे पढ़ाकू हो गये।

बाद शादी के वे कुछ ही साल में,
उम्र-वालों के भी काकू हो गये।

देख लो बापू वे बंदर आपके,
आजकल बेहद लड़ाकू हो गये।

खुजायेगा कब तक

वही गीत प्यारे सुनायेगा कब तक?
तू जनता को उल्लू बनायेगा कब तक?

ये आवारगी छोड़ दे मान भी जा,
तेरा बाप तुझको खिलायेगा कब तक?

कई दिन से घोंचू तू पीछे पड़ा है,
बता गुलबदन को पटायेगा कब तक?

अरे ओ खजैले तू पीकर के पव्वा,
मेरी खोपड़ी को खुजायेगा कब तक?

अजी संतजी, छोडिये धर्म-चर्चा,
उजाला हमें अब डरायेगा कब तक?

ये नौसिखिये नेता के अब्बाजी बोले-
तू कुर्सी से टांका भिड़ायेगा कब तक?

तू पैरोडियों से कभी चुटकुलों से-
दुकां मंच पर कवि चलायेगा कब तक?

सूर्य कुमार पांडेय

ग़ज़ल

पास चुटकुले चार सौ, कविताएं कुल चार।
कविवर इस आधार पर, घूम चुके संसार।।

ताला, किन्नर, मंच कवि, पूछ न इनका रेट।
'ताली' से ही भर रहा, है तीनों का पेट।।

कवि बोला, इस पंक्ति पर, जरा दीजिए कान।
श्रोता बोला, कान क्या, ले लो मेरी जान।।

धूल, शायरी, घास की, हालत एक समान।
कहां जमे, कितनी जमे, यह जाने भगवान।।

अविता-कविता व्यर्थ सब, उद्यम आए काम।
जो कवि 'संयोजन' करे, वह पाए प्रोग्राम।।

मुद्रा, मदिरा, मंडली, माइक, माला-हार।
कविसम्मेलन मंच के, ये हैं पंच मकार।।

पॉलिटिक्स, पत्नी, पुलिस, प्रेम-प्यार, परिवार।
हास्य-व्यंग्य के मंच के, ये हैं पंच पकार।।

538क/514 त्रिवेणीनगर द्वितीय
लखनऊ-226020 (उ.प्र.)

भगवती प्रसाद गौतम

घर-देश

तो फिर
वहीं से
शुरू करता हूं
आंख खुलते ही
मैं रोया
चीखा-चिल्लाया
मां की गोद में
मचला-खिलखिलाया
दादी की अंगुलियों के सहारे
पांव लिए
रामजी मास्टर ने
बारहखड़ी की घूंट पिलाई
और मैं
तनकर खड़ा हो गया
देखते-देखते
बड़ा हो गया।
उधर फैलता रहा मैं
इधर सिकुड़ता रहा मैं
अब बौना हो गया हूं
एकदम बौना।
मेरे सामने
भरा-पूरा घर है
बाल-बच्चों का
बवंडर है
पहाड़-सा बाप
और सींक-सी मां है
सूखे झाड़ से भाई हैं
दरख्तों-सी बहने हैं
गिरगिट से रिश्ते हैं
कुछ मंहगे कुछ सस्ते हैं।
और यह घर है
जिसकी दीवारें
हो चली हैं
कान जी बा की तरह जर्जर
ऊबड़-खाबड़ औसारा है
जिसकी बल्लियां हैं
कमर सी झुकी-झुकी
सब तरफ से
खुला-खुला है घर
हर तरफ से
पिटा-पिटा है घर
घर क्या,
पूरा का पूरा देश है
और बस मैं हूं
एक बौना
एकदम बौना!

1-त-8 'अंजलि'
दादाबाड़ी, कोटा (राजस्थान) 324009

कुबेरनाथ

ट्रेन से टकराते हुए

ट्रेन से गुजरते हुए
बीहड़ प्रदेश
दूर-दूर तक पहाड़ पेड़
सिर्फ अधो वस्त्र
पहने स्त्री-पुरुष
गेहूं काटते-ढोते
स्त्री-पुरुष बच्चे।
सर पर
पानी का बर्तन लिए
पहाड़ों पर चढ़ती हुई
औरत
ट्रेन से गुजरते हुए
घास-फूस का घर
मिट्टी की दीवार
घर पर घर
हर घर से उठता धुआं
शायद
कुनबे की औरतें
बार-बार फूंक मारकर
जला रही
लकड़ी या जिंदगी
जिसके तवे पर सेंकती
रोटियां
उलटती-पलटती
ट्रेन से गुजरते हुए
बड़ी-बड़ी इमारतें
फ्लाई ओवर
छोटी-बड़ी गाड़ियां
तेज रफ्तार जिंदगी
बड़े-बड़े होर्डिंग
विज्ञापन करती औरतें
कोमोत्तेजक कपड़े
नुमाइशी हाव-भाव
ट्रेन से टकराते हुए
देखता हूं।

1, साक्षर अपार्टमेंट
पश्चिम विहार, नई दिल्ली

आलोक शर्मा

प्रयोजन

'क' से कबूतर ने कहा–
'नए साल की बधाई दोस्त गूटर गूं'
दुखी स्वर में मित्र ने कहा–
'दुहाई हो दुहाई मित्र गुटर गूं'
पहले कबूतर ने पूछा–
'यार, बधाई की गूटर गूं पर
दुहाई की गुटर गूं!
ये बात अपनी समझ में नहीं आई?'
दूसरा कबूतर बोला–
'क्या बताऊं भाई,
जब से शांति उत्थान समिति के
वार्षिक समारोह का आमंत्रण मिला है
तब से पूरे परिवार का कलेजा हिला है
कहने को तो ये सुख-शांति का प्रयोजन है
मगर तुम्हें मालूम ही होगा
ये उसी कौव्वा समाज का आयोजन है'
पहले कबूतर ने कहा–
'आयोजन किसी का भी हो
बुलावा है तो जाने में कैसी दिक्कत
फिर आप तो हम कबूतरों का
गौरव बढ़ा रहे हैं
सबके बीच शांति दूत बनकर जा रहे हैं'
दूसरा कबूतर आक्रोशित होकर बोला–
'यही तो बात है गुरू
कि हम अपने कबूतरपने पर ही पछता रहे हैं
क्योंकि इस बार मुख्य अतिथि बनकर
श्रीमान चील जी आ रहे हैं
वे हमें शांति का प्रतीक बतायेंगे
कड़कती ठंड में जन समुदाय को
अपने भाषण से गरमाएंगे
फिर रात के स्नेहभोज में
अपनी सर्दी भगाने के लिए
हमें ही खा जाएंगे।
हम अपना रक्त बहाकर
दूसरों की गर्मी बढ़ा देते हैं
मगर खुद के ज्वलंत प्रश्नों पर
क्यों ठंडी-सी चुप्पी लगा लेते हैं।
जब दिल में मचा है हाहाकार
फिर कैसे सोचूं की शांति होगी
मैं तो बस इतना ही पूछता हूं
इन चील कौव्वों के विरुद्ध
कब हमारी क्रांति होगी।'

क्वार्टर नं-3 डी, स्ट्रीट-19
सेक्टर-1, भिलाई नगर

रीता हजेला 'आराधना'

विज्ञापन

बाजारवाद ने अपना रंग दिखाया
संसद की कार्यवाही के लिए
विज्ञापन बिल आया
नेताओं ने उसे सर्व सम्मति से
पास कराया

संसद की टी आर पी तो
वैसे ही सबसे ज्यादा है
नेता तो यूं भी सच्चे अभिनेता हैं
बिना रीटेक के शॉट पर शॉट

फायदा ही फायदा
लिबर्टी के जूते हड़प लिए पक्ष ने
लखानी की चप्पल चली गई विपक्ष में

सफेदी की चमकार रिन से
दाग अच्छे हैं का कमाल
सर्फ एक्सेल के सौजन्य से

अब हंगामा भी होता है
तो संसद का कार्यकाल नहीं होता ठप्प
विज्ञापनों से बढ़ जाती है आमदनी

देश का कितना ध्यान है
क्या आपको प्रतिदिन के
खर्च का अनुमान है
अब कोई नहीं उठा सकता एक उंगली
प्रायोजकों में हो रही है होड़
और नेताओं में
विज्ञापनों के लिए जोड़-तोड़।

डॉ. किशन तिवारी

ग़ज़ल

मौत जीती है हारी नहीं,
फिर भी रोके गुज़ारी नहीं।

आपसे किसने ये कह दिया,
अब ज़रूरत हमारी नहीं।

सच को सच की तरह मान लो,
बात मेरी तुम्हारी नहीं।

नाचते ही रहे उम्रभर,
देखा पाए मदारी नहीं।

जो थे पीछे वो आगे हुए,
कब कहां अपनी बाटी नहीं।

मुझको पैदल ही अब छोड़ दो,
अब मिलेगी सवारी नहीं।

34-सेक्टर-9/5
साकेत नगर, भोपाल

आशीष दशोत्तर

केवल हैं नारे देखिए

एक कुर्सी के लिए, कितने नज़ारे देखिए,
जो खुद ही लाचार है, उनके सहारे देखिए।

सिर्फ़ है उजड़ा चमन और फैलता पतझड़ यहां,
और उनके हर तरफ बिखरी बहारें देखिए।

झूठ का है हर गली और हर शहर में आशियां,
सत्य की है हर क़दम पर बस मज़ारें देखिए।

घोषणाओं, वायदों के पुल बने कितने यहां,
काम से ना वास्ता, केवल हैं नारे देखिए।

है नहीं जिनको समझ, वे बन गए उस्ताद हैं,
और समझदार को कहते बेचारे, देखिए।

39, नागर वास,
रतलाम (म.प्र.) 457001

ब्रजेश कानूनगो

कविताएं

ग्लोबल प्रोडक्ट

जाने कौन-सी तरंगें पहुंच रही हैं
और करतीं हैं एक्टिवेट उसे
निकलती रहती हैं लगातार
वाइस ऑफ अमेरिका उसके मुख से

अपनी भाषा भी बोलता है कभी-कभी
लेकिन ऐसा लगता है जैसे
अभी-अभी आया कोई कोलम्बस
कोशिश कर रहा है बात करने की
हमारी भाषा में

उसके बच्चे नहीं पहनते
कुर्ता, सलवार, अचकन या चूड़ीदार
पहनावे से पता ही नहीं चलता
कि किस जलवायु का बाशिंदा है
डिजाइनर कपड़ों पर चिपकी
प्रसिद्ध मार्का की छोटी-सी कतरन
घोषित करती है कि वह
बाजार युग का ग्लोबल प्रोडक्ट है

भरा होता है उसका बटुआ
जादुई कार्डों की बहुमूल्य संपदा से
दुनिया खरीद लेने का विश्वास
चमकता है उसके चेहरे पर
सरकारी करेंसी भी थोड़ी बहुत होती है
उसके पास
सत्कार, घूस और डोनेशन में
बड़ी सहूलियत रहती है इससे
और फिर
देवालय के बाहर और भीतर
क्रेडिट कार्ड से पुण्य खरीदना
आसान नहीं हुआ है अभी
बहुत पहले से छोड़ दिया है उसने
दकियानूसी पारंपरिक भोजन करना
फास्ट फूड और बर्गर मिटाते हैं उसकी भूख
बहुराष्ट्रीय कंपनी के
प्रमाणित साफ्ट ड्रिंक से
बुझाता है वह अपनी प्यास को

बड़ा ही स्मार्ट है वह
जबानी याद है उसे सचिन के शतकों का
आंकड़ा
और संवेदनशील इतना कि
शेयर मार्केट की तनिक-सी घट-बढ़ से
बढ़ जाती है उसके दिल की धड़कन

यह बड़ा अच्छा है कि
कारखानों से निकाले गए मजदूरों का दुख
नहीं करता उसे स्पंदित
जहर पीकर आत्महत्या करनेवाले
किसानों की संख्या में व्यर्थ नहीं जाती
उसकी मेमोरी
बांध से प्रभावित विस्थापितों की पीड़ा
प्रभावित नहीं करती उसकी आत्मा को

विकास के इस महत्वपूर्ण समय में
और कई वर्जन आने हैं अभी
इस ग्लोबल प्रोडक्ट के।

कैसे कहूं . . .

जिस घर में रहता हूं
कैसे कहूं कि अपना है

चींटियां कीट पतंगे और
छिपकलियां भी रहती हैं
यहां बड़े मजे से
उधर कोने में कुछ चूहों ने
बनाया है अपना बसेरा
ट्यूब लाइट की ओट में
पल रहा है चिड़ियों का परिवार
आंगन में खिले फूलों पर मंडराती
तितलियां और भौंरे
गुनगुनाते हुए चले आते हैं
घर के अंदर तक

कांप जाता हूं अचानक यह सोचकर
कि कहीं एक दिन किसी को
दिखाई न दे जाएं ईश्वर सपने में
और कहें
कि सोया पड़ा हूं युगों से
धरती के भीतर इस घर के नीचे
निकालो मुझे बाहर
और बनाओ आस्था की एक इमारत यहां

यह भी हो सकता है कि
निकल आए किसी की पवित्र अस्थियां
आंगन में पौधा लगाते समय
घर के एक हिस्से में होने लगे इबादत
और धर्मरक्षार्थ कुछ लोग शुरू कर दें
अखंड कीर्तन

सरकारी मुनादी के बाद
डाल दिए जाएं ताले
मेरे घर के दरवाजों पर

503, गोयल रिजेन्सी
गोयल नगर के पास, इंदौ

उदयप्रताप हयात

ग़ज़ल

कुछ लोग उनसे हाथ मिलाने में चले गए
ऊर्जा के लिए शामियाने में चले गए।

किस्मत का लिखा यार मिटाने में चले गए
हा आइना थे दोष दिखाने में चले गए।

कितनों ने सच में कर दिया लाखों का हेर-फेर
जो मूर्ख थे खाने में नहाने में चले गए।

अफसर हुए नेता हुए तो क्या हुआ जनाब
हम आदमी थे जीभ हिलाने में चले गए।

कितना कहा कि जल पे रेखा ना खींचिए
काग़ज़ के ऊपर बांध बनाने में चले गए।

जागे हुए थे अपने घरों में सब 'हयात'
चोरों ने देखा यह तो थाने में चले गए।

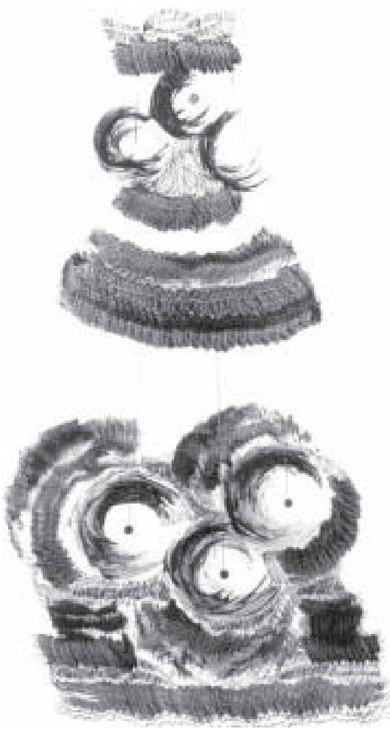

जीवन के मोर्चे पे फेल
पढ़ लिख कर के बेचे तेल

खुलती है रैली में रेल
सीधे-साधे जाते जेल

खूनी सब बाजार में घूमें
पैसे पर करवा के बेल

तन तगड़ा, ईमान नदारद,
टार्च से जैसे गायब सेल

लूट अपहरण हत्या रेप
वोट दिया है तो यह झेल

गढ़िया चटनी मिर्च सलाद
सरकारे मुंबइय्या भेल

कोर्ट है अपना जनता अपनी
नीडर बन घोटाले पेल

हां 'हयात' दुनिया गड़बड़ है
मन को मथ और दुविधा ठेल

लालित्य ललित

आश्रित

आप आकर्षक हैं
सुंदर हैं
लोचदार हैं तो
बिना नंबर की
सब सुविधाएं
आप पर
आश्रित हैं।

बी-3/43, शकुंतला भवन
पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

अब्दुल रशीद आज़मी

ग़ज़ल

है बर्क[1] मेरी खुशी का मगर फसाना भी।
गुजर रहा है बड़े कर्ब[2] से ज़माना भी।

बहा-बहा के जो आंसू मुराद[3] तक पहुंचे।
है रंज[4] उनके लिए मेरा मुस्कुराना भी।।

सफ़ों[5] में कोई मुनाफिक[6] जरूर दर आया।
जला गया जो मुहब्बत का शामियाना भी।।

मेरे लबों पे तबस्सुम[7] के जो गुलाब खिले।
वही गुलाब लगे उनको ताज़ियाना[8] भी।।

कभी तो तख्त[9] मिले और कभी तख्त-ए-दार[10]।
अजीब चीज़ है अंदाज़े खुशरवाना भी।।

1. बिजली, 2. पीड़ा, 3. लक्ष्य, 4. दुख 5. दरम्यान, 6. साजिश करने वाला, 7. मुस्कान, 8. चाबुक, 9. सत्ता, 10. फांसी, 11. शाही अंदाज।

एन.सी.पी.यू.एल., आर.के. पुरम
नई दिल्ली

दीपक गुप्ता

ग़ज़ल

ऐसे हालात आने लगे हैं,
चुटकले भी रुलाने लगे हैं।

एक कविता जमाने की खातिर,
उनको कितने ज़माने लगे हैं।

होश की बात करने लगा हूं,
आप जब से पिलाने लगे हैं।

तुमको पाकर लगा जिंदगी में,
हाथ मेरे खुजाने लगे हैं।

हो न जाऊं कहीं बेसहारा,
मेरे बच्चे कमाने लगे हैं।

इधर जो मैंने पढ़ा

प्रेम जनमेजय

व्यंग्य का एक कारगर हथियार 'रात दिन'

भूमंडलीकरण के नाम पर,बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद के चलते, पिछले एक दशक में पूंजीवादी मूल्य प्रबल हुए हैं और इसके परिणामस्वरूप भारत में अनेक सामाजिक राजनैतिक एवं आर्थिक विसंगतियों ने जन्म लिया है। सजग चेतनासम्पन्न समाज के समक्ष अनेक चुनौतियां उपस्थित हुई हैं। यह परिवर्तन अकस्मात् नहीं हैं अपितु वर्षों की षड्यंत्रयुक्त सुनियोजित योजना का परिणाम है। जिन खतरों को देखकर हम आज चिंतित हो रहे हैं, उन खतरों का निर्माण हमारे लिए बहुत पहले कर लिया गया था। आज स्थिति यह है कि हम वर्तमान में उन खतरों के विरुद्ध जूझने के लिए अपनी नीति बना रहे हैं जबकि हमारे भविष्य के खतरों के निर्माण की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी है। शतरंज बिछी हुई है और हमारा प्रतिद्वंदी हमसे ढाई घर आगे की चाल चल रहा है। हम जानते हैं कि आर्थिक परतंत्रता शारीरिक परतंत्रता से अधिक खतरनाक और कष्टदायक होती है। आज किसी भी राष्ट्र की सीमाओं का अतिक्रमण करना बहुत कठिन है। आज सब के पास अत्याधुनिक हथियार हैं। इस प्रकार के हस्तक्षेप में अपना नुकसान होने के खतरे भी रहते हैं परंतु खुली अर्थव्यवस्था, आर्थिक प्रतिबंध, अनुदान और भूमंडलीकरण के नाम पर जिस प्रकार के दबाव डाले जाते हैं वह जग जाहिर है। इससे सांप भी मर जाता है और लाठी भी नहीं टूटती है और आपने प्रजातांत्रिक मूल्यों के रक्षक तथा मानवीय मूल्यों के सरंक्षक होने का जो लबादा ओढ़ा हुआ है, उसकी भी रक्षा हो जाती है।

भारत देश भूमंडलीकरण के रंग में पूरी तरह रंगकर अंतर्राष्ट्रीय हो गया है परंतु हमारे अधिकांश व्यंग्यकारों के विषय अभी 'भूमंडलीकरण' से दूर हैं। आज भी अधिकांश तथाकथित हास्य-व्यंग्य लेखक नेताओं के कैरिकेचर खींच उनका मजाक बनाने को अपने कर्म की इति समझ रहे हैं। किसी कॉलम में लिखना अच्छा व्यंग्यकार होने की

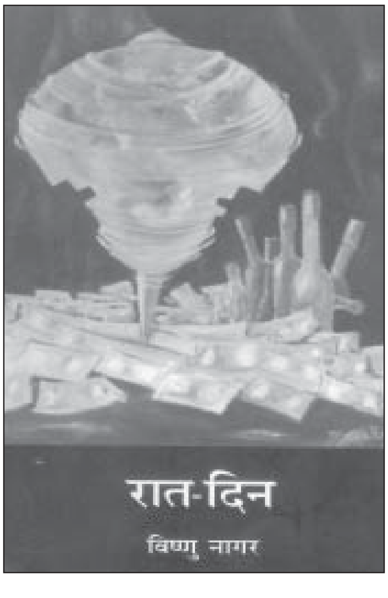

कसौटी बना दी गई है। व्यंग्य यदि सर्वाधिक पठनीय विधा है तो उसमें सावधानी की अधिक आवश्यकता है। आम जनता की हास्य-व्यंग्य के प्रति गहरी पसंद को भुनाने के प्रयत्न जारी हैं और इस दौड़ में हमारे टी.वी. चैनल अग्रणी हैं। व्यंग्य के पैने हथियार को कुंद करने का षड्यंत्र जारी है। जो काम एक समय मंच पर हास्य-व्यंग्य के कवियों ने किया था वही आजकल चैनल कर रहे हैं। अपनी टी.आर.पी. उठाने के चक्कर में मानवीय मूल्यों की टी.आर. पी. गिराने का क्रम जारी है।

आज बहुत आवश्यकता है दूरगामी सोच की। आज बहुत आवश्यकता है खतरों को पहचानने की और उनका मुकाबला करने की। आज बहुत आवश्यकता है व्यंग्य का एक धारदार हथियार के रूप में इस्तेमाल करने की। बड़े खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि अपने समय के खतरों को पहचानकर उनका चुनौतीपूर्ण ढंग से मुकाबला करने के लिए व्यंग्य का एक कारगर हथियार के रूप में प्रयोग करने वाले रचनाकारों की संख्या बहुत कम है। 'हास्य-व्यंग्य' लिखने वाले और लिखकर मूल्य वसूलने वाले तो बहुत हैं परंतु व्यंग्य लिखकर मूल्य चुकाने वाले बहुत कम हैं। ऐसे कम लोगों में विष्णु नागर हैं। विष्णु नागर के लिए मात्र व्यंग्य लिखना या कहूं व्यंग्य का लिक्खाड़ बनना कोई विवशता नहीं है। वे 'हम भी व्यंग्य लिखते हैं' का गर्व पाले किसी गर्विणी नायिका से यहां-वहां इठलाते फिरते नहीं हैं अपितु उनकी प्राथमिकता एक अच्छी साहित्यिक रचना लिखने की होती है। उनके लिए विधा नहीं रचना महत्वपूर्ण है। शायद यही कारण है कि उन्होंने विभिन्न विधाओं में भरपूर लिखा है। वे व्यंग्य के परंपरागत घिसे-पिटे विषयों को और घिसने के पक्षधर नहीं हैं अपितु एक दिशायुक्त चिंतन के साथ अपने समय को समझकर, उसकी विसंगतियों पर सार्थक व्यंग्य द्वारा प्रहार करने के पक्षधर हैं। वे साहित्य कला और संस्कृति की खुली दुनिया में आम आदमी के अनुभवों को अभिव्यक्ति देने में विश्वास करते हैं। उनका नया संग्रह 'रात-दिन' मेरे उपर्युक्त 'कथन' का साक्षी है।

'रात दिन' में हमारे वर्तमान में निरंतर विकसित हो रही विसंगतियों के प्रति एक चिंता विद्यमान है। विष्णु नागर के लेखन की मूल चिंता है कैरियर बनाने की वो अंधी दौड़ जो समाज, धर्म और राजनीति में दिखाई देती है। इस दौड़ के चलते एक अंधापन उपजा है जिसने कोल्हू के बैल-सी पट्टी बांध दी और जिसके फलस्वरूप सब कुछ जल्दी बटोर लेने की प्रवृत्ति अपने आस-पास से हमें अपरिचित कर रही है। वो चाहे 'पापा मैं गरीब बनूंगा' और 'भगतसिंह बिल्डर्स' के मां-बाप हों, 'राजा-प्रजाकी प्रेम कथाओं' का राजा हो, 'खरगोश-कछुआ कथा' या 'खरगोश-कछुआ दौड़ की उत्तरकथा' का खरगोश हो, या फिर 'सांप्रदायिकता फैलाने का शौक' वाले एवं 'गुजरात और उसके बाद' वाले हों। इन सबके विरुद्ध विष्णु नागर के अंदर एक आक्रोश है जो

वर्तमान व्यवस्था जनित विसंगतियों के प्रति न केवल अभिव्यक्त हुआ है अपितु अपने पाठक को शिक्षित भी करता है। 'राजा-प्रजा' की प्रेम कथाओं में हमारी राजनैतिक व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियों को उद्‌घाटित करते हुए कुछ व्यंग्य प्रसंग प्रस्तुत हैं –

'एक था राजा। एक दिन पता नहीं अचानक उसे कैसे और क्या हुआ कि उसे प्रजा से प्यार हो गया। वह प्रजा को देखकर गाने लगा, 'मुझे तुमसे प्यार है, प्यार है।'

राजा ही अगर प्रजा से प्यार करने पर उतारू हो जाए तो प्रजा बेचारी भी क्या कर सकती है। राजा को प्यार है तो है! उसे हक है जिससे चाहे प्यार करने का और जिसे वह प्यार करे उसका पुनीत कर्त्तव्य हो जाता है कि उसके प्यार को बर्दाश्त करे। आखिर प्रजा के भी तो राजा के प्रति कुछ दायित्व हैं।'

. . .इसके बाद राजा और प्रजा में जबरदस्त टेंशन पैदा हो गया, जिसके परिणामस्वरूप प्रजा के गांधीवाद का अंततः क्या हुआ, यह तो नहीं मालूम और यह भी नहीं मालूम कि इसके बाद खुद प्रजा का क्या हुआ! वह कहां गई और आज की तारीख में मर-खप गई या मार दी गई है। मगर राजा अभी है और सुनते हैं उसे प्रेम करने के लिए नई प्रजा की जरूरत है। उसने विदेश से प्रजा के आयात करने की बात कर ली है जो कि अंतिम चरण में है और इसके लिए राजा आयात सब्सिडी देने के लिए तैयार है।'

. . . फिर राजा स्वयं रोते-रोते प्रजा के गले लिपट गया, और उसे पागलों की तरह चूमने-चाटने लगा एवं राजधानी लौट आया और पुनः प्रजा के हित में उससे प्रेम करने लगा। मामला फॉरेन इन्वेस्टमेंट का जो था!'

राजनीतिक विसंगतियों पर लिखने का जिन व्यंग्य-व्यावसायियों ने दैनिक कर्म बनाया हुआ है वे इस प्रकार के प्रसंगों से कुछ शिक्षित हो सकते हैं कि कैसे दूरगामी प्रभाव वाली व्यवस्था जनित विसंगतियों एवं प्रवृत्तियों को व्यंग्य-प्रहार का लक्ष्य बनाना चाहिए। इन रचनाओं में किसी सत्ताकर्मी नेता का कैरीकेचर नहीं है अपितु हमारी पूरी राजनीतिक व्यवस्था मे जो विसंगतियां हैं, प्रजातंत्र के नाम से जिस प्रकार व्यक्तिगत स्वार्थों को सिद्ध किया जाता है तथा प्रजा के प्रति सत्ता की दिखावटी 'सहानुभूति' का प्रकटीकरण है। राजनीति में से नीति गायब हो गई है और उसका स्थान कैरियर ने ले लिया है। इस कैरियर में निरंतर आगे बढ़ने की अंधी दौड़ ने सभी नैतिक मूल्यों को दरकिनार कर दिया है। नैतिकता ही नहीं आपसी सबंधों में निहित आवश्यक लगाव को भी दरकिनार कर दिया है। पति-पत्नी, माता-पिता-पुत्र-पुत्री, मैत्री आदि संबंधों की एक नई परिभाषा गढ़ी जा रही है। बेटा अगर कैरियर की राह में 'रोड़ा' बनता है, बॉस के सामने आपकी 'झंडी उतारता' है तो उसका 'उपचार' आवश्यक है। बेटा बॉस से बड़ा नहीं हो सकता। गुरु गोविंद दोऊ में से निश्चित ही ऐसे गुरु को प्रणाम कर उसकी शरण में जाना होगा जो कैरियर की राह बताता है। कैरियर के मार्ग पर चलते हुए निर्मोही होना ही पड़ता है और उस निर्मोह में बॉस के लिए पत्नी का भी मोह छोड़ उसे बॉस के लिए छोड़ना ही पड़ता है। हमारे ऋषि मुनियों ने भी तो कितनी तपस्याएं की हैं। अब 'पापा मैं गरीब बनूंगा' का मोहित अपनी बर्थ-डे पार्टी में बॉस और कंपनी के अन्य अफसरों के सामने घोषणा कर दे कि मैं बड़ा हो कर गरीब बनूंगा तो कंपनी बहादुर के सामने क्या इज्जत रह जाती है! ऐसे में सांप तो सूंघेगा ही क्योंकि कैरियर लपेटे में आ रहा है। जिस संतान को मोटी फीस देकर मोटे स्कूल में पढ़ा रहे हैं वही पतले होने की राह पर चलने की घोषणा करे तो मां-बाप की यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक ही होगी– हर मां-बाप को अपनी संतान प्रिय होती है और 'ओफकोर्स' होनी भी चाहिए मगर कोई संतान इतनी प्रिय नहीं होती कि वह बॉस और दफ्तर के दूसरे दस लोगों के सामने मां-बाप की झंडी उतार दे और वे चुप सह जाएं, क्रोध की ज्वाला में न जलें। . . .मोहित की मां अपनी रुलाई को रोकते हुए अंदर चली गई और बेडरूम को बंद कर के रोने लगी और उसकी इच्छा हुई कि या तो इसी समय औलाद को मार डाले या खुद गले में फांसी का फंदा लगा ले।' लगता है आप इस 'त्रासक' दृश्य को देखकर दुखी हो गए हैं कि बॉस के लिए पार्टी वाली कहानी में हमने तो सोचा था कि दारू होगी और बॉस के साथ कुछ नैन मटक्का भी होगा। यह कहानी आपको अस्वाभाविक लग रही है और यह भी लग रहा हो कि समाज में भला कहीं ऐसा भी होता है। आप चिंता न करें, अंत भले का भला ही है– इस बीच स्मिता आंसू पोंछकर, मुंह धोकर आई और सबके चेहरे खिल गए। बॉस भूल गए कि उन्हें जल्दी जाना था और हनुमान जी के कारण आज उन्हें शराब से परहेज रखना है। उस रात या शाम तो बॉस का ऐसा गजब मूड बना कि उन्होंने खुद गाना गया, हालांकि वैसा ही गाया, जैसा कि रिश्वतखोर बॉस अमूनन गाते हैं। . . .उन्होंने स्मिता से अपने साथ ड्यूएट गाने का आग्रह किया और गाते-गाते उसके गले में पहले हल्का-सा और बाद में मजबूती से हाथ डाल दिया। . . .स्मिता ने देखा कि पति के चेहरे पर शिकन नहीं है तो वह 'नार्मल' हो गई। . . . वह जाने-अनजाने अपनी तरफ से इस तरह पति के कैरियर में मदद भी कर रही थी, जिसका ग्राफ तेजी से ऊपर नहीं जा रहा था।' जो काम बेटे ने बिगाड़ा उसे उसकी मां ने संवारा। ऐसी होती है पतिव्रता नारी। आपके काम न बिगड़ें इसके लिए व्यंग्य-रचना के अंत में 'व्यंग्य-वाचक' विष्णु नागर कहते हैं– अतः हे सज्जनो और अगर आपमें कोई दुर्जन हों तो हे दुर्जनों भी, आप कम-से-कम इतना तो अवश्य करें कि मोहित के मां-बाप की तरह आज ही कसम खाएं कि आगे से गरीबों के बारे में अपने सुंदर-सुंदर विचारों को अपने बच्चों के सामने प्रगट नहीं किया करेंगे। पार्टियां तो आपके यहां भी होती हैं और बच्चे किसी के भी इतने समझदार नहीं होते कि उनके सामने गरीबी का इतना सुंदर चित्रण किया जाए और गरीब बनने के सपने न देखने लगें। उन्हें ऐसे सपने देखने से रोकिए, ताकि कम-से-कम इतना तो हो कि वे आपकी पार्टियां बर्बाद न करें। बंधुओ, मैंने यह कहानी सिर्फ आपकी पार्टियों को ऐसे अप्रिय प्रसंगों से बचाने के लिए लिखी है। सत्यनारायण की कथा की तरह इसको दूसरों को पढ़ाने से आपको दुगना पुण्य मिलेगा। इति विष्णु नागर पुराणे, रेवाखंडे, मोहित-कथा समाप्त।' तो हे बंधुओ, मैंने भी इस कथा का आपके सामने विस्तार से, उद्धरणों सहित, इसलिए विश्लेषण किया है कि आपको और मुझे दुगना पुण्य प्राप्त हो। आप तो ज्ञानी हैं,

चावल के एक दाने को देखकर जान लेते हैं कि कितना कुछ 'पका' है। आप तो जान ही गए होंगे कि हमारी सामाजिक, राजनीतिक आदि आदि अनादि विसंगतियों को पकड़ने की कैसी अद्भुत क्षमता है विष्णु नागर में। आप जान गए होंगे कि उनके पास व्यंग्य-प्रहार की दृष्टि है और वे सार्थक-व्यंग्य लेखन में विश्वास करते हैं। आप यह भी जान गए होंगे कि उनके पास व्यंग्य का एक अलग शिल्प है। व्यंग्य के इस अलग शिल्प के लिए यदि आप चाहें तो उनके द्वारा लिखा गया नया पंचतंत्र जिसमें– 'खरगोश-कछुआ कथा' है, 'चुहिया और बिलाव की प्रेमकथा' है, 'शेर राजा की उदासी', 'हाथी और चूहा' आदि आदि है। आप सही कह रहें है श्रीमान् कि आप बच्चे नहीं हैं जो जानवरों की कथाएं पढ़ें, पर श्रीमान् आप ऐसा बचपना तो अक्सर करते हैं जिससे आपके अंदर का जानवर झांकने लगता है। आपको इनसे भय लगता हो तो नए एंगल से लिखी प्रेमकथाएं- 'मेरी कल्पना की औरत', 'प्रेम कहानियां' आदि पढ़ डालिए और देखिए कि इस बदलते समय में आप किन विसंगतियों से घिरे हुए उल्लू बन रहे हैं। यदि आप धार्मिक हैं तो 'ईश्वर की कहानियां', 'आत्मज्ञान', 'सांप्रदायिकता फैलाने का शौक', 'हनुमान' आदि आदि पढ़ डालिए और सोचिए कि विष्णु नागर की इन बातों में कितना दम है– कि क्या ऐसा भी हो सकता है कि किसी दिन खुद ईश्वर का अंतिम समय आ जाए। . . .तो क्या भक्त, ईश्वर का मालिक बन चुका है।' आप चाहें तो 'साले तूं किसकी इजाजत से मरा' भी पढ़ सकते हैं क्योंकि इसे पढ़ने के लिए किसी की इजाज़त लेने की आवश्यकता नहीं है। और यदि आप कोई एक रचना पढ़ना चाहते हैं तो आप 'रे गांधी' पढ़ डालिए। आपसे मैंने इतना कुछ पढ़ने को कहा है और हो सकता है आपका खीझा मन मुझे लतियाने का हो जाए, पर मेरा विश्वास है कि जब आप पढ़ जाएंगें तो हो सकता है मुझे प्यार करने का मन बन जाए। लेखक? उसे तो आप करेंगे ही, पर मुझ पर बलिहारी जाने के बाद करने के बाद बिकॉज़ कबीरा हैज सैड– समीक्षक लेखक दोऊ खड़े काके लागे पांय, बलिहारी समीक्षक आपने लेखक दियो बताए।

(कृपया 'आपने' को आपने ही पढ़ें 'अपने' नहीं।)

पुस्तक : 'रात-दिन'
लेखक : विष्णु नागर
प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन
मूल्य : 200 रुपए

– 'कथन' से साभार

दिशायुक्त सार्थक व्यंग्य-कर्म

व्यंग्यकार की मूल चिंता अपने समय की सामयिक विसंगतियों की पहचान कर उनपर दिशायुक्त प्रहार करने की होती है । यही कारण है कि अधिकांश व्यंग्यकारों की रचनाएं वर्तमान में घटित घटनाओं की व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया लगती हैं। ऐसे लेखन के खतरे बहुत हैं। ऐसी रचनाएं (?) व्यंग्यात्मक टिप्पणियां अधिक होती हैं। अखबारों के माध्यम से ऐसा लेखन इन दिनों पर्याप्त विकसित तथा प्रचारित हो रहा है। इस तरह के लेखन के प्रति मेरा कोई विरोध नहीं है। मेरा विरोध अखबारी खबरों की व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया को व्यंग्य रचना मान लेने का आग्रह करने से है। समाचार आखिर समाचार होता है। स्तम्भ लेखन की अपनी सीमाएं तथा विशेषताएं हैं। अपवाद स्वरूप इस तरह के लेखन के फलस्वरूप अच्छी रचनाएं भी मिल जाती हैं। हरिशंकर परसाई और शरद जोशी का लेखन इसका उदाहरण है। गोपाल चतुर्वेदी भी इसी श्रेणी में आते हैं। वह इंडिया टुडे, साहित्य अमृत, दैनिक हिंदुस्तान, और राष्ट्रीय सहारा में स्तम्भ लेखन करते रहे हैं / कर रहे हैं परन्तु स्तम्भ

लेखन के खतरों से स्वयं को बचाते हुए। इसका कारण संभवत: गोपाल चतुर्वेदी की शैली है। वह अपनी बात को कथा के माध्यम से कहते हैं। गोपाल चतुर्वेदी मात्र टिप्पणियां नहीं करते अपितु पात्र तथा घटनाओं के माध्यम से उपस्थित विसंगतियों पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं।

जैसे ईश्वर गजब है, ईश्वर की कहानियां गजब हैं वैसे ही ईश्वर शब्द भी गजब है। जैसे ईश्वर के अनेक रूप हैं वैसे ही इसके साथ लगने वाले अनेक प्रत्यय अनेक रूपों में अपने दर्शन देते हैं । आपने धर्मेश्वर, सुरेश्वर, (पति) परमेश्वर, विश्वेश्वर, कामेश्वर, नागेश्वर आदि आदि में ईश्वर के अनेक रूपों का दर्शन किया होगा पर क्या आपने 'धांधलेश्वर' प्रभु के दर्शन किए हैं? क्या प्रभु के इस रूप से परिचित हैं, यदि नहीं तो गोपाल चतुर्वेदी का नया व्यंग्य-संकलन 'धांधलेश्वर' पढ़ डालिए। ईश्वर का यह रूप भारत के कण-कण में विद्यमान है। आप रोज इस ईश्वर के दर्शन करते हैं और इसके आगे नतमस्तक होकर कभी दिल खोलकर और कभी बलात् चढ़ावा चढ़ाते हैं। इसपर चढ़ावा चढ़ाने से रुके हुए काम चलने लगते हैं और आपको शर्तिया लाभ होता है। यह ईश्वर के इसी रूप का परिणाम है कि आपको भ्रष्टाचारेश्वर, रिश्वतेश्वर, पुलिसेश्वर, अफसरेश्वर आदि आदि अनादि के दर्शन होते हैं। यदि आप गोपाल चतुर्वेदी के समग्र व्यंग्यकार रूप के

दर्शन करना चाहते हैं तो भी इस 'धांधलेश्वर' को अवश्य पढ़ डालिए। यह बहुत ही ज्ञानवर्धक पुस्तक है समाज के अनेक हिस्सों के बारे मे इससे जानकारी मिलेगी । सौ रचनाओं वाले इस विशालकाय ग्रंथ को देखकर पहले तो आप घबरा जाएंगे, आपका मन न पढ़ने की धांधली को ललचाएगा पर जब एक बार पढ़ना आरंभ करेंगे तो पछतावा होगा कि यह जल्दी क्यों समाप्त हो गया । इसमें रोचकता की गजब की धांधलेबाजी है जो पाठक को ऐसा निकम्मा करती है कि वह किसी और काम का नहीं रहता ।

हास्य-व्यंग्य लेखन जिसका सदुपयोग ज्ञानीजन 'कॉमेडी सर्कस' के रूप में कभी चैनलों और कभी मंच और कभी कुछ अखबारों के खम्बों पर करते हैं, बहुत सरल कर्म हो गया है। पर गोपाल चतुर्वेदी को पढ़कर लगता है कि अच्छा एवं सार्थक व्यंग्य लिखना एक बहुत ही कठिन कर्म है। गोपाल चतुर्वेदी यूं ही व्यंग्य लिखने में विश्वास नहीं करते हैं अपितु उनके पास एक स्वस्थ जीवन-दृष्टि है जो समाज में व्याप्त असमानता, शोषण, धार्मिक कठमुल्लेपन आदि के खिलाफ इसका प्रयोग हथियार के रूप में करती है। गोपाल चतुर्वेदी ने कभी अपने व्यंग्य-लेखन का 'हाईप' खड़ा नहीं किया है, वे चुपचाप व्यंग्य लिखने में विश्वास करते हैं । उन्होंने व्यंग्य के सैद्धांतिक पक्ष पर बहुत ही कम कहा है पर इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके मस्तिष्क में व्यंग्य का स्वरूप स्पष्ट नहीं है। न हो तो उनका इस संकलन में प्रकाशित उनका व्यंग्य 'व्यंग्यकार की मौत' पढ़ डालिए। बानगी के रूप में आपके लिए 'कुछ' प्रस्तुत है–

'उसने लिख भी तो व्यंग्य। न कविता लिखी, न कहानी,न उपन्यास। हम तो उसे साहित्यकार ही नहीं मानते।'

'बड़ा कठिन कर्म है कवि-कर्म। मंच की कविता कोई मज़ाक है क्या? श्रोताओं को हंसाने के चक्कर में क्या-क्या पापड़ नहीं बेलने पड़ते। कभी 'एजी-ओजी' करते हैं तो कभी कुत्ते-बिल्ली की बोलते हैं। आजकल तो स्तर भी गिर गया है। पहले लोग अंडे, जूते, चप्पल, टमाटर फेंकते थे। मंहगाई के बाद से श्रोता गालियों और कंकड़-पत्थर से हमारी कविता सराहते हैं।'

'हमारे छोटे शहर में हर छोटा अफसर बड़ा हो जाता है। व्यंग्यकार छोटा हो या बड़ा, उसे तो छोटा ही रहना है। वह साहित्य का सफाई कर्मचारी जो ठहरा।'

मैं जानता हूं कि आपमें गजब का व्यंग्य-बोध है इसलिए गोपाल चतुर्वेदी के उपर्युक्त उद्धरणों की सप्रसंग व्याख्या नहीं कर रहा हूं। आप इतना तो समझ ही गए होंगे कि हास्य-व्यंग्य की बात करते हुए लेखक हमारे समाज की किस गंदगी की ओर संकेत कर रहा है और किस कर्मचारी की स्थिति का वर्णन कर रहा है।

व्यंग्य का महत्वपूर्ण गुण स्पष्टवादिता है। इसी स्पष्टवादिता के चलते वह आत्मव्यंग्य भी करता है। इस तत्व के कारण ही व्यंग्य रचना विश्वसनीय हो पाती है और इसी तत्व का प्रयोग कर व्यंग्यकार प्रच्छन्न पर पूरी शक्ति के साथ आघात करता है, किसी को बख्शता नहीं है। विषयवस्तु के प्रति यदि रचनाकार स्पष्ट है तो यह उसका रचनात्मक गुण है पर यदि रचनाकार अपने संदर्भ में भी स्पष्ट है, किसी प्रकार के भ्रम का मायाजाल नहीं रचता है तथा स्वयं को ही अपना निंदक बना लेता है तो व्यंग्यकार अधिक विश्वसनीय लगता है एवं रचना उसके अनुभव का परिणाम लगती है । आज जब साहित्यक फैशन से वशीभूत तथकथित हास्य-व्यंग्य लेखन एक सरल कार्य मानकर उत्पादित किया जा रहा है तथा शब्द-प्रलाप के माध्यम रचना का भ्रम पैदा किया जा रहा है, ऐसे में गोपाल चतुर्वेदी जैसे हल्की हवा के कुछ झोंके सांत्वना देते हैं कि चमन को संवारने वाले हाथ भी मौजूद हैं।

इस संग्रह में गोपाल चतुर्वेदी की एक महत्वपूर्ण रचना है जो लेखक को भी अपनी श्रेष्ठ रचना लगती है और मुझे भी। (मैं इसे सर्वश्रेष्ठ इसलिए नहीं कह रहा हूं कि गोपाल चतर्वुेदी अभी भी सक्रिय व्यंग्य लेखन कर रहे हैं और जिस अंदाज में कर रहे हैं वह आश्वस्त करता है कि उनका बहुत कुछ श्रेष्ठ आना शेष है। 'भारत में जीव्स' विषय वस्तु और व्यंग्य-शिल्प दोनों ही रूपों में अपनी श्रेष्ठता को प्रमाणित करती है। यह एक ऐसी फैंटेसी है जो हमारे आज के यथार्थ के विभिन्न आयामों को प्रत्यक्ष करती है। स्वतंत्र होने के बावजूद भारतीयों की मानसिक गुलामी, नौकरशाही में अंग्रेजों की आत्मा का भारतीय स्वरूप, प्रजातंत्र में जनसेवकों की सामंतशाही, पूंजी-बल पर सबकी समानता में विश्वास करने का भ्रम देने वाले देश में विशिष्ट होने का गौरव, धर्म के व्यवसायियों की धार्मिक-क्रिड़ाएं, न्याय की रक्षा का भार कंधे पर ढोने का अभिनय करती एवं जनता के मन को निरंतर भयभीत करती भारतीय पुलिस आदि आदि हमारी वर्तमान व्यवस्था के अनेक ऐसे विसंगतिपूर्ण दृश्य हैं जो 'भारत में जीव्स' में चित्रित हुए हैं। इस रचना की फैंटेसी आपके होठों को मुस्कान देती है पर वो बहुत जल्दी ही तेजाबी मुस्कान में बदल जाती है। यदि आपका व्यंग्य- बोध प्रबल है तो यह रचना आपकी नींद उड़ाने में सक्षम है।

कुछ व्यंग्योक्तियां प्रस्तुत हैं–

'इक्कीसवीं सदी में सामन्ती मानसिकता अगर कहीं है तो हिंदुस्तान में शेष है। राज्य चले गए, पर अब राजा- ही- राजा हैं । समाज में परिवार बिखर रहे हैं, पर राजनीति में उनका ही वर्चस्व है।''

'उसने महसूस किया कि वह(आत्मा) लगातार कांपे जा रहा है। जैसे भ्रष्टाचार के डंडे के सामने ईमानदारी कांपे। उसे लगा कि हिंसा की बर्बरता के आगे अच्छे-अच्छों की रूह कांपती है- यह हिंसा पुलिसवालों की हो या धर्म के कठमुल्लों की। . . .वह नहीं जानता था कि हिंसा की खरोंच आदमी ही नहीं, उसकी आत्मा तक पर खून के निशान छोड़ जाती है।'

गोपाल चतुर्वेदी के प्रहारात्मक संदर्भ एक दूसरे से जुड़े होते हैं । वह एक विषय से दूसरे विषय में कब प्रवेश कर जाते हैं पता ही नहीं चलता है । व्यंग्य की यही विशेषता उसे अन्य विधाओं से भिन्न करती है।

गोपाल चतुर्वेदी को समग्रता में पढ़ना एक शिक्षित करने वाला प्रौढ़ अनुभव है जो मानवीय मूल्यों से युक्त एक स्वस्थ सामाजिक जीवन का संस्कार देता है तथा गलत के विरुद्ध संघर्ष की चेतना देता है।

पुस्तक : 'धांधलेश्वर'
लेखक : गोपाल चतुर्वेदी
प्रकाशक: भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड
मूल्य : 400 रुपए

जो घर फूंके

विजय अग्रवाल

मैं इस बात के लिए माफी चाहूंगा कि ज्ञान चतुर्वेदी जी पर बात करने की शुरूआत मैं अपनी बात करने से कर रहा हूं। मुझे इसकी जरूरत नहीं पड़ती, यदि मैंने व्यंग्य नहीं लिखे होते तो इसकी जरूरत तब भी नहीं पड़ती, यदि मैं अब भी व्यंग्य लिख रहा होता। अत: इसकी जरूरत इसलिए पड़ी कि मैंने व्यंग्य लिखा और अब व्यंग्य लिखना बंद कर दिया है।

मेरे साथ ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि मुझे लगने लगा था कि जब सारी परिस्थितियों ही व्यंग्यात्मक हो गई हों, तो व्यंग्य किया किस पर जाये। मुझे यह भी लगा कि जब वाक्य ही नहीं, बल्कि जब शब्द और अक्षर तक के कथ्य के धार को बड़ी चालाकी के साथ भोथरा कर दिया गया हो, तो व्यंग्य किससे लिखा जाए। आज डिमांड और सप्लाई के तहत मास प्रोडक्शन में उत्पादित किए जा रहे व्यंग्यों की शक्ल-ओ-सूरत को देखकर शायद मेरी इस मजबूरी के प्रति थोड़ी सहानुभूति जताई जा सकती है।

मेरे लिए; खासकर मेरे लिए ज्ञान चतुर्वेदी इसलिए अहम् अर्थ रखते हैं, क्योंकि उन्होंने मेरी इन दोनों चिंताओं और सीमाओं को झुठलाया ही नहीं है, बल्कि उन्हें नेस्तनाबूद करके चेखव की उस चुनौती को व्यंग्य में स्थापित किया है कि 'किसी भी विषय पर, यहां तक कि घटिया से घटिया विषय तक पर एक अच्छी से अच्छी कहानी लिखी जा सकती है।' ज्ञान चतुर्वेदी के विषयों का विस्तार इसका प्रमाण है।

अधिकांश व्यंग्यकार विषय और शैली; दोनों ही स्तरों पर रूढ़ हो जाते हैं– काफी कुछ मंचीय हास्य कवियों की तरह। ज्ञान चतुर्वेदी के विषय अपनी ऐसी किसी रूढ़ पद्धति या विषय का मुंह नहीं जोहते। 'जो घर फूंके' संकलन इस बात की खुलेआम घोषणा करता है कि व्यंग्य विषय के मोहताज नहीं हुआ करते। 'राजनीति और प्रेम प्रसंगों' पर व्यंग्य लिखना शायद काफी आसान होता है, इसलिए इनकी भरमार भी है। लेकिन

'जो घर फूंके' की कुल 66 रचनाओं में इन दोनों की संख्या क्रमश: दस और सात ही है, यानी कि कुल का एक चौथाई से भी थोड़ा कम। शेष रचनाएं जीवन के व्यापक-फलक तक फैली हुई हैं– निहायत ही निजी सीमाओं से लेकर ग्लोबलाइजेशन तक। यह देखना काफी रोमांचकारी है कि बकरी, गीदड़, राक्षस, सहमति, भूगोल, पक्षी-विज्ञानी तथा प्रेरणास्रोत जैसे ऊपरी तौर पर सामान्य से दिखने वाले विषयों में भी गंभीर और गहरे व्यंग्य की संभावनाएं बड़ी खूबसूरती और बड़े संतुलन के साथ तलाशी जा सकती है। इस लिहाज से मैं रचना 'सदी के दिन' का यहां विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूंगा।

मेरी दूसरी गलत धारणा भाषा को लेकर थी। भाषा के अर्थ के क्षरण की चिंता आज भाषा विज्ञानियों और रचनाधर्मियों की एक आम चिंता बन गई है। गलती से मैं भी इसका शिकार हो गया था; बावजूद इसके कि यह चिंता गलत नहीं है। ज्ञान चतुर्वेदी जी समझदार निकले। उन्होंने किया यह कि दुश्मन के हाथ के हथियार को छीनकर उससे उसी पर वार करके अपना मकसद पूरा कर लिया। उन्होंने अपनी न तो कोई ठेठ शैली बनाई, और न ही भाषा का कोई दायरा निर्धारित किया। फिर भी ऐसा तो नहीं है कि किसी बेनामी व्यंग्य रचना को पढ़ने के बाद उसकी यह निशानदेही न की जा सके कि यह ज्ञान चतुर्वेदी के कलम की उपज है या नहीं। इनकी अपनी शैली और भाषा की जो पहचान है, वह है 'जैसा तू सुनता है वैसा तू लिख।' मैं उनकी इस अद्‌भुत क्षमता को उनकी रचनाओं में ताप पैदा करने वाला प्रमुख कारक मानता हूं। चूंकि मैंने इसे उनकी रचनात्मक क्षमता का सबसे प्रमुख कारक माना है, इसलिए मैं समझता हूं कि मुझे इसके खुलासे में एक-दो बातें और कहनी चाहिए।

कथ्य को निभा ले जाने के मामले में ज्ञान चतुर्वेदी व्यंग्य के सचिन तेंदुलकर हैं कि कोई भी, कैसी भी बॉल दी जाए, वे बिना आउट हुए उसे ड्राइव कर देंगे। उनकी रचनाओं को पढ़ने के बाद, और एक-दो नहीं बल्कि लगभग-लगभग सभी रचनाओं को पढ़ने के बाद, जिनमें उनके उपन्यास भी शामिल हैं, कम से कम मेरी तो यह धारणा बन ही गई है कि यदि ये कभी आउट भी होंगे, तो स्टम्प के उखड़ने पर तो नहीं ही होंगे।

व्यंग्य के यही तेंदुलकर जब बॉलिंग करते हैं, तो उन्हें मालूम है, और बहुत सूक्ष्म तरीके से मालूम है कि कैसे शब्दों की गुगली फेंककर सामने वाले को चक्करघिन्नी दी जा सकती है। वे जानते हैं कि कैसे साधारण से शब्द और वाक्य में व्यंग्य की धार धराई जा सकती है। इसलिए जब वे 'डूबने' के स्थान पर 'बूड़ने' और 'अगरबत्ती के पैकेट' या 'अगरबत्ती का बंडल' के स्थान पर 'अगरबत्ती का पूरा एक पूड़ा' शब्द का इस्तेमाल करते हैं, तो वह यूं ही नहीं होता। 'कुछ ट्रक भी चाहिए पड़ेंगे, जिन पर हमेशा ही ना जाने कौन-सा - तो - भी माल उतरते - लदते रहना चाहिए।' (बॉस का अड्डा), जैसे वाक्य वर्णन को एक अलग ही तिरछापन दे देते हैं। वस्तुत: इन सबके पीछे एक गहरा व्यंग्य-बोध काम कर रहा होता है। और बस इतने से ही उनकी रचनाएं 'रेडियो मिर्ची' की तर्ज पर 'व्यंग्य मिर्ची' बन जाती हैं।

मुझे लगता है कि ज्ञान चतुर्वेदी जी की व्यंग्य रचनाओं की एक बहुत बड़ी ताकत उनकी 'मासूम गवईपने' में निहित है, जो लगभग उनकी हर रचना में मौजूद हैं– लक्ष्मण के हर कार्टून में मौजूद धोती, चमरौधा जूता और मूछों वाले उस मझौले कद के ग्रामीण की तरह। इसी की डोर को पकड़कर वे अपने चरित्र के गहरे मानस में उतर पाते हैं। यह उनकी अपनी निहायत ही निजी पूंजी है, जिसमें वे किसी भी तथाकथित आधुनिकता, सो काल्ड प्रोग्रेसिवनेव और पोस्ट–मार्डनिज्म आदि को दखल करने नहीं देते।

समय की सघनता को साधने की दृष्टि से ज्ञान चतुर्वेदी जी की गई रचनाएं चमत्कृत कर जाती हैं। इस लिहाज से इस व्यंग्य संकलन की पहली ही रचना 'भूगोल को समझना' तथा बाद की रचनाओं में 'बॉस का अड्डा' एवं 'तुरंत सहमत आदमी' पढ़ी जा सकती हैं।

मुझे लगता है कि रचना–प्रक्रिया के दौरान व्यतीत होने वाले हर पल पर उनका इतना अधिक रचनात्मक नियंत्रण रहता है कि पूरी रचना में झोल की गुंजाइश नही के बराबर रह जाती है। चूंकि पूरी रचना में शब्द–दर–शब्द और फिर वाक्य–दर–वाक्य इस नियंत्रण को बनाए रख पाना बहुत कठिन होता है, इसलिए हमें ऐसी कसावट की अपेक्षा हर रचना से तो नहीं ही करनी चाहिए। फिर भी इनकी अधिकांश रचनाओं के कई–कई अंशों में इस ठोसपन का एहसास किया जा सकता है। कहीं–कहीं यह जरूर लगता है कि समय की इस सघनता के साथ की जाने वाली रचनात्मक यात्रा से उत्पन्न मानसिक तनाव को वे ज्यादा न झेल पाने की स्थिति रचना को थोड़ा कमजोर तो कर ही देती है, और उसमें अपने विषयवस्तु को सामाजिक चिंता से जोड़ने की एक सायास कोशिश भी दिखाई देती है। मुझे नहीं मालूम कि 'क्या उसका भी कोई विकल्प हो सकता है?' लेकिन उस पर थोड़ा विचार किया ही जाना चाहिए।

पुस्तक : 'जो घर फूंके'
लेखक : ज्ञान चतुर्वेदी
प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन
मूल्य : 210 रुपए

आकृति गार्डन, डी–28, नेहरू नगर भोपाल (म.प्र.)

रैली में खोए जूते

अनुराग वाजपेयी उन गिने–चुने युवा व्यंग्यकारों में से हैं जो दिशापूर्ण व्यंग्यात्मक प्रहार में यकीन रखते हैं। 'रैली में खोए जूते' उनका चौथा व्यंग्य संकलन है जिसमें उन्होंने समकालीन राजनीतिक विसंगतियों को विशेष रूप से निशाना बनाया है। संकलन की रचनाओं के शीर्षक इतने स्पष्ट हैं कि अपने कथ्य को बयान कर देते हैं। हाथ कंगन को आरसी क्या और पढ़े लिखे को अंग्रेजी क्या, रचनाओं के शीर्षक चावल के दाने की तरह हाज़िर हैं, जांच लें- रैली में खोए जूते, कुछ करो गुरु अमेरिका, सरकारी कंबल, विधायक की नोटबुक, राजनीति- कुछ मर्म की बातें, दे दो भ्रष्टाचार को मान्यता, तुम कब पढ़ाओगे अध्यापक, एक नागरिक की प्रेस कान्फ्रेंस, आदि। अनुराग वाजपेयी पत्रकार हैं और व्यंग्य के बारे में उनका एक साफ सुथरा दृष्टिकोण है और उसका खुलासा उन्होंने आरंभ में ही कर दिया है। वे कहते हैं– 'आज गुस्से की जरूरत है, उपेक्षा की जरूरत है, सीधे या तिरछे सच को सच कहने की जरूरत है। अब सच्चाई से बचकर निकल जाने वालों पर और झूठ को सच बताकर आस्था और विश्वास से खिलवाड़ करने वालों पर खुल कर प्रहार करने की जरूरत है।'

अनुराग वाजपेयी की सामाजिक दृष्टि स्वस्थ है। वे असांप्रदायिक तथा समतापूर्ण समाज में विश्वास करते हैं। धार्मिक कर्मकाण्ड के माध्यम से अंधविश्वास फैलाने वालों तथा धर्म का दुरुपयोग करने वालों पर निर्दय प्रहार करने से चूकते नहीं हैं। सार्थक व्यंग्य पढ़ने का मन हो तो अनुराग वाजपेयी के इस संग्रह को पढ़ा जा सकता है।

– प्रेज

लेखक : अनुराग वाजपेयी
प्रकाशक : विवेक पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर
मूल्य : 110 रुपए

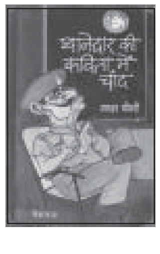

थानेदार की कविता में चांद

प्रसिद्ध व्यंग्यकार धनराज चौधरी के बारे में शंकर पुणतांबेकर का कहना है– 'जवाहर चौधरी अपने ढंग के ऐसे अलग व्यंग्यकार हैं जो लिखते कम हैं, पर उनका कम लिखा ढेर सारा बन जाता है, और ऐसे तीखेपन के साथ बनता है कि जिससे हमारे विचार भंडार में एक विस्फोट–सा हो उठता है। जवाहर के लेखन की विशेषता यह है कि वे विकृतियों के आर–पार देखते हैं और सी.आई.डी. की नज़रों से देखते हैं। तभी उनकी सामान्य वर्णनात्मकता में भी आम व्यंग्यकार की नज़रों से छूट जाने वाली ऐसी छोटी–छोटी सामान्य बातें भी दीख पड़ती हैं, जो मूल विषय की दूरगामी विरूपता का तीखा संकेत देती हैं।' उन खास आलोचकों को जो निंदक की तरह जवाहर चौधरी के आंगन में कुटिया छवा कर रहते हैं, शंकर पुणतांबेकर की बातों में विश्वास तो क्या होगा। ऐसे प्रेमियों से मेरा निवेदन है कि वे ताजा व्यंग्य संकलन, 'थानेदार की कविता में चांद' पढ़ लें और स्वयं निर्णय भी कर लें।

जवाहर चौधरी सार्थक लेखन में विश्वास करते हैं। उनका कहना है- कभी कोई मसला न हो या लीक से हटकर उदास होने का मन हो तो शोक प्रसंग यही बन जाता है कि आजकल प्रसन्न रहने वालों में कितना छिछोरापन कूट–कूटकर भरा है। भलेमानसों की नज़र में ऐसे लोग हास्यास्पद हैं।' जवाहर चौधरी का यह संकलन आपको हरिशंकर परसाई के चांद पर पहुंचे मातादीन की भी याद दिला सकता है। वैसे तो धर्म, नौकरशाही, राजनीति आदि में जहां भी मातादीन हैं वे इस संकलन के माध्यम से आप तक पहुंचेंगे।

लेखक : जवाहर चौ
प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
मूल्य : 120 रुपए

मीटिंग चालू आहे

इंडियन मेडिकल एसोसिएशन के संस्थापक सचिव और म.प्र. में पेशे से स्वास्थ्य अधिकारी प्रेमचंद स्वर्णकार का नवीनतम व्यंग्य संग्रह है 'मीटिंग चालू आहे'। इसका प्रकाशन प्रतिभा प्रतिष्ठान, दिल्ली ने किया है। 'मीटिंग' के पीछे के अंतनिर्हित छद्म उद्देश्यों और सरकारी कार्य प्रणालियों में व्याप्त लाल फीताशाही पर केंद्रित यह पुस्तक तीखे व्यंग्य से परिचित कराती है। इसमें पाठकों का मनोरंजन भी है और वर्तमान की गहरी पीड़ा का साक्षात्कार भी। लेखकीय लगाव को लेकर श्यामसुंदर दुबे का कथन . . . है 'प्रेमचंद स्वर्णकार का अधिकांश लेखन कस्बाई जीवन प्रसंगों से उद्भूत है, इसलिए सामान्य जीवन के रोजमर्रा में घटित संदर्भ ही उनके व्यंग्य लेखन के विषय बनते हैं। ये विषय लेखक की गहरी जीवन-संपृक्ति को ही व्यक्त करते हैं। वे बारीकी से घटनाओं की पड़ताल करते हैं और इनमें गहरी धंसी विडम्बनाओं की जर्राही करने लगते हैं। यहां जर्राही स्वयं ही व्यंग्य की तासीर को मुकम्मल ढंग से प्रस्तुत करती है। इस संग्रह में कुल 32 रचनाएं हैं। अब प्याज खरीदने में आते हैं आंसू, अमीर होता देश हमारा, खादी बड़े काम की चीज है, सस्पैंड होना चाहता हूं मैं, असहाय हिंदी : संदर्भ 'क्रीमी लेयर' का, एक मंत्री का दुख, मीटिंग चालू आहे, हिंदी थोपी नहीं जाएगी, विरात का ढोल आदि रचनाओं में लेखकीय संपृक्ति तथा समकालीन समाज की विसंगतियों को स्पष्टता से देखा जा सकता है। समाज में कार्यालयों में मीटिंग एक 'चेंज' के रूप में लेने की प्रवृत्ति पर रचनाकार ने व्यंग्य किया। वह कहता है, 'मीटिंग के अनेक फायदे जैसे- कार्यालय की एकरस जिंदगी से अफसर ऊबें, इसके पहले ही उन्हें एक मीटिंग रूपी चेंज मिल जाता है और वे ऊबकर अक्षम बनने से बच जाते हैं। व्यंग्य प्रेमियों के लिए यह संग्रह पठनीय है और संग्रहणीय भी।

लेखक : प्रेमचंद स्वर्णकार
प्रकाशक : प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
मूल्य : 175 रुपए

नया साहित्यः नए विमर्श

बैंक की रूटीन लाइफ से बंधे होने के बावजूद साहित्य सृजन के सक्रिय हस्ताक्षर के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। व्यंग्य लेखन में विशेष रूचि होने के साथ-साथ समकालीन साहित्य और विमर्शों पर उनके लेखों का यह संकलन उनके सक्रियता का प्रमाण है। अपने लेखन की आधारदृष्टि को स्पष्ट करते हुए वे यह कहते हैं मेरी निरंतर कोशिश भी रही है कि पुस्तक समीक्षाओं को को ढर्रेअर अकादमिक मानदंडों से बचाते हुए आलोचनात्मक विमर्श एवं नई मुहावरागत शैली से व्याख्यायित करने की पहल की जाए।' कहानी संग्रह, उपन्यास, व्यंग्य, कविता, विविध साहित्य एवं आलोचना उपशीर्षकों के अंतर्गत सभी समीक्षा लेखों को वर्गीकृत कर पाठकों के लिए व्यवस्थित सामग्री दी गई है जिससे उन्हें समकालीन साहित्य को देखने पढ़ने समझने की एक नई दृष्टि मिल सके। इनमें कई प्रवासी भारतीयों द्वारा प्रकाशित रचनाएं भी हैं जिनका मूल्यांकन लेखक ने किया है।

नीलाक्षी सिंह का कहानी संग्रह 'परिंदे के इंतजार-सा कुछ' पर लेखक की राय है 'धार्मिक कट्टरता को प्यार-दोस्ती से परास्त करती उदात्त भावनाओं की दास्तान- 'परिंदे के इंतजार-सा कुछ' बाबरी मस्जिद ध्वंस के बहाने मूल मानवीय सरोकारों को बड़ी तल्खी और संजीदगी से बयां करती है। कहानी संग्रह की महत्वपूर्ण पंक्तियों का अपने मूल्यांकन में राजेन्द्र जी ने यथा स्थान उल्लेख भी किया है जैसे- 'मनुष्य को क्या लाभ होगा यदि वह संपूर्ण संसार पा जाए और अपनी आत्मा खो दे।' साहित्य और विमर्श से वास्ता रखने वालों के लिए यह पुस्तक पूरी तरह उपयोगी साबित होगी।

लेखक : राजेन्द्र सहगल
प्रकाशक : संजय प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य : 350 रुपए

सफेद जनतंत्र (कविता संग्रह)

पेशे से अध्यापक और स्वभाव से सर्जक शिवनारायण जी का नया काव्य संग्रह है, 'सफेद जनतंत्र।' इनकी कविताओं में हृदय और मस्तिष्क का बेहतरीन समन्वय मौजूद है। दूसरे शब्दों में कहें कि इनकी कविताओं में विचार और संवेदना का बेहतर संतुलन है। शहरी समपत्ति और ग्रामीण संस्कृति दोनों ही कवि को रचनात्मक दृष्टि प्रदान करते हैं। शहरी सभ्यता को कवि ने विचार वाहिका के रूप में स्वीकार किया तो ग्रामीण संस्कृति का संघर्ष संवेदना के रूप में। इस संग्रह में 38 कविताएं हैं। 'राग गणतंत्र' और 'छंद छंद स्वच्छंद' शीर्षक से संग्रह में दो भाग किए गए हैं। कवि इस संग्रह में अपने समय की छवियों, घटनाओं, समस्याओं को अपनी गहन अनुभूति बनाता है। किसी दल या वाद से असंबद्धता और प्रगतिशील विचारों का मानव हित में उपयोग करने की दृष्टि संपन्नता शिवनारायण को एक अलग तरह की पहचान देता है। 'सफेद जनतंत्र' विसंगतियों पर किया गया प्रहार है जिसकी अनुगूंज पाठक रचना में महसूस करता है। यह कृति मनुष्य की मूलभूत जरूरतों को पूरा न करने वाली व्यवस्था पर व्यंग्य करती है। पहली ही कविता जनतंत्र का अंत धूमिल की कविता 'रोटी और संसद' की याद दिलाता है- 'गन'- तंत्र के हाथों जहां / गणतंत्र मौन है / ये सभासद सारे कौन हैं? तीस जनवरी दो हजार पांच ईस्वी की यह रचना समकालीन की भयावहता को व्यंजित करनेके लिए पर्याप्त है। जो अपने परिवेशगत यथार्थ के प्रति सजग, सावधान है और सभी गतिविधियों को आम आदमी के पक्ष में खड़ा होकर देख रहा है। जनतंत्र, संकल्प, भूखा भारत, विश्वासों की दुनिया, संस्कृति शरमा रही है, नदी नदी धूप, बचपन हुआ नीलाम, रिश्ते हुए बाजार, तिरंगा, बाबूजी, बच्चों का खेल आदि रचनाएं इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कविताएं हैं।

लेखक : शिवनारायण
प्रकाशक : विशाल पब्लिकेशन, पटना
मूल्य : 125 रुपए

हिंदी वर्ल्ड में हमारे चिंतक जी

अध्यापक-व्यंग्यकार डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी की नवीनतम कृति है– 'हिंदी वर्ल्ड में हमारे चिंतक जी।' इसका प्रकाशन जवाहर पुस्तकालय मथुरा ने किया है। पुस्तक में कुछ बीस महत्वपूर्ण रचनाएं संकलित हैं। बालेन्दु शेखर तिवारी व्यंग्य के क्षेत्र में एक जाना-पहचाना नाम है। यह उनका छठा व्यंग्य संग्रह है। इसमें व्यंग्यकार ने साहित्य, समाज, राजनीति और संस्कृति के परिवेशगत यथार्थ की विसंगतियों से पाठकों को परिचित कराया है। व्यंग्य की चिंताओं को नई धार देने में, व्यंग्य भाषा को नई छवि प्रदान करने में, व्यंग्य कर्म को शास्त्रीय औदात्म प्रदान करने में तिवारी जी का योगदान महत्वपूर्ण है। रांची विश्वविद्यालय, झारंझड स्थित हिंदी विभाग में वरिष्ठ प्रोफेसर डॉ. तिवारी ने व्यंग्य, लघुव्यंग्य, कविता, एकांकी और व्यंग्यलोचना के क्षेत्र में गंभीर लेखन किया है। प्रस्तुत संग्रह उम्र के इस दौर में भी उनकी प्रतिभा और लेखनी की धार का प्रमाण है। कुछ रचनाएं लेखकीय जीवन के आत्मकथ्य से उपजी हैं और कुछ हिंदी कविताओं या गीतों की पंक्तियों के पैरोडी के रूप में। 'चाटुकारिता की चिकनी डगर' में झंडालाल जी के माध्यम से समाज के एक यथार्थ को रचनाकार ने पाठकों के सामने रखा है। हिंदी अध्यापन का प्रभाव रचनाकार की रचनाओं में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। हिंदी कविता की लोकप्रिय पंक्तियों का प्रयोग देखा जा सकता है। वर्तमान व्यवस्था में विश्वविद्यालय का कुलपति होने के बाद जो समस्याएं आती हैं उन्हें देखकर लेखक 'कुलपति न होने के पक्ष में' रचना में कहता है– 'कोई भी कुलपति बन जाए, सहज सम्भाव्य है। लेकिन मुझे तो माफ ही कीजिए।' व्यंग्य के क्षेत्र में यह संग्रह पाठकों के बीच पठनीयता बनाए रखने में सक्षम साबित होगा। निश्चय ही इस कृति के लिए रचनाकार साधुवाद के हकदार हैं।

लेखक : बालेन्दु शेखर तिवारी
प्रकाशक : जवाहर पुस्तकालय, मथुरा (उ.प्र.)
मूल्य : 150 रुपए

नीम का मीठा स्वाद

'नीम का मीठा स्वाद' संतोष कुमार तिवारी का अद्यतन व्यंग्य संग्रह है। इस रचना में पचहत्तर व्यग्य रचनाएं तथा उनतीस लघुकथाएं संकलित हैं। लेखक उन प्रवृत्तियों पर चोट करने का हिमायी है जिनसे समाज में हीन या नकारात्मक दशा को प्रोत्साहन मिलता है। लेखक की अपने ऊपर हंसने और कशाघात के माध्यम से अपनी बात कहने को कौशल उसके लेखकीय सहास का परिणाम है। डॉ. संतोष अपने दायित्व से, परिवेश से कन्नी नहीं काटते बल्कि उसमें गहरे उतरते जाते हैं यह प्रवृत्ति इस संग्रह में भी दिखाई पड़ती है।

साहित्य का लालू, बिना पुस्तक पढ़े समीक्षा लिखने के गुरु-मंत्र, एक प्रयोगवादी कवि का प्रेम-प्रसंग, महाविद्यालय पुराण की भूमिका-लेखन: एक प्रतिक्रिया, कविसम्मेलन के बहाने, बाथरूम की फिसलन, साहित्यिक बेईमानी: कुछ अंतरंग पहलू, एक साहित्यिक भाषण, कविता, मरीज और आदमियत, कविता के बहाने, साहित्य का चौधरी आदि रचनाएं साहित्य जगत में व्याप्त मठों और मठाधीशों की कलई खोलते हैं।

'साहित्य का चौधरी' रचना में साहित्यिक चौदराहट करने वालों की खबर ली गई है 'उनके पास नपे-तुले दो दर्जन शब्द हैं। किसी ने कहा 'हथौड़ा' वे तुरंत चिल्लाए 'साथ में हंसिया क्यों भूल गए?' किसी ने कहा 'द्वंद्व' वे बोले 'अंतर्द्वंद्व' नहीं, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद कहो। किसी ने कहा, 'संघर्ष' उन्होंने कहा 'हां, ठीक कहते हो, वर्ग संघर्ष।' इसी तरह इतिहासदृष्टि, पूंजीवादी व्याकरण, सामंती शोषण, मानसिक गुलामी की उनकी परिभाषाएं और व्याख्याएं हैं। तिवारी जी के अधिकांश व्यंग्य और वक्तव्य अपनी वैयक्तिकता को त्यागकर सार्वजनिक हो जाते हैं। यह इनके रचनाओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। पाठक के संग्रह पठनीय है और संग्रहणीय भी।

लेखक : संतोष कुमार तिवारी
प्रकाशक : भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली
मूल्य : 350 रुपए

परदे के पीछे

'परदे के पीछे' बहुआयामी प्रतिभा के धनी प्रेमविंज का दूसरा हास्य-व्यंग्य संग्रह है। इसमें लेखक ने जीवन की विसंगतियों, व्यवस्था, विद्रूपताओं से पाठकों को रूबरू कराया है। इसके हास्य-व्यंग्य संग्रह में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक विसंगतियों के साथ-साथ आधुनिकता और महानगरीय सभ्यता के अमानवीय पक्षों को भी रेखांकित किया गया है। इस कृति के अधिकांश पात्र समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि चरित्र है। इनकी रचनाओं में आत्म व्यंग्य के माध्यम से सामने वाले की विसंगतियों को दिखाने की कला व्याप्त है। ये विसंगतियां हमें बार-बार आत्ममंथन करने को बाध्य करती हैं। मैं जिंदा हूं, हिंदी डे, बगुला भक्त बने, चिट्ठी एक सिफारिश की, बिन बुलाए मेहमान, कौन जाने पीर पराई, उपहार में सिर्फ प्याज लाए, मगरमच्छ के आंसू, मैं कौन सी पार्टी में हूं, नेताजी का अनशन आदि रचनाएं विषय चयन और प्रस्तुति में पाठक को प्रभावित करती हैं। अपने ऊपर व्यंग्य करते हुए कथ्य को पाठकों तक सम्प्रेषित करना कोई प्रेम विज से सीखे। यह विशेषता अन्य रचनाकारों से इन्हें अलग करती है। डॉ. लालचंद गुप्त 'मंगल' का यह कथन बिल्कुल ठीक है– 'वे तमाचा तो अपने मुंह पर मारते हैं लेकिन उंगलियों के निशान सामने वाले के चेहरे पर दिखाई देते हैं। प्रेम विज के व्यंग्य वास्तव में हमें अपने गिरेबान में झांकने का मौका देते हैं।' इस दृष्टि से इनकी रचनाएं बार-बार पढ़ी जाने की मांग करती हैं। समकालीन परिदृश्य और व्यंग्य की परंपरा का स्वाभाविक विकास हमें प्रेम विज के इस व्यंग्य संग्रह में देखने को मिलता है। व्यंग्य जगत में यह संग्रह जीवंतता के साथ पढ़ा जाएगा। निष्कर्ष रूप में यह कहा जाना चाहिए कि प्रेमविज ने इस संग्रह द्वारा समाज को आईना दिखाने का काम सफलतापूर्वक किया है।

लेखक : प्रेम विज
प्रकाशक : नवीन साहित्य सदन, चंडीगढ़
मूल्य : 150 रुपए

पत्रकारिता की उपविधा

समीक्षात्मक पत्रकारिता जनार्दन मिश्र की नई पुस्तक है। इस पुस्तक में विभिन्न विधाओं की पुस्तकों पर लिखी गई समीक्षात्मक टिप्पणियां एवं लेख संकलित हैं। संवेदना और जीवनानुभव उनकी रचनाओं की मुख्य विशेषता है। वह अपने मूल स्वरूप से बाहर नहीं निकल पाता। लेकिन यह लेखक की कमजोरी नहीं, बल्कि विशेशता है। मिश्रजी की समीक्षा दृष्टि जनधर्मी है। इसलिए ये संकलित समीक्षाएं संबंधित पुस्तकों को समझने की कुंजी थमा देती हैं। इस भागमभाग की जिंदगी में किसी के पास इतना वक्त नहीं है कि वह मोटी पुस्तकों को पढ़कर यह धारणा बना सके कि संबंधित पुस्तक किस कोटि की है। इस तरह की पुस्तक से पाठकों को एक साथ कई पुस्तकों के बारे में जानने का अवसर मिल जाता है, और समीक्षक की दृष्टि से ही सही, पुस्तकों के प्रति एक धारणा भी बन जाती है। प्रस्तुत कृति में कुल सात भाग हैं- कविता और गजल संग्रह, कहानी संग्रह, उपन्यास, शोध-ग्रंथ, जीवनी, व्यंग्य संग्रह, विविधा। इन सातों भागों में कुल जमा 152 हिंदी और अंग्रेजी (अनूदित) समीक्षाएं संकलित की गई है। चर्चित- अचर्चित सभी तरह के रचनाकारों की श्रेष्ठ / महत्वपूर्ण कृतियों की समीक्षा प्रस्तुत किया गया है। इन समीक्षाओं में उसकी दृष्टि अंतर्बाह्य संदर्भों के मूल्यांकन की ओर अधिक है जिसके चलते वह कहीं ऐतिहासिक, कहीं सामाजिक तो कहीं वैज्ञानिक है।

हालांकि आज की अधिकांश समीक्षाएं और मूल्यांकन मुंहदेखी और अर्थ नियोजित होती हैं, इसलिए अब हिंदी के नामधारी भी मुंह देखी समीक्षाएं करने लगे हैं।

— डॉ. राहुल

लेखक : जनार्दन मिश्र
प्रकाशक : नटराज प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य : 595 रुपए

आदमी और बूट

'आदमी और बूट' के. एल. गर्ग द्वारा रचित नया व्यंग्य संग्रह है। के.एल. गर्ग, परसाई, शरदजोशी की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले व्यंग्यकारों में गिने जाते हैं। इनके व्यंग्य समय के विद्रूप को ईमानदारी से प्रस्तुत करते हुए पाठकों के साथ संवाद करते चलते हैं। ये व्यंग्य में सायास हास्य के समावेश को ठीक नहीं मानते। लेखक बुराइयों पर सावधानी से प्रहार करता है। 'इनकी व्यंग्य रचनाएं एक तरह से विसंगतियों का कोलाज है।' मशीनीकरण के वर्तमान युग में इंसान की कीमत 'एक बूट' से भी कम रह गई है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मूल्य धराशायी हो गए हैं। इन्हीं चिंताओं का जबाब है 'आदमी और बूट'। इस संग्रह का उद्देश्य रचनाकार के सामने बिलकुल स्पष्ट है। लेखन आरंभ में ही 'आदमी के हक़ में' शीर्षक के अंतर्गत लिखा है— 'ऐसे में व्यंग्यकार क्या करे? वह उन विसंगतियों, विद्रूपताओं और लोलुपताओं को नंगा करे जिनके कारण श्रेष्ठतम मनुष्य की ऐसी हालत हुई है। वह किसी वाद का भोंपू न बने, लक्ष्मी-पितामाओं का ढंढोरची न बने, व्यंग्यकार को ऐसी व्यवस्था अपनी कलम से पैदा करनी होगी। मनुष्य, मनुष्य बना रहे, पशु या मशीन न बने, ऐसे हालात व्यंग्यकार को पैदा करने होंगे।' समकालीन आहत समय को समझने के लिए के.एल. गर्ग का यह व्यंग्य संग्रह एक महत्वपूर्ण प्रयास है। अपने असरदार व्यंग्य के बहाने लेखक ने इस संग्रह द्वारा जो सामाजिक परिवर्तन में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करने की कोशिश की है, उसके लिए उसे साधुवाद दिया जाना चाहिए।

लेखक : के.एल. गर्ग
प्रकाशक : एरागॉन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीव्यूटर्स
मूल्य : 150 रुपए

ऐसे थे तुम

'ऐसे थे तुम' कमलेश भारतीय की लघुकथाओं का अद्यतन संग्रह है। इसे अमन प्रकाशन, हिसार, हरियाणा ने प्रकाशित किया है। कमलेश भारतीय पेशे से पत्रकार हैं और दैनिक ट्रिब्यून, हिसार के लिए वरिष्ठ स्टाफ रिपोर्टर के रूप में सेवारत हैं। एक जिम्मेदार गृहस्थ, कर्मनिष्ठ पत्रकार और सर्जक-साहित्यकार का तिहरा दायित्वबोध कमलेश की प्रतिभा को निखारकर एक प्रतिभाशाली रचनाकार साबित करता है। इस संग्रह की लघुकथाओं में व्याप्त रचना-संसार रोमांस और यथार्थ के दोनों छोरों से गुजरते हुए चलता है। कमलेश की कहानियां रिश्तों में रिसते दर्द के बीच करुणा की अंतर्धारा और व्यंग्य की कसक से जन्म लेती हैं। जमीनी, तल्खी को बयान करती ये लघुकथाएं थोड़े में बड़ी बात कह डालती हैं। इस दृष्टि से यह संकलन 'गागर में सागर' की उक्ति को चरितार्थ करता है। कमलेश इस संग्रह में लोकभाषा के शब्दों के प्रयोग द्वारा रचना को जीवंतता प्रदान करते हैं। भाषिक चेतना के साथ-साथ विषय चयन भी इस कृति को छोटे आकार के बावजूद महत्वपूर्ण साबित करता है। समाज में व्याप्त विसंगतियों का एक नमूना 'अपना-सा दुख' रचना की इन पंक्तियों में देख सकते हैं। लड़कों के भाव दिन पर दिन चढ़ते जा रहे हैं। / क्या मतलब? / अभी कुछ दिन हुए चालीस हजार रुपए मांग रहे थे, अब . . ./ —अब क्या हुआ? / पचास-साठ हजार की बातें करने लगे। / —मारो स्सालों को के छित्तर भिगो-भिगो के।' सामाजिक विद्रूपता पर लेखकीय प्रतिक्रिया का यह एक खास अंदाज़ है जो कमलेश को एक अलग पहचान देते हैं। छोटी-छोटी पंक्तियों से रची कुछ रचनाएं तो कविता की तरह आनंद देती हैं। कुल मिलाकर छोटे आकर बावजूद यह रचना पाठकों के लिए पठनीय और संग्रहणीय है। ऐसी बेहतरीन कृति के लिए कमलेश भारतीय का साधुवाद।

लेखक : कमलेश भारतीय
प्रकाशक : अमन प्रकाशन, हिसार (हरियाणा)
मूल्य : 50 रुपए

शीला सिद्धांतकर स्मृति पुरस्कार समारोह

11 अप्रैल 2008 को राग विराग कला केंद्र वार्षिक उत्सव के अवसर पर 'शीला सिद्धांतकर स्मृति पुरस्कार समारोह' का आयोजन किया गया। यह पुरस्कार पिछले तीन वर्षों से शीला जी की स्मृति में दिया जा रहा है। शीला सिद्धांतकर स्वयं एक सशकत कवयित्री थीं। उनकी कविताओं में समाज की विसंगतियां, भोथरी राजनीति और स्त्री विमर्श का सशक्त स्वर देखा जा सकता है। सन् 2005 में कैंसर से जूझते हुए हंसते-हंसते जीवन को अलविदा कह देने वाली शीला जी के चार कविता संग्रह प्रकाशित हैं- औरत सुलगती हुई, कहो कुछ अपनी बात, कविता की तीसरी किताब तथा कविता की आखिरी किताब। शीला जी की यादगार रूप में प्रतिवर्ष किसी एक ऐसे कवि को सम्मानित किया जाता है जिसकी कविताओं में स्त्री-चेतना का स्वर मुखरित हो। गत दो वर्षों में क्रमशः नीलेश रघुवंशी तथा पवन करण को उनकी कविताओं के लिए सम्मानित किया गया। इस वर्ष यह पुरस्कार कवयित्री निर्मला पुतुल को उनके कविता संग्रह 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' को प्रदान किया गया।

'राग विराग कला केंद्र' की ओर से इस वर्ष एक नया पुरस्कार आरंभ किया गया, 'अपराजिता स्मृति सम्मान'। यह सम्मान स्त्री सरोकारों से जुड़ी गद्य पुस्तक के लिए आरंभ किया गया है। इस वर्ष प्रथम अपराजिता स्मृति सम्मान कात्यायनी को उनकी गद्य पुस्तक 'कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत' के लिए दिया गया। दोनों पुरस्कारों की निर्णायक समिति के सदस्य थे, प्रो. नित्यानंद तिवारी (अध्यक्ष), डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, शिवमंगल सिद्धांतकर, रेखा अवस्थी, अजय तिवारी (सचिव), अरविन्द जैन तथा अनामिका।

हिंदी भवन के सभागार में आयोजित इस समारोह की मुख्य अतिथि थीं वरिष्ठ रचनाकार ममता कालिया तथा अध्यक्ष थे श्री राजेन्द्र यादव।

दीप-प्रज्ज्वलन के बाद अरविंद जैन ने औपचारिक रूप से सभी अतिथियों का स्वागत किया। शिवमंगल सिद्धांतकर ने अपने आरंभिक वक्तव्य में कहा कि कवयित्री शीला सिद्धांतकर स्मृति पुरस्कार रिश्ते की यादगार ही नहीं है बल्कि नारी आंदोलन का नया औजार है; क्योंकि शीला सिद्धांतकर 'परचम बने महिलाएं' का इजहार आजीवन करती रहीं, उसे हम मशाल की तरह आगे बढ़ाना चाहते हैं जिसके लिए नये हाथों की खोज के लिए ही हम आयोजन करते हैं और अपराजिता पुरस्कार भी मेरी दृष्टि में एक बहाना है, नारी अधिकार आंदोलन को बढ़ाना ही मुख्य निशाना है। पुरस्कार समिति के सचिव प्रो. अजय तिवारी ने पुरस्कारों का परिचय दिया। दोनों सम्मानित महिला रचनाकारों के संबंध में क्रमशः कवि लीलाधर मंडलोई (महानिदेशक, दूरदर्शन) तथा कवयित्री कविता सिंह ने अपने विचार रखे। मंडलोई जी ने निर्मला पुतुल पर बोलते हुए कहा कि निर्मला पुतुल की कविताओं में आत्मसंघर्ष दिखता है। वे मूल रूप से संथाली कवयित्री हैं लेकिन उनकी हिंदी में अनूदित कविताओं में उनकी मूल आत्मा सुरक्षित है। उन्होंने निर्मला पुतुल को 'बेसिकली पोलिटिकल पोयट' मानते हुए कहा कि हाशिए पर जी रहे आदिवासी समाज की बिलकुल एक अलग दुनिया है; जो कविता इस अलग दुनिया से आती है वह निर्मला पुतुल के यहां आती है। पत्र का पाठ रचनाकार वीरेन्द्र जैन ने किया। अनामिका ने शीला जी की चुनिंदा कविताओं का पाठ करके उनकी स्मृति को ताजा कर दिया।

कात्यायनी पर कवयित्री सविता सिंह ने अपने विचार रखते हुए कहा कि एक कवयित्री के रूप में वे कात्यायनी से प्रभावित हैं। उनकी पुरस्कृत पुस्तक 'कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत' समय-समय पर लिखे गए लेखों का संग्रह है जिन्हें पुस्तक में संकलित किया गया है। पुस्तकाकार रूप में नहीं लिखे जाने के कारण ही उनके इन लेखों में पुनरावृत्ति है। उन्होंने कहा कि अगर आप संपूर्ण मार्क्सिस्ट हैं तो वहां नारीवादी चिंतन का अपना एक फ्रेमवर्क है जिसको समझना, समझाना और पचा पाना सबके लिए मुश्किल है। उन्होंने स्वायत्त नारीवादी चिंतन पर बल दिया। कात्यायनी से संबंधित प्रशस्ति पत्र का पाठ कवयित्री अनामिका ने किया। दोनों रचनाकारों को मुख्य अतिथि श्रीमती ममता कालिया ने प्रतीक चिन्ह द्वारा सम्मानित किया। प्रशस्ति पत्र समारोह के अध्यक्ष श्री राजेन्द्र यादव द्वारा प्रदान किए गए। दोनों रचनाकारों को सम्मान की धनराशि भी प्रतीक के रूप में दी गई। कवयित्री निर्मला पुतुल ने शीला सिद्धांतकर की स्मृति को नमन करते हुए अपने सम्मान को आदिवासी समाज का सम्मान मानते हुए आभार व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि 'शीला जी की कविताओं से मेरा परिचय तीन-चार साल पहले हुआ था। उनकी कविताओं को संबंल के रूप में लेती रही हूं। जब भी कलम उठाऊंगी तब-तब उनकी कविताओं से प्रेरणा लेती रहूंगी।' उन्होंने अपनी चुनिंदा कविताओं का पाठ करके सभी को आंदोलित कर दिया।

कात्यायनी ने अपनी बात रखते हुए कहा कि मेरा गद्य सामाजिक चिंतन से युक्त है। उसमें खंडित स्वप्नों के साथ जीते-जागते मध्यवर्ग के लोग हैं, बेरोजगार युवा हैं। उसमें विचार तत्व प्रमुख हैं, शैलीगत सौष्ठव कम है। गद्य की भाषा और शिल्प के मामले में एकदम अनाड़ी हूं। लेकिन यह गद्य आम आदमी की समस्या, विसंगत समाज और राजनीति का छटपटाता गद्य है। मैं डंके की चोट पर कहती हूं कि मैं कम्युनिस्ट हूं। नारीवादी हूं ही नहीं। स्त्री प्रश्न को वर्गीय नजरिए से देखने का भटकाव मुझमें है ही नहीं। उन्होंने अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि आम जन की लड़ाई लड़ने वाला वामपंथी भी अब प्रतिष्ठा, पद और सुविधा के रंग में रंगने लगा है।

मुख्य अतिथि ममता कालिया ने दोनों पुरस्कारों की अनुशंसा के बारे में कहा कि ये दोनों पुरस्कार रचनाकारों को सही समय पर दिए गए हैं। पुरस्कार या सम्मान ऐसे समय में ही दिए जाने चाहिए जब रचनाकार युवा हो और उनमें चिंतन का उजाला हो। दोनों रचनाकार इस दृष्टि से प्रशंसनीय हैं। निर्मला पुतुल की कविताओं के संदर्भ में उन्होंने कहा कि उनकी कविताओं में व्यक्ति जंगल के बीच हो या जनता के बीच में, वे पूरी संवेदना के साथ लिखती हैं। ममता

कालिया ने कात्यायनी को बीच का रास्ता अपनाने की सलाह दी। कात्यायनी के संदर्भ में बात करते हुए उन्होंने कहा कि एन.जी.ओ. साहित्यकार कितना भी एक्टिविस्ट क्यों न बने साहित्य कभी भी समाज का पूरी तरह एन.जी.ओ. हो नहीं सकता। राजेन्द्र यादव द्वारा अध्यक्षीय वक्तव्य के बाद समारोह के अंत में पुतीना शर्मा और उनके साथियों द्वारा शीला सिद्धांतकर की कविताओं पर आधारित 'परचम बने महिलाएं' गैरपरम्परागत कथक नृत्य नाटिका की प्रभावशाली प्रस्तुति की गई और राग विराग कला केंद्र की छात्राओं ने परम्परागत कथक प्रस्तुति की। कार्यक्रम का संयोजन एवं संचालन डॉ. आशा जोशी ने किया।

'राही दम्पति' पर विशेषांक

कल्पांत, अक्षरम् तथा अनुभव प्रकाशन के संयुक्त तत्वावधान में बालस्वरूप राही व पुष्पा राही पर केंद्रित व मुरारीलाल त्यागी द्वारा संपादित 'कल्पांत' पत्रिका के विशेषांक पर चर्चा तथा सुप्रसिद्ध कवयित्री पुष्पा राही के गीत संग्रह 'स्वयं' के लोकार्पण का आयोजन दिनांक 31 मई 2008 को हिंदी भवन, दिल्ली में किया गया। डॉ. रामदरश मिश्र की अध्यक्षता में हुए इस आयोजन में मुख्य अतिथि सुप्रसिद्ध उद्योगपति व साहित्यकार रामनिवास जाजू के अतिरिक्त सर्वश्री प्रदीप पंत, डॉ. शेरजंग गर्ग, निशा भार्गव, मुरारीलाल त्यागी, श्याम निर्मम व नरेश शांडिल्य ने अपने विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम का संचालन डॉ. गोविंद व्यास ने किया और धन्यवाद ज्ञापन अक्षरम् के अध्यक्ष अनिल जोशी ने किया।

इस अवसर पर बोलते हुए कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ. रामदरश मिश्र ने कहा कि बालस्वरूप राही व पुष्पा राही पर केंद्रित कल्पांत के विशेषांक से राही दम्पति को समझने में उनके प्रशंसकों को और अधिक सहायता मिलेगी। उन्होंने राही जी पर बोलते हुए कहा कि राही का व्यक्तित्व जीवंतता से भरपूर है जोकि उनके लेखन में भी झलकता है। पुष्पा राही के गीतों पर अपने विचार रखते हुए उन्होंने कहा कि पुष्पा राही के गीत जीवन से संवाद करते नजर आते हैं।

कार्यक्रम में हिंदी प्रेमियों के अतिरिक्त अनेक गणमान्य साहित्यकार मौजूद थे जिनमें डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, डॉ. अरविंद कुमार, डॉ. दयाप्रकाश सिन्हा, डॉ. वीरेन्द्र प्रभाकर, डॉ. कुंवर बेचैन, प्रो. सादिक, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, डॉ. देवेन्द्र आर्य, राधेश्याम बंधु व देहरादून से पधारे अशोक आनंद प्रमुख हैं।

शशिकांत, अक्षरम्, नई दिल्ली

डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी को व्यंग्यश्री सम्मान

कोटा साहित्यिक संस्था 'काव्य मधुबन' द्वारा होली की पूर्व संध्या पर प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी 'फुहार' कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम का यह लगातार 9वां वर्ष था। 'फुहार' कार्यक्रम में प्रतिवर्ष राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त किसी एक व्यंग्यकार को 'व्यंग्यश्री' सम्मान से सम्मानित किया जाता है। अभी तक 'व्यंग्यश्री' मधुबन सम्मान हरीश नवल, बंकट बिहारी पागल, डॉ. सूर्यबाला, प्रेम जनमेजय, विष्णु नागर, डॉ. शेरजंग गर्ग को प्रदान किया जा चुका है।

वर्ष 2008 का 'व्यंग्यश्री' सम्मान प्रख्यात व्यंग्यालोचक एवं व्यंग्यकार डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी, प्रो. रांची विश्वविद्यालय को प्रदान किया गया। सम्मान स्वरूप श्रीफल, प्रशस्ति पत्र, शाल, स्मृति चिन्ह देकर डॉ. तिवारी को कार्यक्रम के मुख्य अतिथि राकेश जायसवाल, ए.डी.एम. (प्रशासन) तथा अध्यक्ष डॉ. दयाकृष्ण विजय ने सम्मानित किया।

इस अवसर पर डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी ने कहा कि व्यंग्य की स्थिति हिंदी में अन्य भाषाओं की तुलना में ज्यादा अच्छी है। व्यंग्य का भविष्य काफी उज्ज्वल है। आज व्यंग्य को भी विकृति, बाजारीकरण, चुटकुलेबाजी से बचाने की आवश्यकता है। आज व्यंग्य स्तम्भ लेखन अधिक हो रहा है। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे डॉ. दयाकृष्ण विजय ने काव्य में व्यंजना के महत्व पर प्रकाश डाला और संस्था के सतत् आयोजनों की प्रशंसा की। संस्था अध्यक्ष अतुल चतुर्वेदी ने इससे पूर्व डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय देते हुए डॉ. तिवारी के व्यंग्य एवं समीक्षा कर्म पर प्रकाश डाला। स्वागत भाषण संस्था संरक्षक पुरुषोत्तम पंचोली ने दिया। सचिव अशोक हावा ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

'कला, साहित्य और समय' का लोकार्पण

प्रसिद्ध साहित्यकार, डॉ. रामदरश मिश्र ने पिछले दिनों (23 जनवरी, 2008) नई दिल्ली के उत्तम नगर में साहित्यिक संस्था 'आस्वाद' द्वारा आयोजित एक समारोह में चर्चित समालोचक एवं 'नई धारा' के संपादक डॉ. शिवनारायण की सद्यः प्रकाशित आलोचनात्मक पुस्तक 'कला, साहित्य और समय' का लोकार्पण करते हुए कहा कि डॉ. शिवनारायण उन लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो क्रांतिकारिता-आंदोलनधर्मिता का दावा किए बिना ही बहुत कुछ एकांत

भाव से किए चलते हैं। वास्तव में ये प्रगतिवाद के कथित फ्रेम में रहे बगैर भी प्रगतिशील समाज के मुखर प्रवक्ता हैं। उन्होंने कहा कि आज के नृशंस विश्वबाजारवाद के दौर में शिवनारायण बहुत दिलेरी से प्रतिरोधी जनसंस्कृति की धारा का संवर्द्धन करने में लगातार रचनारत दिखते हैं, इसलिए किसी वाद विशेष से बंधे बगैर भी इनकी रचनाएं बहुत कुछ बोलती हैं। उन्होंने कहा कि डॉ. शिवनारायण का धारदार ललित गद्य सदैव मुझे प्रभावित करता रहा है, क्योंकि इनके लेखन में जनतांत्रिक मूल्यों की संरक्षा का सहज बोध है।

समारोह की अध्यक्षता सुप्रतिष्ठ व्यंग्य लेखक डॉ. रमाशंकर श्रीवास्तव ने की, जबकि संचालन करते हुए कवि-पत्रकार निविड़ ने डॉ. शिवनारायण का लेखकीय परिचय देते हुए कहा कि इन्होंने अब तक कविता, आलोचना सहित विविध विधाओं में 23 पुस्तकों की रचना की है, जिसमें इनकी बहुआयामी रचनाशीलता का उद्घोष है।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में प्रसिद्ध उपन्यासकार डॉ. भगवतीशरण मिश्र ने डॉ. शिवनारायण के प्रेरक व्यक्तित्व की विशिष्टताओं को उद्घाटित करते हुए कहा कि शिवनारायण शिष्ट गद्यकार हैं, किंतु मुझे ये एक कवि के रूप में अधिक प्रभावित करते हैं। अपने 'काला गुलाब' तथा 'सफेद जनतंत्र' जैसे कविता-संग्रह के माध्यम से इन्होंने अपने जटिल समय के निर्मम यथार्थ को जिस संवेदनशीलता से रूपायित किया है, वह काफी महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि शिवनारायण के गद्य लेखन में जो ऊंचाई है, वह बहुत कम लोगों में है।

चर्चित कवि-पत्रकार राधेश्याम तिवारी ने इस अवसर पर डॉ. शिवनारायण की रचनाशीलता पर टिप्पणी करते हुए कहा कि लोकार्पित पुस्तक के निबंधों को पढ़ते हुए लगता है कि ये मंजे हुए रचनात्मक गद्य लेखक हैं। इनके लेखन में धर्मनिरपेक्ष जीवनमूल्यों का तार्किक विश्लेषण है, जो गहरे प्रभावित करता है। 'अक्षरम संगोष्ठी' के संपादक एवं कवि नरेश शांडिल्य ने कहा कि शिवनारायण जी स्वयं ही लेखक नहीं हैं, बल्कि ये 'नई धारा' के संपादक के माध्यम से लेखक बनाते भी हैं। इनके व्यक्तित्व की रचनाशीलता प्रेरित करने वाली है।

अंत में अपना लेखकीय उद्गार व्यक्त करते हुए डॉ. शिवनारायण ने कहा कि लोकार्पित पुस्तक में कला, साहित्य और सामयिक विषयों से संबंधित 25 निबंधों के ब्याज से समकालीन साहित्य की संस्कृति पर विमर्श किया जा सकता है। उन्होंने लोकार्पण समारोह में आए साहित्यकारों के स्नेह के प्रति अपना आभार भी जताया।

'फिर भी रहेगी दुनिया' का लोकार्पण

दिनांक 27 मार्च 2008 को साहित्य अकादमी सभागार, नई दिल्ली में साहित्य अकादमी के अध्यक्ष और बांग्ला के प्रतिष्ठित कवि-कथाकार श्री सुनील गंगोपाध्याय ने अकादमीकर्मी श्री श्याम सिंह चौहान के प्रथम कविता-संग्रह 'फिर भी रहेगी दुनिया' का लोकार्पण किया, जिसका प्रकाशन 'अपनी जुबान' द्वारा किया गया है। इस अवसर पर प्रख्यात कवि-कथाकार-आलोचक डॉ. ज्योतिष जोशी ने पुस्तक पर अपने विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम का संचालन युवा कवि-आलोचक श्री देवेन्द्र कुमार देवेश ने किया। सभी वक्ताओं ने श्याम सिंह चौहान को एक संवेदनशील कवि बताया और इस ओर संकेत किया कि किस प्रकार संगति और परिवेश व्यक्ति को संस्कारित और परिष्कृत करते हैं- श्याम सिंह चौहान का कवि इसका एक विरल और महत्वपूर्ण उदाहरण है। इस अवसर पर विभिन्न भाषाओं के महत्वपूर्ण लेखक, यथा श्री अग्रहार कृष्णमूर्ति (कन्नड), श्री विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (हिंदी), श्री विद्यानाथ झा 'विदित' (मैथिली), श्री जदुमनि बेसरा (संताली), श्री अरुण प्रकाश (संपादक 'समकालीन भारतीय साहित्य'), श्री ए.जे. थॉमस संपादक ('इंडियन लिटरेचर') आदि उपस्थित थे।

यह तो वही है

नई दिल्ली। साहित्य अकादमी के सभागार में आयोजित समारोह में श्रीमती सुधा के उपन्यास 'यह तो वही है' का लोकार्पण पत्रकार तरुण विजय ने किया। समारोह की अध्यक्षता करते हुए नरेंद्र कोहली ने कहा कि यह उपन्यास महिलाओं की वर्तमान स्थिति पर विचार करते हुए उन्हें आगे का मार्ग प्रशस्त करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

हरिवंश राय बच्चन जन्मशती पर कविता सम्मेलन

नई दिल्ली। हिंदी भवन के सभागार में हिंदी भवन द्वारा लोकप्रिय कवि स्व. डॉ. हरिवंश राय बच्चन की जन्मशती के अवसर पर 'कविता सम्मेलन' का आयोजन किया गया। इसमें डॉ. बच्चन के करीबी साहित्यिक मित्रों ने उनके साथ के अनुभवों को एक-दूसरे के बीच बांटा। वक्ताओं का कहना था कि डॉ. बच्चन ने मुख्यत: कविताओं के द्वारा अपना और अपने कलाकार का पथ प्रशस्त किया, जिसमें देसी-विदेशी कविता के अनुवाद भी प्रचुर मात्रा में हैं। उनका कहना था कि 'मैं जीवन की समस्त अनुभूतियों को कविता का विषय मानता हूं, लेकिन मेरी अनुभूति में कल्पना और जीवन में मरण भी समाहित है। डॉ. बच्चन ने अपनी डायरी और आत्मकथा के माध्यम से जो गद्य समाज को दिया, वह अपनी रोचकता, पठनीयता और प्रौढ़ता के कारण उनकी कविता के लिए एक चुनौती सिद्ध हुआ। डॉ. बच्चन अपने अंतिम समय में कवि-सम्मेलन को 'कविता सम्मेलन' बनने पर जोर देते रहे। देर रात तक चले सम्मेलन में कवि नीरज से लेकर धर्मवीर भारती की पत्नी पुष्पा भारती ने अपने संस्मरण सुनाए। नीरज ने कहा कि उनके जैसा रचनाकार शायद ही कोई दूसरा हो। कार्यक्रम का प्रारंभ करते हुए त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी ने कहा कि कवि कभी मरता नहीं वह हमेशा जीवित रहता है।

कविता सम्मेलन में श्रीपाल सिंह 'क्षेम', भारतभूषण, बालस्वरूप राही, राजनारायण बिसारिया, कैलाश वाजपेयी, अजित कुमार, रामस्वरूप सिंदूर, सोम ठाकुर एवं किशन सरोज ने कविताओं का पाठ किया। संचालन हिंदी भवन के महामंत्री गोविंद व्यास ने किया।

दुष्यंत कुमार अलंकरण 2008

भोपाल। राजीव गांधी सभागार में समाचार पत्र 'राज एक्सप्रेस तथा एन.एच.डी.सी. के सहयोग से दुष्यंत कुमार स्मारक पांडुलिपि संग्रहालय द्वारा दो दिवसीय समारोह का आयोजन किया गया। इसमें पत्रिका प्रदर्शनी, पुरस्कार वितरण, गजलों की सांगीतिक प्रस्तुति, अलंकरण समारोह एवं कवि सम्मेलन संपन्न हुआ। समारोह के

पहले दिन प्रसार भारती बोर्ड के सदस्य डॉ. सुनील कपूर ने पत्रिका प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। राज्य संसाधन केंद्र के सहयोग से आयोजित प्रदर्शनी में देशभर की तीन सौ से अधिक पत्रिकाएं प्रदर्शित की गईं।

समारोह में चार लब्धप्रतिष्ठ पत्रिकाओं के लिए 'आउटलुक साहित्यिक' दिल्ली को डॉ. धर्मवीर भारती पुरस्कार प्रदान किया, जिसे 'आउटलुक' के भोपाल प्रतिनिधि राजेश सिरोठिया ने ग्रहण किया। दिल्ली की साहित्य अकादमी, दिल्ली की पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' के लिए कमलेश्वर पुरस्कार अकादमी के सचिव डॉ. अग्रहार कृष्णमूर्ति ने स्वीकार किया। नेशनल बुक ट्रस्ट की पत्रिका 'साक्षरता संवाद' के लिए डॉ. ललित किशोर मंडोरा को 'भारतेंदु पुरस्कार' से पुरस्कृत किया गया। 'आरोहण' पत्रिका के लिए एन.एच.डी.सी. की ओर से 'गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार' पत्रिका के संपादक अखिलेश जैन और कॉर्पोरेशन के महाप्रबंधक डी.एस. चौहान ने प्राप्त किया। सम्मान डॉ. सुनील कपूर तथा प्रदेश के मंत्री लक्ष्मीकांत शर्मा ने प्रदान किए।

समारोह के दूसरे चरण में 'विचार सत्र' के अंतर्गत 'पत्रिकाएं : कल आज और कल' विषय पर परिसंवाद हुआ। मुख्य वक्ता थे संतोष चौबे। तीसरे चरण में युवा संगीतकार उमेश तरकसवार के संगीत निर्देशन में दुष्यंत कुमार की गजलों की सांगीतिक प्रस्तुति की गई।

समारोह के दूसरे दिन महामहिम राज्यपाल डॉ. बलराम जाखड़ ने प्रख्यात शायर निदा फाजली को 'दुष्यंत कुमार अलंकरण' से प्रो. प्रेमशंकर रघुवंशी को 'सुदीर्घ साधना सम्मान' एवं लक्ष्मण मस्तूरिया को 'आंचलिक रचनाकार' सम्मान से अलंकृत किया। स्वागत वक्तव्य डॉ. महेंद्र सिंह चौहान ने दिया तथा डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र ने संग्रहालय के प्रयासों को रेखांकित किया। संचालन संग्रहालय के निदेशक राजुरकर ने किया।

अनामिका को केदारनाथ अग्रवाल सम्मान

समकालीन हिंदी कविता की महत्वपूर्ण कवयित्री अनामिका को इनके कविता संकलन 'खुरदरी हथेलियां' के लिए वर्ष 2007 का केदार सम्मान देने का निर्णय लिया गया है। निर्णय की प्रशस्ति में लिखा गया है कि 'अनामिका के इस काव्य संग्रह की कविताओं में भारतीय समाज, सभ्यता और जन-जीवन में जो हो रहा है और होने की प्रक्रिया में जो कुछ खो रहा है उसकी प्रभावी पहचान और अभिव्यक्ति है। यही नहीं, इन कविताओं को एक सतर्क स्त्री दृष्टि की संवेदनशीलता आकर्षक बनाती है और स्त्री भाषा की सामाजिकता पाठकों को नए किस्म की सामाजिक संवेदनशीलता सौंपती है।'

चित्र-कला-संगम सम्मान'-2008

चित्र-कला-संगम देश की एक जानी-मानी सांस्कृतिक, स्वयंसेवी कला संस्था है। इसकी स्थापना 1950 में प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू और श्री लाल बहादुर शास्त्री के संरक्षण में तथा आचार्य काका साहेब कालेलकर की अध्यक्षता में की गई थी। तभी से संस्था साहित्य, संगीत-नृत्य एवं अन्य विविध कलाओं के संवर्द्धन में कार्य करती आ रही है। विविध आयोजनों के साथ 'चित्र-कला-संगम सम्मान' की श्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए वर्ष 2008 के लिए निम्नलिखित महानुभावों को उनकी उल्लेखनीय सेवाओं के लिए यह पुरस्कार प्रदान किए गए।

साहित्य	: डॉ. हरीश नवल
संगीत नृत्य	: सुश्री शिवाश्री व्यास
कला	: सुश्री अल्का आर्य
कार्टून	: श्री सुधीर तैलंग
फोटोग्राफी	: श्री एस. पाल

यह पुरस्कार विजेताओं के घर पर ससम्मान प्रदान किए गए। पुरस्कार में 21-21 हजार रुपए की राशि और प्रशस्ति-पत्र है।

निर्णायक मण्डल में सर्वश्री विष्णु प्रभाकर, डॉ. मधु पंत, डॉ. सत्यव्रत त्रिपाठी और पद्मश्री वीरेन्द्र प्रभाकर सम्मिलित हैं।

संगम की अध्क्षता विख्यात समाजसेविका श्रीमती विद्याबेन शाह और मंत्री पद्मश्री वीरेन्द्र प्रभाकर हैं।

रामदरश मिश्र के कविता चयन 'उस बच्चे की तलाश में' पर संगोष्ठी

12 मई 2008 को सायं 6 बजे साहित्य अकादमी सभागार में अक्षरम् के तत्वावधान में रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताओं के संकलन 'उस बच्चे की तलाश में' पर एक यादगार परिचर्चा संपन्न हुई। सभागार में बैठे हुए लोगों ने वक्ताओं के सारगर्भित विचारों की दीप्ति तो अनुभव की ही मिश्र जी की कविताओं के रस में अपने को स्नात होते हुए भी पाया। दो ढाई घंटे का समय सर्वथा साहित्यमय हो गया था। मंच पर अध्यक्ष के रूप में डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी

तथा विशिष्ट अतिथि के रूप में डॉ. नित्यानंद तिवारी एवं डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय विराजमान थे। शुरू में डॉ. चंद्रकला त्रिपाठी की अनुपस्थिति में उनका आलेख पढ़ा गया। आलेख पाठ किया अक्षरम् के सचिव श्री नरेश शांडिल्य ने। तत्पश्चात श्रीमती अल्का सिन्हा ने अपना प्रपत्र पढ़ा। फिर कविता-पाठ का दौर चला। प्रथम डॉ. स्मिता मिश्र ने मिश्र जी की अत्यंत प्रभावशाली तीन कविताएं पढ़ीं फिर मिश्र जी ने कई कविताओं का पाठ किया। संगोष्ठी संचालक डॉ. हरजेन्द्र चौधरी ने मिश्र जी के साहित्य की बहुआयामिता एवं प्रभविष्णुता की चर्चा करने के पश्चात डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय को आमंत्रित किया। डॉ. श्रोत्रिय ने कहा कि मिश्र जी ने कई विधाओं में लिखा है और सभी विधाओं में इनका बराबर का हक है। गजल के क्षेत्र में भी इनकी उपलब्धि

स्पेनिन साहित्य गौरव सम्मान,

वर्ष 2007 के लिए **स्पेनिन साहित्य गौरव सम्मान** श्री विनोद साव को उनके उपन्यास **'भोंगपुर ३० कि. मी.'** के लिए दिया जाएगा। यह पुरस्कार 6 सितंबर 2008 को रांची में एक भव्य कार्यक्रम में प्रदान किया जाएगा। सम्मान स्वरूप उन्हें 11 हजार रुपए, प्रशस्ति चिह्न, शॉल और पुष्पहार भेंट किए जाएंगे।

स्पेनिन , हेसल रांची - 834005(झारखंड)

विशिष्ट है। डॉ. श्रोतिय ने मिश्र जी के अनेक काव्य-बिम्बों का वाचन किया ओर उनके सौंदर्य की प्रभावशाली पहचान कराई। उन्होंने कहा कि मिश्र जी की कविताओं में बाजारवाद के इस दौर में जीवन की सच्चाई नजर आती है। इन्होंने ऐसे छोटे-छोटे विषयों को लिया जो पहले उपेक्षित से थे। कवि ने इन विषयों में अपने हृदय की गहरी तड़प मिला दी है।

डॉ. नित्यानंद तिवारी ने मिश्र जी की सहजता पर बल देते हुए कहा कि ये सरकंडे की कलम से लिखने वाले कवियों में से हैं। सरकंडे की कलम खुबसूरत नहीं, सही लिखती है। इनकी कृति जनकृति है और भाषा जन-भाषा किंतु मिश्र जी की कविता आवेगात्मकता का साथ कभी नहीं छोड़ती इसलिए वह मार्मिकता की पराकाष्ठा को छूती है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपना अध्यक्षीय भाषण दिया। इस प्रक्रिया में उन्होंने बनारस का साहित्यिक माहौल याद किया।

धन्यवाद देने की प्रक्रिया में अक्षरम् के अध्यक्ष श्री अनिल जोशी ने मिश्र जी के काव्य संबंधी कुछ विचारों को उद्धृत किया और उनके माध्यम से कुछ प्रश्नों के उत्तर भी दिए।

प्रस्तुति— दिलीप कुमार

लेखक मिलन शिविर व कवि-सम्मेलन

अम्बाला छावनी के कहानी-लेखन महाविद्यालय तथा शुभ तारिका (मासिक) पत्रिका का लेखक मिलन शिविर 19 से 22 मई तक शिलांग (मेघालय) में सम्पन्न हुआ। इस शिविर के स्थानीय आयोजक थे अकेलाभाई, अध्यक्ष पूर्वोत्तर हिंदी अकादमी एवं सीमा सुरक्षा बल। चार दिवसीय इस शिविर के कार्यक्रम थे- लेखन में नवलेखकों का मार्गदर्शन, पर्यटन, सांस्कृतिक कार्यक्रम, साहित्यिक चर्चा, कविसम्मेलन।

कहानी-लेखन महाविद्यालय और शुभ तारिका पत्रिका के संस्थापक डॉ. महाराज कृष्ण जैन जयंती पुण्य पर्व के साथ कार्यक्रम का आरंभ हुआ। सीमा सुरक्षा बल के उप-महानिरीक्षक श्री ए.के. झा ने मुख्य अतिथि पद से दीप प्रज्ज्वलित कर तथा डॉ. महाराज कृष्ण जैन के चित्र पर पुष्प अर्पित कर कार्यक्रम का शुभारंभ किया। पूर्वोत्तर हिंदी अकादमी के अध्यक्ष अकेलाभाई ने अतिथियों का स्वागत, अभिनंदन किया और बाहर से आए सभी अतिथियों का सम्मान किया। श्री सुभाष बंसल अम्बाला छावनी ने डॉ. महाराज कृष्ण जैन तथा कहानी लेखन महाविद्यालय का परिचय देते हुए कहा कि नवलेखकों को मार्गदर्शन देने के लिए डॉ. जैन ने 1964 में व्हील चेयर पर चलते हुए इस संस्था की स्थापना की। पत्राचार द्वारा रचनात्मक लेखन में मार्गदर्शन देने वाला भारत में यह पहला संस्थान था। डॉ. जैन का परिचय देते हुए उन्होंने बताया कि इस कहानी-लेखन महाविद्यालय के संस्थापक डॉ. जैन पांच वर्ष की छोटी उम्र में पोलियोग्रसित हुए थे। उन्होंने अपने सपने को साकार किया। पूरे देश के लेखकों से संपर्क किया। नवलेखकों का मार्गदर्शन किया और लेखन शिविरों के माध्यम से लेखन और पर्यटन को जोड़ा।

कहानी-लेखन महाविद्यालय की निदेशिका तथा शुभ तारिका पत्रिका की संपादिका श्रीमती उर्मि कृष्ण ने शुभ तारिका के विस्तृत इतिहास पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इनसाइक्लोस्टाइल पृष्ठ से शुरू हुई पत्रिका आज सौ पृष्ठों तक के रंगीन विशेषांक निकाल रही है। पिछले 36 वर्षों में निरंतर प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका को कई प्रसिद्ध लेखकों का सहयोग मिलता रहा है।

इस सत्र के विशेष अतिथि थे डॉ. यू. के. मिश्र निदेशक विज्ञान एवं तकनीकी उ. पू.प. तथा श्री जे.एन. बावरी वरिष्ठ नागरिक मेघालय राज्य। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. लालचंद गुप्त 'मंगल' पूर्व निदेशक कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी ने की। श्री गुप्त जी ने आज के युग में साहित्य और कहानी के महत्व पर विस्तार से प्रकाश डाला। इसी सत्र के विशेष वक्ता थे हिमाचल कुल्लू से पधारे श्री अशेष। घुमक्कड़ी का महत्व विषय पर उनका रोचक वक्तव्य था। आभार व्यक्त किया श्री सुशील कुमार शर्मा अध्यक्ष हिंदी विभाग नेहू ने। मुख्य अतिथि श्री ए.के. झा ने शुद्ध सरल हिंदी भाषा में साहित्यकारों, बी.एस.एफ के जवानों और अतिथियों का उत्साहवर्द्धन किया। भूली बिसरी कविता की पंक्तियां भी सुनाईं।

दूसरे सत्र में अध्यक्ष थे श्री सुभाष चंदर (गाजियाबाद) प्रसिद्ध व्यंग्य टी.वी. तथा रेडियो नाटकों के लेखक। इसी विषय पर इनका भाषण काफी जानकारी दे गया।

लघुकथा पर रायपुर से पधारे श्री के. पी. सक्सेना 'दूसरे' ने चर्चा की और श्री सुभाष बंसल (अम्बाला) ने पुस्तक पत्रिका प्रकाशन की सावधानियां बताईं। श्री सुशील कुमार शर्मा ने विश्व साहित्य के विकास में अनुवाद का योगदान पर अपना वक्तव्य दिया। डॉ. लालचंद गुप्त 'मंगल' (कुरुक्षेत्र) ने आज के युग में कहानी के महत्व पर विस्तार से कहा।

— प्रस्तुति : श्रीमती उर्मि कृष्ण

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी पं. बृजलाल द्विवेदी स्मृति साहित्यिक सम्मान से विभूषित

रायपुर। पं. बृजलाल स्मृति साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान से विभूषित होने के बाद 'दस्तावेज' के संपादक डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने कहा कि संवेदना का विकास ही साहित्यिक पत्रकारिता का बुनियादी आदर्श है। भारतीय परंपरा का मूल स्वर सहिष्णुता है, जिसकी कमी के कारण समाज में अशांति का वातावरण बन रहा है।

महंत घासीदास स्मृति संग्रहालय सभागार, रायपुर में 25 मई, 2008 को आयोजित एक गरिमामय समारोह में गोरखपुर से पिछले तीन दशकों से अनवरत निकल रही त्रैमासिक पत्रिका 'दस्तावेज' के संपादक डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी को प्रख्यात लेखक विनोद कुमार शुक्ल ने शॉल, श्रीफल, स्मृति चिन्ह, प्रशस्ति पत्र और ग्यारह हजार रुपए नगद देकर पं. बृजलाल द्विवेदी स्मृति साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान से विभूषित किया। इसके बाद 'साहित्यिक पत्रकारिता की जगह' विषय पर व्याख्यान देते हुए उन्होंने कहा कि साहित्यिक पत्रकारिता में सहिष्णुता को प्रोजेक्ट करने की जरूरत है।

नामवर सिंह को परम्परा सम्मान

साहित्यिक संस्था, 'परंपरा' ने वर्ष 2008 के पुरस्कारों की घोषणा की है। संस्था के संस्थापक संरक्षक काशीनाथ मेमानी द्वारा जारी एक विज्ञप्ति के अनुसार 'परंपरा विशिष्ट सम्मान' सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंह को तथा 'रितुराज सम्मान' युवा कवि वीर सक्सेना को दिया जाएगा।

पूंजी की माया महाराक्षस की तरह मुंह फाड़े खड़ी है, जो अत्यांतिक रूप से मनुष्य का अहित करने वाली है।

मुख्य अतिथि विनोद कुमार शुक्ल ने कहा कि साहित्यिक पत्रकारिता में अपने अवदान, तेवर के लिए 'दस्तावेज' का पं. बृजलाल द्विवेदी स्मृति साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान मिलने और इसके संपादक डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की उपस्थिति से यह सम्मान ही सम्मानित हुआ है। उन्होंने साहित्यिक पत्रकारिता में डॉ. तिवारी के योगदान को विशिष्ट बताया।

कार्यक्रम के अध्यक्ष हिमांशु द्विवेदी ने कहा कि मौजूदा समय में जबकि पिता का सम्मान घर के भीतर नहीं बचा है, संजय द्विवेदी द्वारा अपने दादा के नाम पुरस्कार की परंपरा स्थापित करना सराहनीय पहल है। उन्होंने कहा कि संस्कारों से कटने के समय में इन सम्मान से साहित्य और पत्रकारिता के बीच समन्वय स्थापित होगा और नए रिश्तों के संतुलन बनेंगे। अष्टभुजा शुक्ल ने कहा कि 'दस्तावेज' पत्रिका हाड़-मांस का मनुष्य नहीं है, वह विचार है। हम सब जानते हैं कि विचार का वध संभव नहीं है। यही वजह है कि यह पत्रिका 'जीवेम शरद: शतम्' के साथ 'पश्येम शरद: शतम्' के भाव को भी लेकर तीन दशकों में 117 अंक निकाल चुकी है। सच्चिदानंद जोशी ने कहा कि साहित्यिक पत्रकारिता की डगर काफी कठिन है। इस मुश्किल सफर पर तीस सालों से अनवरत चल रही 'दस्तावेज' और इसके संपादक डॉ. तिवारी के योगदान की चर्चा बिना साहित्यिक पत्रकारिता की बात अधूरी है। संजय द्विवेदी ने कहा कि भले ही मेरे पितामह स्वर्गीय पं. बृजलाल द्विवेदी की कर्मभूमि उत्तर प्रदेश है पर छत्तीसगढ़ उनकी याद के बहाने किसी बड़े कृतिकार के कृतित्व को रेखांकित करने की स्थायी भूमि होगी और आयोजक होने के नाते यह मेरे लिए गर्व का विषय भी होगा। उत्तर प्रदेश और छत्तीसगढ़ का यही सखाभाव आज के वैश्विक खतरों से जूझने की भी वैचारिकी हो सकती है। कार्यक्रम को प्रख्यात कथाकार जया जादवानी और जादूगर ओ.पी. शर्मा ने संबोधित किया।

इस अवसर पर पं. बृजलाल द्विवेदी स्मृति साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान के निर्णायक मंडल के सदस्य रमेश नैयर, सच्चिदानंद जोशी, गिरीश पंकज को समिति की संयोजक भूमिका द्विवेदी और संजय द्विवेदी ने स्मृति चिन्ह प्रदान किया। कार्यक्रम का संचालन राजकुमार सोनी ने किया।

रमणिका गुप्ता की आदिवासी जनजीवन पर केन्द्रित तीन पुस्तकों का लोकार्पण

'देश भर के आदिवासियों के सामने सरकारी आतंक के प्रतिरोध, संघर्ष, सत्याग्रह का विकास कैसे हुआ है, इसका ब्यौरा सामने आना चाहिए, ताकि लोगों को लगे कि हम कैसे समय और समाज में रह रहे हैं। रमणिका जी ने कठिन श्रम करके आदिवासी साहित्य और उस अदेखे भारत की सच्चाइयों को सामने लाने का जो काम किया, उससे हिन्दी साहित्य का बहुत भला हुआ है। हिन्दी साहित्य में जिन मसलों को लेकर बहस होती है, उसके बरक्स इन आदिवासी भाषाओं और इनके साहित्य की समस्याओं की तुलना करें तो हम पाएंगे कि हिन्दी में पतली गली में अपनी जगह बनाने के लिए धक्कम-धुक्की का सारा मामला होता है।'

मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार-2008

मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार चयन समिति के संयोजक अजय गुप्ता ने बताया कि इस वर्ष हरेराम नेमा समीप को उनकी पुस्तकें 'जैसे' तथा 'साथ चलेगा कौन' के लिए और राजेंद्र नागदेव को उनकी पुस्तक 'अंधी यात्राएं' के लिए यह पुरस्कार दिया जाएगा।

ये बातें विख्यात आलोचक मैनेजर पाण्डेय ने साहित्य अकादमी सभागार में आयोजित रमणिका गुप्ता की आदिवासी जनजीवन पर केंद्रित तीन पुस्तकों– 'आदिवासी : विकास से विस्थापन', 'आदिवासी : साहित्य यात्रा' और 'आदिवासी कौन' के लोकार्पण समारोह के दौरान कहीं।

इन तीनों पुस्तकों का लोकार्पण प्रख्यात कथाकार राजेन्द्र यादव, मैनेजर पाण्डेय और सुपरिचित कवि व गद्यकार लीलाधार मण्डलोई ने किया।

अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में प्रख्यात लेखक और 'हंस' के संपादक राजेन्द्र यादव ने कहा– 'यह सच है उत्तर भारतीयों के लिए आदिवासी एक अजूबा हैं। हमारे लिए वो किसी दूसरे लोक के प्राणी की तरह हैं। रमणिका जी ने इन किताबों के जरिये उनसे हमारा परिचय कराया है, इसलिए हिन्दी जगत को उनका आभारी होना चाहिए।'

मुख्य वक्ता लीलाधार मंडलोई ने कहा– 'इन पुस्तकों की यह बड़ी खासियत है कि इनके सारे आलेख आदिवासी लेखकों ने लिखे हैं, इसलिए आप यहां उनके सरोकार और उनकी आत्मा पा लेते हैं। इन पुस्तकों से गुजरते हुए हम साफ-साफ एक समाजशास्त्री और एक लेखक की दृष्टि का फर्क महसूस कर सकते हैं। इस श्रृंखला में आधुनिक आदिवासी लेखन पर बल है और इसका मराठी, बोड़ो और मिजो खंड बेहद महत्वपूर्ण है। भूमंडलीकरण के दौर में आदिवासी जनजीवन की परंपरा को दफनाने की कोशिश की जा रही है।'

अपने संपादकीय वक्तव्य में रमणिका

गुप्ता ने कहा– 'आदिवासियों का साहित्य उनके जीवन का साहित्य है। यह उन आदिवासियों साहित्यिक यात्रा की पुस्तक है, जो शोषण के शिकार हैं। हम चाहते हैं कि वह अपनी बात खुद करें। उन्हें अपनी पहचान गंवाने का दुःख है और वे इसे पाने के लिए प्रयासरत हैं। आदिवासियों की 600 बोलियां हैं, जिनमें से 90 भाषाओं में साहित्य लिखा जा रहा है। रमणिका फाउण्डेशन ने 27 आदिवासी भाषाओं के साहित्य का अनुवाद कराया है। इस पुस्तक में 10 भाषाओं के आदिवासी साहित्य की विस्तार से चर्चा की गई है।'

झारखण्ड से आईं चर्चित युवा पत्रकार वासवी कीड़ो ने कहा– 'हाल ही में झारखंड सरकार ने आदिवासियों के विकास के कारण हुए विस्थापन के निराकरण के लिये एक पुनर्वास और पुनर्स्थापन की नीति बनायी है, जिसमें बहुत कुछ आपत्तिजनक है।'

विशिष्ट अतिथि रामशरण जोशी ने कहा– 'मुख्यधारा आज भी आदिवासियों को बोझ के रूप में देखती है। यह विडम्बना है कि औपनिवेशिक मानसिकता स्वतंत्र भारत में भी जारी रही। मुख्यधारा के विकास की अवधारणा स्पष्ट नहीं और यह भी साफ नहीं कि विकास की कीमत कौन अदा करेगा? रमणिका जी की ये पुस्तकें आदिवासियों के इन ज्वलंत मुद्दों की तरु ध्यान आकर्षित करती हैं।'

सुपरिचित कवि मदन कश्यप ने कहा– 'विकास के नाम पर बेशर्मी से आदिवासियों को विस्थापित करने की कोशिश की जा रही है। इस सच को बार–बार नकारा गया है कि अंग्रेजों के विरुद्ध सबसे ज्यादा लड़ाइयां आदिवासियों ने लड़ीं।'

समारोह का संचालन वासवी कीड़ो ने किया और धन्यवाद ज्ञापन युवा कथाकार अभिषेक कश्यप ने किया।

दिनेश कुमार, (रमणिका फाउण्डेशन)

प्रगतिशील लेखक संघ द्वारा गोष्ठी

राजेंद्र भवन, नई दिल्ली : दिनांक 9 मई, 2008, शुक्रवार को यहां प्रगतिशील लेखक संघ एवं राजेंद्र प्रसाद अकादमी द्वारा संयुक्त रूप से डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी की अध्यक्षता में विनय विश्वास के कविता संकलन 'पत्थरों का क्या है' पर एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस अवसर पर हिन्दी के यशस्वी कथाकार अमरकांत की अस्वस्थता और कठिन आर्थिक स्थिति पर चिंता व्यक्त करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया गया। प्रस्ताव में स्वाधीनता सेनानी और भारत छोड़ो आंदोलन को हिंदी में अभिव्यक्ति देने वाले महत्वपूर्ण कथाकार अमरकांत की उपेक्षा को लज्जाजनक कहा गया। केन्द्र एवं उत्तर प्रदेश की सरकारों से मांग की गई कि वे अपने दायित्व को समझते हुए इलाहाबाद में विविध कठिनाइयों से जूझते अमरकांत के उपचार की समुचित व्यवस्था करें और उन्हें नियमित रूप से मासिक पेंशन उपलब्ध कराएं।

गोष्ठी की शुरुआत सुश्री प्रीति अडालजा द्वारा महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला कृत दो कविताओं के मधुर गायन से हुई। इसके बाद विनय ने अपने संकलन से कुछ कविताएं पढ़ीं। कविताओं पर चर्चा की शुरुआत करते हुए नीरज कुमार ने अपने आलेख के माध्यम से कहा कि ये आम आदमी के जीवन के दुखों को बहुत नज़दीक जाकर देखने वाली कविताएं हैं। वैश्विक स्तर पर होने वाले परिवर्तनों ने आम आदमी के जीवन की दुश्वारियां और बढ़ाई हैं। विनय की कविताएं उन्हें दर्ज करती हैं। समय–समाज में घटने वाली छोटी–छोटी घटनाएं विनय के यहां दर्ज होने के बाद एक बड़े फलक में देखे जाने की मांग करती हैं। कठिन जीवन के कोरे अनुभव कवि के प्रतीकों की धार को पैना करते हैं।

बली सिंह का कहना था कि विकास की विसंगतियों को उद्घाटित करते हैं विनय विश्वास अपनी कविताओं में। उद्घाटित करने का उनका अपना ख़ास अंदाज़ है। वे विलोमों को एक साथ उपस्थित करते हैं, जिनमें रेह्टरिक और ठेठ बोलचाल की भाषा है, जो पठ्य और श्रव्य के भेद को मिटाने में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विकास की विसंगतियों को विनय मेहनतकश इंसान के नज़रिये से देखते हैं। इसलिए उनके यहां छोटे–छोटे पूंजीवादी सपने नहीं, बल्कि इसके विपरीत संतुलित विकास के बड़े सपने आते हैं।

चर्चा को आगे बढ़ाते हुए वेद प्रकाश ने कहा कि इस संकलन में जो अच्छी कविताएं हैं, उन सब कविताओं पर बड़े रचनाकारों का प्रभाव है। वे चाहे मुक्तिबोध हों, चाहे परसाई, चाहे नागार्जुन हों और चाहे कालिदास। ये कविताएं हवा, पानी, आकाश, मुस्कराहट, मासूमियत, सादगी आदि जिन चीजों का जीवन में अभाव धीरे–धीरे होता जा रहा है, जो हमारे पंच महाभूत हमारी पकड़ से छूटते जा रहे हैं, उनके शोक की कविताएं हैं। मंच की कविता बनाने के लिए भाव के साथ तोड़फोड़ भी कई जगह है। जैसे मां का कटे अंगूठे से नींबू निचोड़ना बहुत खटकता है। जहां कवि अपने पर कविताएं लिखता है, 'मैं' जहां आता है, वो उतनी अच्छी नहीं लगतीं, जितनी दूसरी तरह

नरेंद्र कोहली के 'गारे की दीवार' का सिएटल में मंचन

सिएटल के एक संगठन 'प्रतिध्वनि' ने प्रसिद्ध हिंदी उपन्यासकार और नाट्यलेखक नरेंद्र कोहली के नाटक 'गारे की दीवार' का मंचन किया जिसका निर्देशन अगस्त्य कोहली ने किया। विदेश में 'गारे की दीवार' का यह पहला मंचन था। 'गारे की दीवार' एक हास्य नाटक है जिसके पात्र अनपेक्षित परिस्थितियों में मजेदार टिप्पणियां करते हैं। यह नाटक लोगों के उस तथाकथित स्टेटस पर फोकस करता है जो वे समाज में अपनी उच्च स्थिति का ढोंग करने के लिए गढ़ लेते हैं और फिर उसे बनाए रखने के लिए कुछ भी करने को तैयार रहते हैं। निर्देशक कोहली कहते हैं– यह नाटक एक बहुत ही सामान्य घर में बहुत सामान्य परिस्थितियों में शुरू होता है लेकिन हर क्षण बीतने के साथ-साथ झूठ और रहस्यों की परतें खुलने लगती हैं और रोमांच पैदा होता रहता है। नाटक में जिस परिवार पर ध्यान केंद्रित किया गया है वह किसी एक समाज, किसी एक देश का प्रतिनिधि परिवार नहीं है बल्कि विश्व में सामान्य रूप से पाया जाने वाला आम परिवार है। यही वजह है कि उसके साथ दर्शक खुद को जोड़कर देख पाते हैं और इसीलिए सिएटल में हुए उसके मंचन को खूब सराहा गया।

प्रस्तुति– अगस्त्य कोहली

की कविताएं। 'मैं' पर लिखी गई कविताओं को छोड़कर अगर दूसरी कविताओं को देखें तो ये बेहद पठनीय और अपने समय को बताती हुई, इस समय में जो कुछ हमारे हाथों से छूटता जा रहा है, उसे कैसे बचाएं, यह बताती हुई कविताएं हैं।

राजकुमार सैनी ने समकालीन कविता के परिदृश्य में छंदोबद्ध, छंदमुक्त, गद्यात्मक आदि तरह-तरह की लिखी जा रही कविताओं की चर्चा करते हुए कहा कि कुछ कविताएं ऐसी भी लिखी जा रही हैं, जिनमें गद्य और पद्य का कोई अंतर नहीं है। कवि अगर किसी गद्य की पुस्तक से पंक्तियां उठाकर कविता के रूप में उनकी प्लेसमेंट कर दे तो वे कविताएं भी कहला सकती हैं। विनय विश्वास की कविताओं में तुकों का निर्वाह है लेकिन ये तुकबंदी की कविताएं नहीं हैं। इनमें तुकों का पॉज़िटिव निर्वाह कविता के गद्य से अंतर को बताता है कि ये वास्तव में कविताएं हैं। गद्य के टुकड़े नहीं हैं, जैसा कि आजकल लिखा जा रहा है। इन कविताओं में शब्द और अर्थ, दोनों की लय है।

केवल गोस्वामी ने आत्मीय संबंधों पर आधारित कविताओं को कवि के अनुभव और उसकी रचनात्मकता को दर्शाने वाली कविताएं बताया। कहा कि मां द्वारा कटे अंगूठे से नींबू निचोड़ने की क्रिया में मुझे मां का सरोकार, ममता, त्याग और वात्सल्य दिखाई देता है। अपनी पीड़ा भूलकर दूसरे के सुख के लिए जीने को यह क्रिया उजागर करती है। मंच की चर्चा करते हुए केवल का कहना था कि आयोजक जब कवि को पैसा देते हैं तो उससे किसी बहुत ही प्रगतिशील या बड़ी क्रांतिकारी कविता की उम्मीद नहीं करते। वहां सुनने वाले भी अक्सर ऐसे नहीं होते।

शायद कविताओं को संप्रेषित करने के लिए विलोमों को रखने और रेह्टरिक की शैली कवि ने विकसित की है। इसमें एक सुखद बात मुझे यह लगी कि विनय ने कविता को माल बनने से बचा लिया। बौद्धिक विलास करने की कतई कोशिश नहीं की बल्कि पूरी गंभीरता के साथ, कविता को कविता की शर्तों पर, अपनी शर्तों पर, मंच से भी पढ़ा और पत्रिकाओं में भी पढ़वाया। मंच पर पढ़ने से कोई कविता छोटी नहीं हो जाती। हल्की या सस्ती नहीं हो जाती। सिर्फ़ यही है कि आप उसके साथ कितना समझौता करते हैं। मंच की शर्तों को कितना अपनाते हैं और अपनी शर्तों पर कितना कविता को वहां प्रस्तुत करते हैं। विनय को इस ख़तरे से सावधान रहना होगा कि जो शैली इन कविताओं में नज़र आती है, वह कहीं रूढ़ि न बन जाए।

रामकुमार कृषक ने कहा कि विनय मंच के भी एक सुधी और समर्थ कवि हैं। उनकी जो कविताएं छपकर आई हैं, उनमें भी मंच मौजूद है और मेरा ख़याल है कि इसमें कोई असंगति नहीं है। वो मंच पर जाते हैं, जनता के बीच में पढ़ते हैं, संप्रेषित करते हैं अपने समय को अपनी कविता के माध्यम से और बेबाकी के साथ करते हैं। उसमें कोई बौद्धिकता का आवरण डालने की कोशिश नहीं होती। समकालीन यथार्थ उनकी कविता में आता है। निम्नमध्यवर्गीय तबके की सचाइयों से इनकी नज़दीकी रही है और वे इन कविताओं में दिखाई देती हैं। ऐसे बहुत सारे पात्र हैं, जो इनमें प्रतीकात्मक रूप से मौजूद हैं।

कई जगह मुझे लगता है कि कविताओं में इस तरह के तुकांतों की ज़रूरत नहीं थी। इस यथार्थ का उद्घाटन और इस यथार्थ का संप्रेषण बगैर इस तुकांत के भी हो सकता था, और प्रभावी तरीके से हो सकता था। मैं तुकांत में लिखने वाला आदमी हूं, छंदोबद्ध कविता का आग्रही हूं। लेकिन फीवर्स में कहीं-कहीं ये चीज़ें मुझे बाधा पैदा करती हैं। मेरे आस्वाद और मेरी सोच को कहीं परेशान करती हैं। बहुत सारे लोग अपनी ज़मीन छोड़कर बहुत सारा अनापशनाप लिखने लगते हैं और अपने आप को महान और पता नहीं क्या क्या दिखाने की कोशिश करते हैं। विनय में ऐसा कुछ नहीं है। वे जिस जीवन यथार्थ के कवि हैं, उसी को कविता में रखते हैं और उस जीवन के प्रति उनकी पूरी निष्ठा है। मेहनतकश आदमी से जुड़े बहुत सारे बिंब, बहुत सारा हमारी ज़िंदगी से जुड़ा सामान इनकी कविताओं में मौजूद है और उसको एक रचनात्मकता इन्होंने दी है।

पवन कुमार का कहना था कि कृतज्ञता ज्ञापन जैसी कविता अगर कोई मंच पर पढ़ता है तो बड़ा काम करता है। कमर्शियल सिनेमा में नसीरुद्दीन शाह ने एक स्पेस बनाया, जिससे रंगमंच के लोगों द्वारा वहां अभिनय की एक लंबी परम्परा पैदा हुई। इसी तरह विनय की कविताओं ने भी मंच पर जो स्पेस बनाया है, मैं आशा करता हूं कि कवि उसका उपयोग करेंगे और टैक्निकल लोगों ने कविता की जो दुर्गति की है, वह कम से कम करते हुए उसे वास्तव में कविता बनाने की कोशिश करेंगे, जनता से जुड़ेंगे। हरजेंद्र चौधरी ने कोई टिप्पणी न करते हुए संकलन से इच्छाओं का गीत शीर्षक कविता पढ़ी।

सुरजीत गांधी ने कहा कि कविता में कथ्य, शिल्प, समय, बिम्ब और प्रतीक कोई हवा से तो पैदा होते नहीं! इन कविताओं पर अगर और रचनाकारों का प्रभाव है भी तो इसमें कोई बुराई नहीं है। रिफाईंड होके चक्का नीचे से ऊपर फिर आता है। विनय विश्वास की कविताएं सीधी-सादी और सरल हैं। उनके पढ़ने-सुनने में एकरूपता है। समरसता है। मंच से भी ऐसी कविताएं या ऐसे कवि पैदा होते हैं जो लोगों को उद्वेलित करते हैं और समाज को बदलने की लड़ाई में हिस्सेदार होते हैं।

आज के हालात में कविता की आलोचनात्मक, सर्जनात्मक और ऐतिहासिक भूमिका पर प्रकाश डालते हुए डॉ. नित्यानंद तिवारी ने कहा कि प्रभावित होना जीवित होने का लक्षण है। नकल तो नहीं किया है! इन कविताओं में यह विवेक साफ-साफ दिखाई पड़ता है कि साक्षी बने बिना कविता या कवि अपने शब्द नहीं पा सकता। कविता की भाषा आंतरिक और अंतिम रूप से सामाजिक ही हो सकती है। पक्षधर ही हो सकती है। हिंदी के कुछ बौद्धिकतापूर्ण विमर्शों को छोड़ दीजिए तो ऐसी कोई महत्वपूर्ण रचना मुझे दिखाई नहीं पड़ती, जो बाज़ार के समर्थन में हो। इस नए विमर्श और रचनात्मकता में इतनी गहरी खाई कभी नहीं खुदी थी, जितनी आज बाज़ार ने खोदी है और इस गहराई की ओर साफ-साफ इशारा विनय विश्वास की कविता करती है।

गोष्ठी का अध्यक्षीय वक्तव्य देते हुए

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा कि आप लोगों को थोड़ा-सा रियाज़ करना चाहिए अखाड़े में। और ये बड़े-बड़े लोगों का कहना है कि जैसे संगीतकार रियाज़ करता है, वैसे लेखक को भी रियाज़ करना चाहिए। प्रगतिशील कविता व्यंग्य की जो होगी, और अगर वहां आंदोलन की कोई परंपरा रही है तो वो कविता छंदोबद्ध ही अच्छी होगी। उत्कृष्ट होगी। आप लोग मेरी बात अभी मत मानिए, लेकिन नागार्जुन जैसी व्यंग्य की कविता, उनके दोहों को अगर आप गद्य में कर दीजिए, या हिंदी का कोई दूसरा कवि बताइए जो गद्य में उनसे अच्छी व्यंग्य कविता लिख चुका हो! इस पर सोचना चाहिए। ये कविताएं इस बहस पर विचार करने के लिए बहुत अच्छा आधार प्रस्तुत करती हैं। इन कविताओं की जो एक बात मुझे बहुत अच्छी लगी, वो ये कि यंत्रणा तो बहुत है। अंधकार चारों तरफ है। भवानी प्रसाद मिश्र की एक कविता मुझे याद आ रही है- जन्म लिया है खेल नहीं है/जहां फेंक दो वहीं पर रस पैदा कर दूंगा। यातना बहुत है। इस स्थिति में भी कवि, देखो, बड़ा वो होता है, जो दुख में से सुख खींच लाता है। ये कविता जो है- सुख, वैसा सुखी रहकर कोई दिखाए तो ज़रा! लोग कहते हैं कि सुख नहीं मिलता। सुख है। मज़दूर रात में भी सो लेते हैं। उन्हें नींद आ जाती है। और बड़े-बड़े लोग जो हैं, उनको नींद नहीं आती है। किसने रोक रखा है, तुम भी सोओ वैसा करके, किसने रोक रखा है!

हर जनरेशन को, इतिहास के हर दौर को, मानवीय सुख ढूंढ़ना पड़ता है। खोजना पड़ता है। संघर्ष करना पड़ता है। मानवीय सुख इतनी सस्ती, इतनी ओछी चीज़ नहीं है, जो उत्तराधिकार में मिले किसी को। जो चीज़ उत्तराधिकार में पाते हैं आप, वो कौड़ी की तीन चीज़ होती है। इसलिए वो कविता जो है- सुख, ऐसा लगता है, जैसे ये तो मैं लिखता! ये सुखी रहना बड़ा कॉस्टली होता है। कितना सुखी है वो/कविता के देश में अजनबी/हथेलियों में पुरस्कारों की खुजली नहीं, बड़ा मुश्किल है ये खुजली न होना, बहुत मुश्किल है! तलुओं में विद्यार्थियों की छाती रौंदने का अरमान नहीं/कानों में तालियों की प्यास नहीं/आंखों में पूज्य होने की लालिमा नहीं/कुछ भी नहीं जो उसे दुखी कर सके/दुख यही सोच-सोच दुखी है कि

न्यूयार्क में सम्पन्न हुए आंठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन से लौटकर अशोक चक्रधर और उनकी हिन्दी कम्प्यूटिंग में लगी हुई टीम ने फैसला किया कि हिन्दी साहित्यकारों और हिन्दी प्रेमियों के बीच आंकिक विभाजन को समाप्त करने के लिए और कम्प्यूटर चेतना का विकास करने के लिए 'हिन्दी का भविष्य और भविष्य की हिन्दी' शीर्षक से प्रतिमास एक मासिक कार्यक्रम का आयोजन किया जाए। सितंबर 2007 से प्रारंभ होकर अगस्त 2008 तक जयजयवंती संगोष्ठी के अब तक बारह कार्यक्रम सम्पन्न हो चुके हैं। हर कार्यक्रम में कम्प्यूटर से जुड़े हुए विभिन्न विषयों को लिया गया। गम्भीर चर्चाओं के दौरान काव्य-पाठ भी होते रहे। संचालन के दौरान अशोक चक्रधर प्राय: कहते रहे कि हमारा कार्यक्रम रोचक सम्प्रदाय का भी है और भौंचक सम्प्रदाय का भी है। कविताओं और रचनात्मक साहित्य की विविध विधओं से हम इसे रोचक बनाते हैं और भविष्य की हिन्दी के लिए कम्प्यूटर की सेवाएं देखकर भौंचक भी रह जाते है। हमारा मकसद है कम्प्यूटर का अधिकाधिक लाभ उठाने के लिए स्वयं को सक्षम बनाना।

इस मासिक गोष्ठी में जिस वरिष्ठ साहित्यकार को 'जयजयवंती सम्मान' से नवाज़ा जाता है उसे हिन्दी सॉफ्टवेयर सुविधा सज्जित एक लैपटॉप भी दिया जाता है। श्री प्रभाष जोशी, डॉ. कुंवर बेचैन, डॉ. रामदरश मिश्र, श्री उदय प्रताप सिंह पिछले महीनों में सम्मानित हुए प्रमुख नाम हैं। जून माह में डॉ. कन्हैया लाल नन्दन को सम्मानित किया गया। वे लैपटॉप पाकर परम प्रसन्न हैं और एक विद्यार्थी चेतना के साथ कम्प्यूटर पर हिन्दी लेखन प्रारंभ कर चुके हैं। उस गोष्ठी का विषय था 'हिन्दी की ब्लॉगशाला' 19 जून को इंडिया हैबिटेट सैंटर के गुलमोहर हॉल में अनेक साहित्यकार अपने-अपने लैपटॉप लेकर आए और सभागार में इंटरनेट की सुविधा के रहते उन्होंने हिन्दी के ब्लॉग बनाए। डॉ. कुंवर बेचैन ने तीन-चार महीने के अन्दर ही काफी दक्षता हासिल कर ली। लैपटॉप प्राप्त करने के बाद डॉ. कन्हैया लाल नन्दन ने सभागार में कहा था- 'मैं यहां संगोष्ठी सुनने के लिए आया था और इनकी पकड़ में भी आ गया। जो कुछ मैंने लैपटॉप में देखा उससे मैं कितना प्रभावित हुआ हूं, बता नहीं सकता। सोचने लगा कि ये तो निहायत नामाकूलियत है कि मुझे सुविधाएं मिली हुई हैं, लेकिन मुझमें इनका ज्ञान नहीं है। तो साहब ज्ञान प्राप्त करने के लिए उम्र की कोई बन्दिश नहीं होती। इन्होंने मुझे एक लैपटॉप ही भेंट कर दिया। मैं सार्वजनिक रूप से कहता हूं कि मैं इन्हें बेहद प्यार करता हूं और ये प्यार करने के काबिल आदमी हैं। मैं जल्दी से जल्दी वहां एक दिन में पहुंच जाना चाहता हूं, जहां लोग एक हफ्ते में पहुंचते हैं। अभी मैंने कोशिश करी, और जितना कोने में बैठे अशोक चक्रधर ने मुझे सिखाया, उतने से तो मैंने इन्हें टाइप कर के दिखा भी दिया। मैं इन्हें बहुत-बहुत दुआएं देता हूं और इनके जुनून को सलाम करता हूं।'

जयजयवंती साहित्य संगोष्ठी के इन बारह महीनों में अनेक साहित्यकार, राजनेता सम्मिलित होते रहे हैं जैसे डॉ. रत्नाकर पांडेय, डॉ. सुधीश पचौरी, श्री राहुल देव, श्रीप्रकाश जायसवाल, श्री विजय कुमार मल्होत्रा, श्री हर्ष कुमार, डॉ. भीष्म नारायण सिंह, प्रो. सुरेन्द्र गम्भीर, डॉ. मधु गोस्वामी, प्रो. वशिनी शर्मा, श्री आलोक पुराणिक, श्री अनुराग चक्रधर, सुश्री स्नेहा चक्रधर, श्री अजय जैन, श्री सिरिल गुप्त, श्री शैलेष भारतवासी, श्री सजीव सारथी, श्रीमती बरखा अशोक सिंह, डॉ. इंद्र नाथ चौधरी, श्री बालेन्दु दाधीच, पद्मश्री वीरेन्द्र प्रभाकर, श्री ए. आर. कोहली, श्री सत्यव्रत चतुर्वेदी, श्री बाल स्वरूप राही, श्रीमती चित्रा मुद्‌गल, डॉ. पद्माकर पाण्डेय एवं सुश्री पायल शर्मा।

समय-समय पर हिन्दी के अनेक कवि भी सक्रिय हिस्सेदारी निभाते रहे हैं। जैसे अरुण जेमिनी, महेन्द्र अजनबी, वेद प्रकाश, ऋतु गोयल, राज गोपाल सिंह, दीपक गुप्ता, दीक्षित दनकौरी, पुरुषोत्तम वज्र। अनेक कवियों ने अपने ब्लॉग बनाए हैं। जैसे पवन दीक्षित, जैनेन्द्र कर्दम, मधुमोहिनी उपाध्याय। इस कार्यक्रम शृंखला के व्यवस्थापक श्री राकेश पांडेय की सहभागिता प्रारंभ से बनी हुई है। संगोष्ठी के कितने ही स्थायी श्रोता कम्प्यूटर साक्षर हो चुके हैं तथा भविष्य की हिन्दी के प्रति आशावान हैं।

चित्र एवं रिपोर्ट : पायल शर्मा

ये/बेवकूफ़-सा आदमी/बिना बात सुखी है। पता नहीं नागार्जुन होते तो ऐसी कविता पद्य में भी लिख देते, मैं नहीं जानता। इतनी यातना में, इतनी परेशानी में एक आदमी, जो सुखी होने का एक कांक्रीट, सच्चा, सुनिश्चित रास्ता बताता है और जिस पर चलने का साहस वही कर सकते हैं, सुखी होने की क्षमता जिनमें है। सभी नहीं।

इस संबोधन के साथ संपन्न हुई गोष्ठी में डॉ. हरिमोहन शर्मा, अरुण जैमिनी, ऋतु गोयल, नीरव, यशोदा, अनिल राय, जसबीर त्यागी आदि अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने हिस्सा लिया। रजत जैन और इसरार ने व्यवस्था में उल्लेखनीय सहायता की। जीवंत संचालन डॉ. द्वारिका प्रसाद चारुमित्र ने किया।

सुदर्शन वसिष्ठ द्वारा कहानी पाठ

8 अगस्त को साहित्य अकादमी द्वारा 'कथा संधि' कार्यक्रम के अंतर्गत रवींद्र भवन में सुपरिचित कथाकार सुदर्शन वसिष्ठ की कहानी का पाठ हुआ। इस अवसर पर उन्होंने 'पहाड़ देखता है', 'माणस गंध' तथा हंसना मना है' कहानियों का पाठ किया। कहानियों पर प्रभाकर श्रोत्रिय, प्रेम जनमेजय, राजी सेठ, आर.के. पालीवाल, रमेश सैनी, आदि ने अपने विचार रखे। आयोजन में अग्रहार कृष्णमूर्ति, गंगाप्रसाद विमल, ललित लालित्य, सुभाष नीरव आदि उपस्थित थे। अकादमी के उपसचिव बृजेंद्र त्रिपाठी ने सुदर्शन वसिष्ठ का परिचय दिया एवं आभार प्रदर्शन किया।

शरद जोशी सम्मान आलोक मेहता को

श्री आलोक मेहता को मध्य प्रदेश सरकार का 'राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान' दिया जाएगा। सम्मान के अंतर्गत श्री मेहता को एक लाख रुपए, श्रीफल, शॉल और प्रशस्ति पत्र दिया जाएगा।

भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार निशांत को

वर्ष 2008 का 'भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार' श्री निशांत को उनकी कविता 'अट्ठाईस साल की उम्र में' के लिए दिया जाएगा। यह कविता समकालीन भारतीय साहित्य के जुलाई-अगस्त 2007 के अंक में प्रकाशित हुई थी।

महिला कथाकारों द्वारा कहानी पाठ

साहित्य अकादमी के सभागार में अकादमी के अस्मिता शीर्षक कार्यक्रम की श्रृंखला में कहानी पाठ संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें हिंदी की वरिष्ठ तीन महिला कथाकारों ममता कालिया, नमिता सिंह और कुसुम अंसल ने अपनी कहानियों का पाठ किया तथा अपनी रचना-प्रक्रिया पर प्रकाश डाला।

नवजोत सिद्धू को सम्मान

हिंदी भवन द्वारा प्रतिवर्ष दिए जाने वाला हिंदी-रत्न सम्मान इस वर्ष जाने-माने क्रिकेटर नवजोत सिंह सिद्धू को प्रदान किया गया। हिंदी भवन की ओर से यह सम्मान प्रतिवर्ष ऐसे लोगों को प्रदान किया जाता है जो अहिंदीभाषी होने के बावजूद हिंदी के प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं। उन्हें शॉल, स्मृति-चिह्न प्रशस्ति पत्र एवं 31 हजार रुपए की राशि प्रदान की गई। श्री नवजोत सिंह सिद्धू ने घोषणा की कि इस सम्मान के लिए वह आजीवन एक लाख रुपया प्रतिवर्ष हिंदी भवन को देते रहेंगे। श्री नवजोत सिंह सिद्धू ने अपने अंदाज में कहा -

नाम ही खो दोगे तो किधर जाओगे।
पहचान खो दोगे तो बिखर जाओगे।।

इस अवसर पर प्रभाष जोशी, सुषमा स्वराज, आरती मेहरा, गोविंद व्यास सहित राजधनी के प्रतिष्ठित हिंदी प्रेमी उपस्थित थे।

चित्र कला संगम पुरस्कार

संस्था के मंत्री वीरेंद्र प्रभाकर ने सूचित किया कि इस वर्ष सम्मान के लिए डॉ. महीप सिंह, पद्मा सचदेव, डॉ. गोविंद व्यास, गीता चंद्रन, रामकुमार, कन्हाई चित्रकार, टी. एस. अशोक तथा शिवाशीष शर्मा को उनके निवास स्थान पर जाकर प्रदान किए जाएंगे।

'नई धारा' द्वारा सम्मानों की घोषणा

एक प्रेस वार्ता में 'नई धारा' द्वारा वर्ष 2008 के सम्मानों की घोषणा की गई। दूसरा उदयराज सम्मान प्रख्यात साहित्यकार हिमांशु जोशी को प्रदान किया जाएगा। इसके साथ ही कवि पंकज सिंह, रामशोमित् प्रसाद सिंह, एवं अमरनाथ 'अमर' को वर्ष 2008 के 'नई धारा रचना सम्मान' से सम्मानित किया जाएगा।

वरिष्ठ पत्रकार प्रभाष जोशी की पांच पुस्तकों का लोकार्पण

वरिष्ठ पत्रकार प्रभाष जोशी की पांच पुस्तकों का लोकार्पण 30 जुलाई को दिल्ली के त्रिवेणी सभागार में किया गया। लोकार्पण क्रमशः प्रभात खबर के प्रधान संपादक हरिवंश, हिन्दुस्तान टाइम्स भोपाल के संपादक एन.के. सिंह, दैनिक भास्कर के समूह संपादक श्रवण कुमार गर्ग, अमर उजाला के समूह संपादक शशि शेखर और गांधी मार्ग के संपादक अनुपम मिश्र ने किया। लोकार्पण कार्यक्रम में प्रभाष जोशी ने कहा कि हमें उसी भाषा में लिखना चाहिए जिससे हम प्रेम करते हैं। उसी भाषा में विचार आते हैं और आत्मीयता झलकती है। इसके साथ ही नई पीढ़ी के पत्रकारों को सीख दी कि भले ही पत्थर हो लेकिन कील ठोंकते जाएं, एक दिन पार हो ही जाएगी। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. नामवर सिंह ने की और मंच संचालन सुधीश पचौरी ने किया।

अपने वक्तव्य में प्रभाष जोशी ने राहुल बारपुते, एस मुलगांवकर, अजित भट्टाचार्य, जार्ज वर्गीज और एच के दुआ को अपना मार्गदर्शक बताया। उन्होंने कहा कि ये पांच किताबें राजेन्द्र माथुर, शरद जोशी, कुमार गंधर्व, रामनाथ गोयनका और श्रीश मुल्गांवकर को समर्पित हैं। 'कागद कारे' के लेखों को पांच भागों में विभाजित कर उसे पुस्तक में संकलित करने का उद्देश्य समाज के साथ हिंदी पढ़ने वालों से संबंध स्थापित करना रहा है।

नई पीढ़ी के पत्रकारों से कहा कि हम उस भाषा में लिखे जिससे हम प्रेम करते हैं और निडर होकर कार्य करें। पांचों पुस्तकों का संपादन करने वाले सुरेश शर्मा ने बताया कि इनमें 1992 से 2002 के दौरान छपे कागद कारे के लेखों को शामिल किया गया

है। इससे हिंदी गद्य का नया रूप सामने आया है। पहली पुस्तक 'जीने के बहाने' में विभिन्न व्यक्तित्व के बारे में लिखे गए लेख हैं। पुस्तक 'धन्य नरबदा मइया हो' में अपनी संस्कृति और जीवन में नर्मदा नदी की यादों को समेटा गया है। 'लुटियन के टीले का भूगोल' में राजनीति वे लोकतंत्र पर की गई टिप्पणियों को शामिल किया गया है। 'खेल सिर्फ खेल नहीं है' में पत्रकारिता पर आए संकट एवं हमलों से जुड़े मुद्दों को उठाया गया है।

शशि शेखर ने इस अवसर पर कहा कि तुलनाएं हमें तौलने का मौका देती हैं। उम्मीद है कि प्रभाष जोशी जब तक लिखेंगे तब तक गुणवत्ता से लिखेंगे और हम जैसे एकलव्य सीखते रहेंगे। अनुपम मिश्र ने मीडिया की बिगड़ती भाषा को सुधारने पर बल दिया। एन.के. सिंह ने पत्रकारिता की पहचान के संकट से जूझने की आपाधापी को सामने रखा तो श्रवण गर्ग ने संपादकों की कमी पर चिंता व्यक्त की। हरिवंश ने कहा कि प्रभाष जोशी ने पत्रकार से चिंतक और सृजनात्मक लेखक बनने का काम किया है। कार्यक्रम में पूर्व उपराष्ट्रपति भैरो सिंह शेखावत, पूर्व केन्द्रीय मंत्री नटवर सिंह समेत अनेक साहित्यकार व पत्रकार शामिल हुए।

17 विद्वानों को मिलेगा हिंदी सेवा पुरस्कार

केंद्रीय हिंदी संस्थान ने 2008 के लिए हिंदी सेवा पुरस्कारों की घोषणा कर दी है। राष्ट्रपति के हाथों प्रदान किए जाने वाले इन पुरस्कारों की घोषणा पहली बार आगरा से हुई है। पुरस्कार की 7 श्रेणियों में 17 विद्वानों का चयन किया गया है। इनमें आलोक मेहता, एम. शेषण, निर्मला जैन, पूरनचंद जोशी, ऊषा प्रियंवदा जैसे ख्यातिप्राप्त विद्वान शामिल हैं। पुरस्कार पाने वालों में पोलैंड की दातूना स्ताषिक भी हैं।

केंद्रीय हिंदी संस्थान की ओर से राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के विकास और प्रचार-प्रसार में योगदान देने वाले विद्वानों, साहित्यकारों और पत्रकारों को हर साल सम्मानित किया जाता है। हिंदी संस्थान ने 1989 से पुरस्कार देना शुरू किया था। पहले पुरस्कारों की घोषणा दिल्ली से होती रही है। इस बार संस्थान के मुख्यालय आगरा से पुरस्कार घोषित किए गए हैं।

संस्थान के उपाध्यक्ष रामशरण जोशी ने एक समारोह में पुरस्कारों की घोषणा की। हिंदी के प्रचार और प्रशिक्षण के लिए चार विद्वानों को गंगाशरण सिंह पुरस्कार दिया गया है। इनमें तमिलनाडु के एम. शेषण, केरल के ए. अरविंदाक्षण, मणिपुर के देवराज और जम्मु कश्मीर यूनिवर्सिटी की जोहरा अफजल है। पत्रकारिता का गणेशशंकर विद्यार्थी पुरस्कार प्रिंट मीडिया के आलोक मेहता को दिया गया है। चैनलों और दूरदर्शन के बीच इलैक्ट्रोनिक मीडिया पुरस्कार एनडीटीवी के कमाल खान और दूरदर्शन के अमरनाथ अमर को संयुक्त रूप से दिया गया है।

वैज्ञानिक तकनीकी साहित्य के क्षेत्र में आत्माराम पुरस्कार राजस्थान के दुर्गादत्त ओझा और उड़ीसा के सुबोध मोहंती को दिया गया है। इसी श्रेणी का एक ही पुरस्कार दिल्ली की विनीता सिंघल और मनोज पटेरिया को मिला है। पुरस्कार के रूप में एक लाख रुपए और प्रशस्ति पत्र दिए जाएंगे। यह पुरस्कार 14 सितंबर को राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल, नई दिल्ली में प्रदान करेंगी।

साहित्य संस्कृति एवं सामाजिक
चेतना का पाक्षिक

ज़िन्दा लोग

संपादक
संजना तिवारी

संपादकीय सलाहकार
वेद शर्मा

संपर्क
एफ-119/1, फेज-2
अंकुर एन्क्लेव, करावल नगर
दिल्ली-94

गगनांचल
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की त्रैमासिकी

संपादक
अजय गुप्ता

वार्षिक मूल्य : 400 रुपये
संपर्क
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आज़ाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट
नई दिल्ली-110002

'नई धारा'
द्वैमासिक के 59 वर्ष

संपादक
प्रथमराज सिंह

सौजन्य संपादक
शिवनारायण

प्रति अंक : 15 रुपये
संपर्क
सूर्यपुरा हाऊस, बोरिंग रोड पटना

सम्बोधन
साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका

सलाहकार संपादक
क़मर मेवाड़ी

प्रति अंक : 15 रुपये
संपर्क
कांकरोली-313324
जिला राजसमन्द (राजस्थान)

पुस्तकें प्राप्त हुईं

धन्यवाद

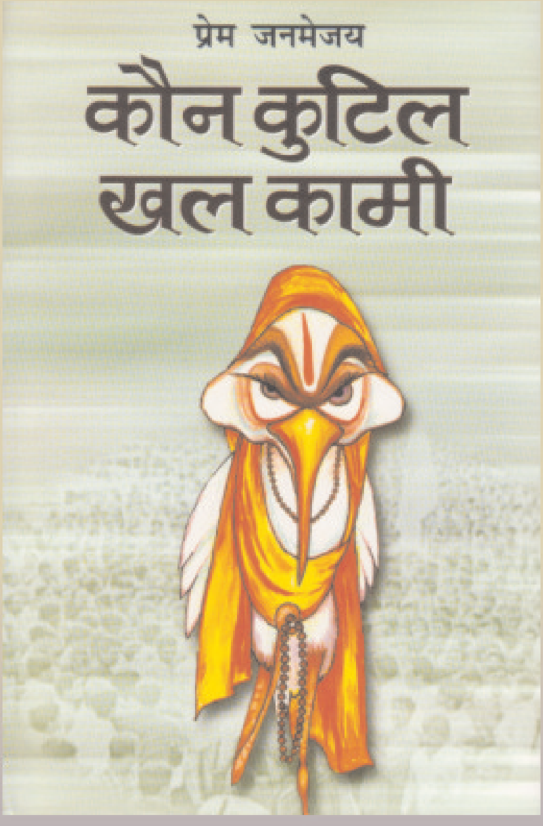

प्रकाशक

ग्रंथ अकादमी

1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-110002

मूल्य : 200 रुपए

पृष्ठ : 160

थानेदार की कविता में चांद
लेखक : जवाहर चौधरी
मूल्य : 120 रु.
प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली

रैली में खोए जूते
लेखक : अनुराग वाजपेयी
मूल्य : 110 रु.
प्रकाशक : विवेक पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर

निर्वाचित लघुकथाएं
संपादक : अशोक भाटिया
मूल्य : 65 रु.
प्रकाशक : साहित्य उपक्रम, दिल्ली

भ्रष्टाचार के शलाका पुरुष
लेखक : काशीपुरी कुंदन
मूल्य :150 रु.
प्रकाशक : पहचान प्रकाशन, रायपुर

शेष कुशल है
लेखक : डॉ. रमेशचंद्र खरे
मूल्य :180 रु.
प्रकाशक : क्षितिज प्रकाशन, दिल्ली

बोल मेरी मछली
लेखक : डॉ. ओंकारनाथ चतुर्वेदी
मूल्य : 250 रु.
प्रकाशक : विश्वनीड़ प्रकाशन, जयपुर

गांधी जी की सिफारिश
लेखक : राजेंद्र निशेश
मूल्य : 125 रु.
प्रकाशक : किताबघर, नई दिल्ली

गंतव्य की ओर
लेखक : रमेश सोबती
मूल्य : 200 रु.
प्रकाशक : उद्योगनगर प्रकाशन, गाजियाबाद

जिंदगी और जुगाड़
लेखक : मनोहर पुरी
मूल्य : 250 रु.
प्रकाशक : वंदना बुक एजेंसी, दिल्ली

आचरण और आवरण
लेखक : डॉ. कमलेश शर्मा
मूल्य :100 रु.
प्रकाशक : साहित्य प्रतिष्ठान, भोपाल

देवयानी
लेखक : डॉ. जनार्दन प्रसाद अग्रवाल
मूल्य : 50 रु.
प्रकाशक : रामअवतार प्रकाशन, बरेली

हम सब यांत्रिकी हो गए
लेखक : आलोक सक्सेना
मूल्य : 250 रु.
प्रकाशक : सार्थक प्रकाशन, नई दिल्ली

नवगीत और उसका युग बोध
लेखक : राधेश्याम बंधु
मूल्य : 100 रु.
प्रकाशक : समग्र चेतना, दिल्ली

यादें
लेखक : डी. के. गर्ग
मूल्य : 300 रु.
प्रकाशक : क्षितिज प्रकाशन, नई दिल्ली

दिल से दिल तक
लेखक : देवी नागरानी
मूल्य : 150 रु.
प्रकाशक : संयोग प्रकाशन, मुम्बई

दुखिया दास कबीर
लेखक : ध्रुव तांती
मूल्य : 125 रु.
प्रकाशक : मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली

आजादी रिटायर हो रही है
लेखक : डॉ. गणेश गायकवाड
मूल्य : 150 रु.
प्रकाशक : संवेदना प्रकाशन, अलीगढ़

इशारों इशारों में
लेखक : ईशमधु तलवार
मूल्य : 200 रु.
प्रकाशक : रचना प्रकाशन, जयपुर

जरिए नजरिए
संपादक : सतीश राठी, अनंत श्रीमाली
मूल्य : 170 रु.
प्रकाशक : पारुल प्रकाशन, दिल्ली

आदमी और बूट
लेखक : के. एल. गर्ग
मूल्य : 150 रु.
प्रकाशक : पुरागॉन पब्लिशर्स, दिल्ली

A golden dawn is the vision of committed Progress.

- Conferred with "Navratna" status on June 22, 2007 for enhanced operational autonomy.
- Received the prestigious "Golden Peacock Award for Excellence in Corporate governance" (National Award Category) for the year 2007 by Institute of Directors.
- Received MoU "Excellence" Award for the 5th time for being amongst the top 10 PSUs.
- Consistently rated "Excellent" by Government of India based on MoU Performance since 1993-94 (except for FY 2004-05)
- Ranked 2nd as per "Total Income" in FIs/NBFCs/Financial Sector in Dun & Brad Streets India's Top 500 Companies, 2007.

Performance Highlights FY 2007-08 :
Operational & Financial Highlights

Rs. Crore

Particulars	FY2006-07	FY2007-08	Change
Sanctions	31,146	69,498	123%
Disbursement	14,055	16,211	15%
Operating Income	3,817	5,029	32%
Profit Before Taxes	1,508	1,788	18%

PFC's Contribution to Power Sector

Cumulative Sanction:	Rs.186,419 crore
Cumulative Disbursement	Rs. 92,065 crore
Capacity Addition Supported	Rs. 70,000 MW
Capacity Commissioned	Rs. 33,000 MW (23% of country's installed capacity)

Ranks highest amongst Indian Financial Institutions

Sanction per employee	Rs. 226 crore
Disbursement per employee	Rs. 53 crore
Profit per employee	Rs. 3.94 crore

Credit Rating

Highest Rating by Domestic Rating Agencies	
CRISIL	'AAA'
ICRA	'LAAA'
Sovereign Rating by International Rating Agencies	
Moody's	'Baa3'
Standard and Poor's	'BBB-'
FITCH	'BBB-'

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ॰ प्रेम प्रकाश की ओर से सचदेवा प्रिंट आर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड, 44, राजस्थानी उद्योगनगर, जी॰टी॰ करनाल रोड, दिल्ली-110033 द्वारा मुद्रित एवं 73, साक्षर अपार्टमैंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063 से प्रकाशित

संपादक : प्रेम जनमेजय